# समर्पण ।

पूज्यपाद, जगद्गुरु, आचार्यवर

श्री १०८ राघवाचार्य जी

श्रीमान् सनातनधर्म के पूज्य आचार्य हैं, धर्म-रक्षा में आचार्य जी का उत्कट प्रेम है, धर्म की हानि में आचार्य जी का चित्त खिन्न होजाता है। धर्म की रक्षा करना तो श्रीमान् जैसे सम्प्रदायों के आचार्यों का ही काम है किन्तु मैं श्रीमान् का तुच्छ सेवक धर्म के विषय में कुछ लिख बैठा हूं। यह मेरा लेख संसार में कुछ काम करे, इसको गौरव-शाली बनाने के लिये मैं आचार्य के करकमलों में समर्पित करता हूं। मुझे विश्वास है कि इस किञ्चित् धर्म सेवा से आचार्य प्रसन्न होकर इस अकिञ्चन सेवक को आशीर्वाद देंगे।

भवदीय सेवक--

कालूराम शास्त्री।

# आधार ।

संसार में आस्तिक या नास्तिक जितने भी धर्म होते हैं उनका कोई न कोई आधारभूत ग्रन्थ होता है। ईसाइयों के यहां ईसाई धर्म का आधार वाइबिल है, वाइबिल में जिसको धर्म कह दिया वह धर्म और जिसको अधर्म कहा वह ईसाइयों की दृष्टि में अधर्म है। इसी प्रकार मुसलमान धर्म का आधारभूत ग्रन्थ कुरान और पार्सियों का जिन्दावस्था है। हम अधिक क्या कहें सनातनधर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, तथा सिक्ख धर्म प्रभृति जितने भी धर्म हैं उनके आधारभूत उत्तमोत्तम ग्रन्थ विद्यमान हैं, उन्हीं ग्रन्थों के अवलम्बन से ये लोग धर्माधर्म का निर्णय करते हैं। बिना ग्रन्थ का धर्म होता ही नहीं समस्त धर्मों के खोज करने पर यदि कोई बिना ग्रन्थ का धर्म मिला तो उसका नाम आर्यसमाज है।

आर्यसमाजी कहते हैं कि हमारा मत वेद है, यह कथन केवल संसार को धोखे में फांसने के लिये है, वास्तविक नहीं। स्वा० दयानन्द जी ने वेद के एक भी मन्त्र को प्रमाण नहीं माना वरन् गालियां, असत्य भाषण, चालबाजी, धोखा, हठ इनका अवलम्बन ले वेद का गला घोट कर ,वेद मन्त्रों के नये अर्थ कर वैदिक सिद्धान्तों का मटिया मेट कर ईसाई धर्म को वैदिक धर्म बनाया है इस कर्तव्य में स्वा० दयानन्दजी ने ऐसे अयोग्यकार्य किये हैं जिनको देखकर मनुष्य यह कह सकता है कि आर्यसमाजी वैदिकधर्मी नहीं हो सकते। ईश्वर स्वरूप, मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध, जन्म से वर्णव्यवस्था, ईश्वर संसार का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है, सृष्टि क्रम प्रभृति समस्त विषय वेद ने विस्तृत और उत्तमता से वर्णित किये हैं।

किन्तु स्वा० दयानन्द जी ने उपरोक्त गालियां देने आदि पांच प्रमाणों के अवलम्बन से वेद के सिद्धान्तों को कुचल ईसाई धर्म को वैदिक धर्म सिद्ध किया है और इस बेहूदगी के साथ विवेचन किया कि जिसका कुछ सार ही नहीं निकलता समझिये हम उदाहरण देकर समझाते हैं।

स्वामी जी लिखते हैं कि हम किसी स्मृतियों को नहीं मानते केवल मनु के उतने श्लोक मानते हैं जो वेदानुकुल हैं। इस अनोखी कल्पना से आर्यसमाजियों की चुटिया जनेऊ का सफाया हो गया। वेद में न चुटिया रखने का हुक्म है न जनेऊ पहिनने का, नहीं जनेऊ के निर्माण की विधि और न शिखा सूत्र का प्रमाण। वेद में यह भी नहीं लिखा कि शिखा सूत्र मनुष्य धारण करे या पशु, केवल शतपथ

में यज्ञोपवीत का कुछ महत्व कहा है परन्तु स्वामी जी शतपथ को वेद नहीं मानते वरन् पुराण मानते हैं अब सिद्ध हो गया कि दयानन्द के माने हुये वेदों में शिखा सूत्र के धारण करने का कोई भी लेख नहीं। हां मनुस्मृति आदि स्मृतियों में और पारस्करादि गृह्यसूत्रों में इनके धारण करने की विधि है किन्तु इन ग्रन्थों के शिखा सूत्र बतलाने वाले प्रमाण वेदानुकूल नहीं, फिर उनको आर्यसमाज माने कैसे, सिद्ध हुआ कि आर्यसमाज के मतमें न चुटिया रखना है और न जनेऊ पहिनना किन्तु आर्यसमाजी शिखा सूत्र रखते हैं। जब हम उनसे पूछते हैं कि तुम शिखा सूत्र किस आधार पर रखते हो? कुछ बहस के बाद उनको यह मानना पड़ता है कि हम शिखा सूत्र सनातनधर्मियों के लेखके आधार पर रखते हैं। शिखा सूत्र का आधार आर्यसमाज में कुछ नहीं, इसलिये आर्यसमाजियों को सनातनधर्म के आधार को लेना पड़ता है। वेद में संध्या तथा पञ्चयज्ञ की विधि नहीं है और आर्यसमाजियों में इने गिने मनुष्य इस कर्म को करते हैं। जब हम उनसे यह पूछते हैं कि तुम्हारे वैदिक धर्म में तो संध्या अग्निहोत्र करना नहीं लिखा तुम किस आधार पर करते हो? तो इनको मजबूर हो कर कहना पड़ता है कि सनातनधर्म के आधार पर, गर्भाधान, सीमन्त पुंसवन जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, कर्णवेध, चौल, उपनयन, विवाह प्रभृति जितने भी संस्कार हैं वेद में इनके करने की आज्ञा नहीं और आर्यसमाजी करते हैं, जब हम इनसे पूंछते हैं कि ये संस्कार तुम किस आधार पर करते हो? तो इनको मानना पड़ता है कि सनातनधर्म के के आधार पर।

एक बार बम्बई में हमसे और बालकृष्ण भट्ट से प्रश्नोत्तर चला, प्रश्नोत्तर था मूर्तिपूजा पर। हमने "त्र्यम्बकम्" "नमस्तेस्तु विद्युते" "उद्यतेनमः,, "भावसर्वै" प्रभृति पचास प्रमाण मूर्तिपूजा के मण्डन में दिये। बहुत फड़फड़ाने पर भी पण्डित जी हमारे कथन का निराकरण न कर सके। अन्त में पण्डित जी को क्रोध आगया उस क्रोध के समय में हमने यह कह दिया कि वेद के जिन मन्त्रों में मूर्तिपूजा का विधान है उनका तो उत्तर कुछ आप देते नहीं अस्तु, न सही किन्तु आप यह बतलावें कि आप मूर्तिपूजा का खण्डन किस आधार पर करते हो? पण्डित जी ने निःशंक कह दिया कि कुरान के आधार पर। इसको सुन कर आर्यसमाजी पण्डित जी के पीछे पड़े किन्तु जो अक्षर मुंह से निकल गये वे फिर मुंह में धंस नहीं सकते। मूर्तिपूजा के खण्डन का कोई आधार वेद में नहीं है लाचारी से यह मानना ही पड़ेगा कि आर्यसमाज जो मूर्तिपूजा का खण्डन करती है उसमें केवल कुरान आधार है।

स्वामी दयानन्द जी ने गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था मानी है। सत्यार्थप्रकाश के कई एक स्थान में तो गुण, कर्म स्वभाव लिया है और कहीं २ स्वभाव को छोड़ कर वर्णव्यवस्था गुण-कर्म से ही मानी है। गुण-कर्म स्वभावसे वर्णव्यवस्था वेद के किसी मन्त्र में नहीं, वेद क्या ब्राह्मण, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, वेदांग, षट्दर्शन प्रभृति किसी भी धार्मिक ग्रन्थ में पाई नहीं जाती। स्वामी जी ने जो इसकी पुष्टि की है वह इतिहासों से की है। इतिहास के बल पर नहीं वरन् चोरी के बल पर, किसी इतिहास की तनक सी कथा चुरा कर कह दिया कि देखो अमुक आदमी क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गया किन्तु पुराण, इतिहास इन ग्रन्थों में एक भी ग्रन्थ गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था नहीं मानता अतएव विचारशील आर्यसमाजियों को यह मानना ही पड़ता है कि स्वामी जी ने जो गुण, कर्म, स्वभाव की वर्णव्यवस्था मानी है इसका आधार यूरोपीय सभ्यता का आचरण है।

✓वेदों में मृतक श्राद्ध बड़े विस्तृत रूप से लिखा है। अथर्व वेद के अठारहवें काण्ड और यजुर्वेद के उन्नीसवें अध्याय इनसे अन्यत्र भी मृतक श्राद्ध के मन्त्र पाये जाते हैं। समस्त मन्त्र मृतक श्राद्ध के कहने वाले वेद में सात सौ से भी अधिक हैं। इतने पर भी स्वामी दयानन्द जी मृतक श्राद्ध का खण्डन लिख गये। मृतक श्राद्ध के खण्डन का आधार क्या है? जब इसकी खोज की जाती है तब यह पता चल जाता है कि नास्तिक चार्वाक् और नास्तिक बृहस्पति के लेखों के आधार पर ही स्वामी दयानन्द जी ने मृतक श्राद्ध का खण्डन किया है।

वेदों ने ईश्वर को साकार और निराकार दो रूप रखने वाला वर्णन किया है जहाँ पर ब्रह्म के एक अंश में सृष्ट्युत्पत्ति हो गई वहां पर ईश्वर साकार और जिस अंश में सृष्ट्युत्पत्ति नहीं हुई वहां ब्रह्म को निराकार बतलाया है। सृष्टि की उत्पत्ति में यह स्पष्ट कह दिया है कि आकाश, वायु, जल, अग्नि पृथ्वी इन पांच ही तत्वों से संसार बना है और ये पांचों ही तत्व ईश्वर के शरीर से उत्पन्न हुये हैं इस कारण ईश्वर साकार है। कई एक वेद मन्त्रों ने डंके की चोट यह बतलाया है कि जितने तत्व तथा स्थूल सूक्ष्म, जड़ और चेतनात्मक संसार है वह सब ईश्वर का शरीर है।

"ब्रह्मज्येष्ठा सम्भृता" "वराहेण पृथ्वी" "इदं विष्णुर्विचक्रमे" प्रभृति वेद के अनेक मन्त्र ईश्वर के ब्रह्मा, वराह, वामनादि अवतारों का वर्णन कर रहे हैं किन्तु स्वामी दयानन्द जी ने ईश्वर को निराकार माना, जब हम इसके आधार की खोज करते हैं तब पता चलता है कि यह स्वामी जी ने जैन धर्म से लिया है। जैनियों के यहाँ ईश्वर को निराकार माना है उसको स्वामी जी ने

वैदिक बना दिया–यह मानना पड़ेगा कि दयानन्द के चलाये आर्य्यसमाजी मत का वेद जिम्मेदार नहीं, वेद तो आर्य्यसमाज के सिद्धान्तों के परम शत्रु हैं। स्वामी जी ने अन्य २ धर्मों से कुछ २ बातें लेकर ईसाई धर्म को चालबाजियों से वैदिक धर्म बनाया है, एक भी मनुष्य न ऐसा हुआ है, न है, न होगा जो आर्य्यसमाज को वैदिक धर्म सिद्ध कर दे इस कारण यह कहना ही पड़ेगा कि आर्य्यसमाज का आधार वेद नहीं है–इसको हमने वेद और आर्य्यसमाज नामक प्रकरण में स्पष्ट रूप से दिखला दिया है। पहिले वेदों के सिद्धान्त दिखलाये और फिर प्रत्येक विषय पर आर्य्यसमाज का सिद्धान्त लिखा, पढ़ने वालों को यह पता लग जावेगा कि प्रकाश और अन्धकार में जितना अन्तर है उतना ही अन्तर वेद और आर्य्यसमाज के सिद्धान्तों में है।

## दयानन्द।

दयानन्द जी ने गालियां देना, झूंठ बोलना, चालाकियां करना, मनुष्यों को धोखे में डालना, हठ बांध बैठना इन पाँच प्रमाणों से कुछ मनमानी बातों को वैदिक बतलाया है। ये सब बातें हमने प्रमाण पंचक में लिख दी हैं। स्वा० दयानन्द जी बड़े होशियार थे, उन्होंने अनुभव किया कि किसी समय में हमारे बनावटी जाल [illegible] य हमको पबलिक् घृणा की दृष्टि से देखेगी, हम घृणा की दृष्टि से [illegible] लिये स्वामी जी ने एक और चालाकी की, वह यह कि अपने लेखों में स्वा० दयानन्द जी सनातन धर्म के समस्त सिद्धान्तों को सत्य लिख गये और उनका मण्डन लिख गये। जिन लेखों में स्वामी जी ने सनातन धर्म का मण्डन किया है वे समस्त लेख इकट्ठे करके हमने इस ग्रन्थ में एक 'वैदिकता प्रकरण' लिख उसमें दिखला दिये हैं। स्वामीजी ने दोनों हाथों में लड्डू रक्खे हैं, यदि एक हाथ का लड्डू खाने को न मिलेगा तो दूसरे हाथ का खा लेंगे। भावी विद्वानों के निर्णय में यदि सनातनधर्म सत्य ठहर गया तब हमारी निन्दा नहीं हो सकती है क्यों कि हमने जोरदार शब्दों में सनातनधर्म का मण्डन किया है, यदि सनातनधर्म झूंठ ठहर गया तो भी हमारी निन्दा नहीं हो सकती क्यों कि हमने सनातनधर्म का घोर खण्डन भी लिखा है–इस चालाकी को लेकर स्वामी जी की लेखनी उठी।

आर्य्यसमाजी वेदों से तो घबराती है, वेद तो आर्य्यसमाज के परम शत्रु हैं ही, अब इसका आधार स्वा० दयानन्द जी के ग्रन्थ ठहरते हैं। यदि आर्य्यसमाजी दयानन्द जी के लेखों को ही प्रमाण मान लेते तो यह धर्म कुछ जोरदार रहता और इसका नाम संसार में दयानन्दीयधर्म हो जाता, काम पड़ने पर आर्य्यसमाज

…पने ग्रन्थ निकाल कर दिखला सकती थी कि हम ऐसा मानते हैं और हमारे यहां इसका यह प्रमाण है किन्तु आर्य्यसमाजी ऐसे उस्ताद निकले कि वे स्वामी जी से भी दो कदम आगे बढ़ गये। स्वामी जी को चैलेंज दे दिया कि तुमने वेदों के तात्विक सिद्धान्तों को झूठ माना है, हम तेरे लेखों को झूठ मानते हैं स्वा० दयानन्द जी ने जितने भी धार्मिक कर्तव्य लिखे उनमें से आर्य्यसमाजी केवल परस्पर में 'नमस्ते' करना तो मानते हैं बाकी धर्म विषय या कर्तव्यता पर जितना लेख स्वा० दयानन्द जी का है आर्य्यसमाजी उसके घोर शत्रु हैं-इसको हमने 'आर्यसमाज का मृत्यु' नामक अन्तिम प्रकरण में दिखलाया है-सिद्ध होगया कि आर्यसमाज न वेद मानती है न स्वा० दयानन्द जी का लेख, अतएव इस सोसाइटी का कोई आधार ही नहीं। बिना ग्रन्थ का मजहब यदि कोई तुमको मिलेगा तो वह आर्यसमाज मिलेगा।

## चालाकियां।

आर्यसमाजी अपने मन में यह समझे हैं कि ग्रन्थों के मानने से मनुष्य बन्धन में पड़ जाता है इस कारण वेद और स्वा० दयानन्द लिखित जितने भी ग्रन्थ हैं उनको तो दूर फेंक दो केवल स्वा० दयानन्द जी की बतलाई चालाकियों को लेलें और उन चालाकियों में कुछ और उन्नति करलो इसी के आधार पर संसार में आर्यसमाज को सच्चा धर्म, वैदिक धर्म, सब से बड़ा धर्म कहते रहो, जिन्होंने वेद शास्त्र नहीं पढ़ा या जो धर्म को कोई चीज नहीं समझते वे तुम्हारे जाल में फंसे रहेंगे और आर्यसमाज की उन्नति होती रहेगी, इस सिद्धान्त को आगे रख आर्यसमाज ने वेद और स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों को तिलांजलि दे दी। देश हित, जाति हित के मीठे २ राग गाकर अब इन्होंने चालाकियों का चलना आरंभ कर दिया हमारी इच्छा है कि नमूने के लिये कुछ चालाकियाँ हम यहां उद्धृत करदें। (१) देखो विधवा होने पर स्त्रियां बड़ी दुःख पाती हैं, फिर वे भ्रष्ट हो जाती हैं, ग… गिराती हैं, भ्रूण हत्यायें करती हैं, अन्त में मुसलमानों के साथ भाग जाती… इससे तो अच्छा यह है कि विधवा विवाह जारी कर दिया जावे, कम से क… इतना तो लाभ होगा कि उनकी सन्तानें गोभक्षक को छोड़ कर गोरक्षक बनें… (२) अजी-पंडितोंकी बातें मत करो, पंडित तो आर्यसमाज से चिढ़ते हैं? आर्यसमा… पंडितोंकी आमदनी को बन्द करतीहै इस कारण पण्डितोंने तो आर्यसमाज से शत्रु… ठान ली है, यह शत्रुता देश का नाश करेगी, जब तक एक न होंगे देश का उ… होगा कैसे? अब तो ब्राह्मणों को यही चाहिये कि आर्यसमाज से न लड़ें बल्कि ब्राह्मण और आर्यसमाज दोनों मिलकर मुसलमानों से लड़ें, आप मानें या न मानें

हम तो हिन्दू जाति के कल्याण की बात कहते हैं। ( ३ ) बाबू जी देखिये तो सह- शहर में इन सनातनधर्मियों ने क्या बायवेला मचाया है बातका बतंगड़ बना दिया. बात इतनी थी कि कल आर्यसमाज के उपदेशक श्रद्धानन्द जी मटरू भंगी के यहां खाना खा आये थे बस शहर में सनातनधर्मियों ने कोलाहल मचा दिया, ऐसे ही दुष्ट व्यवहार से नीच जाति के लोग ईसाई मुसलमान हो जाते हैं, जब तक उनका आदर न किया जायगा वे हिन्दूजाति में रह कैसे सकते हैं, फिर मटरू के यहां जो खाया तो तुमने तो नहीं खाया ? आर्यसमाजके एक आदमी ने खाया है, आर्यसमाज की भंगियों के साथ हमदर्दी है, वह इसको योग्य समझती है, तुम्हारा क्या बिगड़ गया जो तुम अब शहर में फूट फैला रहे हो ? हम तो सच्ची कहते हैं कोई माने या न माने।

आज कल इस प्रकार की चालबाजियों से आर्यसमाजी आर्यसमाज की उन्नति कर रहे हैं। साधारण मनुष्य इनकी चालबाजियों को समझते नहीं इस कारण इनके जाल में फंस रहे हैं। यदि कोई मनुष्य इनकी चालबाज़ी को परख यह कह दे कि देवता ! तुम विधवाओं के विवाह करवाते कैसे हो ? वेद में विधवाविवाह का खण्डन, दयानन्द जी ने अपने लेख में तीन जगह विधवाविवाह का खण्डन किया फिर तुम द्विजातियों में विधवाविवाह किस आधार पर चलाते हो ?

रही बात पण्डितों की। स्वा० दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि यदि ये ब्राह्मण पण्डित न होते तो फिर आज तक वेदों का पता भी न चलता ? वेद कहता है कि "विद्या हवै ब्राह्मणमाजगाम" ब्राह्मण वेद विद्या के रक्षक हैं, तुम किस आधार पर पण्डितों को आर्यसमाज का शत्रु बतलाते हो ?

श्रद्धानन्द ने जो भंगी के यहाँ भोजन कर लिया तुम्हें शर्म नहीं आती, तुम उसकी हिमायत करते हो ? क्या तुमने धर्मशास्त्र नहीं देखा ? धर्मशास्त्र ने साफ लिख दिया है कि अज्ञातावस्था में प्रायश्चित्त है और ज्ञातावस्था में उसका बहिष्कार है ? स्वा० दयानन्द जी ने दशमसमुल्लास में नीच जातियों के भोजन का प्रकट निषेध किया है, तुम श्रद्धानन्द की प्रशंसा करते हो ? इसको सुनते ही केवल उसी की नहीं किन्तु शहरमें जितने आर्य्यसमाजी होंगे उन सब की नानी मर जावेगी।

कौन कहता है कि आर्यसमाजी संसार को धोखा देकर, चालाकी चल कर आर्यसमाज को नहीं फैलाते, इन की बात चीत में, इनके लेख में, इनके व्याख्यान में इनके शास्त्रार्थ में सिवाय चालबाजी के और है क्या ? जो इनकी चालबाजियों को जानता है उसके साथ ये कभी शास्त्रार्थ नहीं करते। आर्यसमाजी उपदेशकों को

इतनी कमजोरी दे दी कि जो किताब तुम्हारे समस्त धर्म को मिट्टी में मिलाती हो तुम उस पर भी लेखनी न उठाओ ? जिस २ स्थान में यह ग्रन्थ पहुंचेगा उस २ स्थान के आर्यसमाजियों की गर्दन ऊंची न उठ सकेगी प्रायः मरणासन्न दशा हो जावेगी। क्या तुम्हें यह मंजूर है कि सहस्रों आर्यसमाजी नीचा देखें? यदि नहीं मंजूर है तो फिर लेखनी उठाओ।

इस अकेले ग्रन्थ को लेकर सनातनधर्म का छोटे से छोटा पंडित आर्यसमाजियों की चालाकियों का स्वाहा करता हुआ सनातनधर्म की विजय दुन्दुभी बजा सकता है। क्या आर्यसमाजियो! तुम को यह इष्ट है कि स्थान २ में आर्यसमाज की हार हो? नहीं है तो इस ग्रन्थ के खण्डन में लेखनी उठाओ? यह ग्रन्थ इतने विचार के साथ लिखा गया है कि हम प्रत्येक आर्यसमाजी के घर पर पहुंच कर इस ग्रन्थ से होने वाली आर्यसमाज की हानियों को समझावें और कुछ मुवलिगान देने को भी तैयार हो जावें तब भी किसी आर्यसमाजी की लेखनी इस ग्रन्थ के खण्डन में उठ नहीं सकती।

आर्यसमाजी भाइयो! तुमने वेद और दयानन्द के लेख को अपना शत्रु समझ जो केवल चालबाजियों के आधार पर आर्यसमाज की उन्नति मानली है तुम्हारे इस निन्दनीय व्यवहार से आर्यसमाज का मृत्यु हो गया, अब तुम वैदिक धर्म या दयानन्दीय धर्म पर कभी ठहर नहीं सकते, तुम्हारे इस निन्दनीय व्यवहार से जितने आर्यसमाजी और उनके उतने ही मत होंगे। यदि तुम आर्यसमाज का कल्याण चाहते हो तो चालबाजियों में दियासलाई लगाओ और दयानन्द के लेख को दूर फेंक दो फिर तुम वेदों को पढ़ कर यह निर्णय करो कि वेदों के क्या सिद्धान्त हैं? जो वेदों के सिद्धान्त हों उन्हीं को आर्यसमाज के सिद्धान्त बनाओ इसी में आर्यसमाज और प्रत्येक आर्यसमाजी का कल्याण होगा। यदि मानो तो अच्छा है न मानो तो तुम्हारी इच्छा, इससे अधिक हम कोई दूसरी सम्मति आपको दे नहीं सकते, अधिक विस्तार की भी कोई आवश्यकता नहीं।

## सनातनधर्मी।

प्यारे सनातनधर्मियो! तुम धर्मप्राण हो, हरिश्चन्द्र, मोरध्वज, ध्रुव, शिवि, दधीचि, व्यास, शुकदेव प्रभृति आपके बुजुर्ग जो धर्म भक्ति दिखला गये हैं वह छटा किसी भी जातिके किसी मनुष्य ने दिखलाई नहीं। घटना बहुत पुरानी है। कुछ ही दिन हुये शिवा जी, महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह के प्राण प्यारे छोटे २ बच्चे एवं माननीय धर्मवीर हकीकतराय जो धार्मिकता की छटा को संसार में दिखल

गये वह तुमको याद होगी। आज आर्य्यसमाज अपनी चालाकियों से अनादि सनातन वैदिक धर्म को कतल कर रही है और तुम घर्राटे की नींद में सो रहे हो धिक्कार है ऐसे जीवन पर जिस जीवन से हम और आप धर्म की रक्षा न करें। आज तक आप लोगों का यह उज्र था कि वेदशास्त्र अगाध हैं उनको हम पढ़ नहीं सकते फिर आर्य्यसमाज से कैसे भिड़ें ? हमने यह ग्रन्थ लिखकर तुम्हारे इस उज्र का स्वाहा कर दिया, अब तुमको विशेष पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं, इस ग्रन्थ को उत्तम रीति से पढ़ इसके भावों को समझ लो और फिर एकदम आर्य्यसमाज को ललकार दो कि सनातनधर्म श्रुति स्मृति प्रतिपाद्य धर्म है एवं आर्य्यसमाज कोई धर्म नहीं केवल धोखा और चालबाजी का पुंज है, आओ शास्त्रार्थ करो, अब शान्ति रखने की कोई आवश्यकता नहीं। प्रत्येक सनातनधर्मी, विशेष कर ब्राह्मण और उनमें भी पण्डितों का यह मुख्य धर्म है कि जगह २ में आर्यसमाज को शास्त्रार्थ के चैलेंज दे और इस ग्रन्थ के आधार पर शास्त्रार्थ करके आर्यसमाजियों की चालबाज बुद्धि को ठिकाने बिठला दें। सनातनधर्मियो ! केवल एक इसी ग्रन्थ में तुम्हारे पास समस्त विषयों पर शास्त्रार्थ करनेकी सामग्री मौजूद है अब जो चूक गये या सुस्ती कर गये तो फिर अन्त में तुमको रोना पड़ेगा और उस रोने का कुछ भी मूल्य न होगा। आर्यसमाजी अपनी पुरानी चालाकी एवं नई चालाकियों से तुमको ईसाई बनाये बिना नहीं छोड़ेंगे। आर्यसमाज क्या है वेद और दयानन्द के लेखों को उधेड़ २ कर खाने वाला खूंख्वार जानवर है बस अब तुम्हारा कर्तव्य यही है कि उठकर आर्य्यसमाजियों के धोखे, चालबाजी, झूठे और कटु लेख तथा हठ का ऐसा भंडाफोड़ करो कि इस भंडाफोड़ की सूचना प्रत्येक नगर, ग्राम में गूंजती हुई प्रत्येक मनुष्य के कान में जा पहुंचे। आर्यसमाजी अब तुम्हारा मुकाबला नहीं कर सकते क्यों कि इनके अन्तःकरण में यह भय जम गया है कि अब समस्त संसार हमारी चालबाजी और हमारे धोखों को समझने लगा है, केवल तुम्हारे उठने की देर है। तुम उठे कि तत्काल वेदों का विजय हुआ। अब हम देखना चाहते हैं कि सनातनधर्मके वे कौन २ प्राण प्यारे पुत्र हैं जो वेद और वेद प्रतिपाद्य धर्म की रक्षा के लिये आर्य्यसमाज के सन्मुख शेर की भाँति गर्जने को तैयार हैं। किमधिकम्—

कालूराम शास्त्री।

अनुभव हुआ कि पं० कालूराम शास्त्री और कविरत्न पं० अखिलानन्द जी के आगे हमारी चालाकी नहीं चलती, ये दोनों हमारी चालाकियों को धूल में मिला देते हैं और हम को हमेशा जोरू की भांति दबाये रहते हैं, किसी प्रकार इनका काला मुँह हो। इसके ऊपर गहरा विचार करके षड्यन्त्र बनाया, उस षड्यन्त्र में कुछ सनातनधर्मियों को मिला यह सिद्ध किया कि पं० कालूराम शास्त्री और कविरत्न पंडित अखिलानन्द ये दोनों हसन निजामी के नौकर हो कर हिन्दुओं से द्रोह करते हैं। भाव इनका यह था कि दोनों पण्डित बदनाम हो जावें और सनातनधर्म सभायें इनको अपने प्लेटफार्म पर न आने दें किन्तु "दैवो दुर्बलघातकः" उल्टी निमाज गले पड़ी, षड्यन्त्रकारियों को माफी मांगनी पड़ी और वे संसार की दृष्टि में नीच बने।

पं० राजाराम जी शास्त्री भूतपूर्व प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर एवं वेदतीर्थ नरदेव शास्त्री भूतपूर्व प्रिंसिपल महाविद्यालय ज्वालापुर तथा महामहोपध्याय आर्यमुनि विद्वान् होने के कारण लज्जा को कोई वस्तु समझते हैं इस कारण शास्त्रार्थमें ये चालाकियां नहीं चलते अतएव आर्य्यसमाज इनको शास्त्रार्थ ही में नहीं बुलाती। हां-जो लोग सर्वथा संस्कृत शून्य हैं, जो लोग लज्जा को कुचल चुके हैं, जिनको आर्य्यसमाज चालाकियों का पण्डित समझती है वे ही शास्त्रार्थ में बुलाये जाते हैं। कविरत्न पं० अखिलानन्द तथा कालूराम के सामने जो आये और उन्हों ने चालाकी चलना आरम्भ की, इसको परखते ही ये दोनों पंडित चालाकियों में दियासलाई दिखला देते हैं। चालाकियों में दियासलाई लगी कि आर्य्यसमाजी हारे। आर्य्यसमाजियों ने यह अनुभव किया कि इन दो पंडितों के आगे हमारी चालबाजी नहीं चलती और हमने जो एक अनोखी चालबाजी के सहारे से इन पण्डितों को हसन निजामी का नौकर बनाना चाहा था, हमारी उस चालबाजी में भी पबलिक न फंसी, उलटा हमी को नीचा देखना पड़ा, अब ये दोनों पंडित फिर शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं, बिल्ली के भागों छींका टूटा। दैवयोग से नीमच का शास्त्रार्थ आ गया, इस शास्त्रार्थ में बुद्धदेव पंजाबी और रामचन्द्र सुनार देहलवी आदि उपदेशकों की चालाकी का वह कचूमर निकला कि इनके प्राण गले में आगये, अब ये विचारे निराधार हो गये, शास्त्रार्थ करने से इन्कार नहीं कर सकते, चालाकियों को छोड़ आर्यसमाज के पास और कोई आधार नहीं, चालाकी कालूराम और अखिलानन्द के आगे ठहरती नहीं, अब हम करें तो क्या करें? घबराये, अन्त में जौलाई सन् २६ में यह रेजुलेशन पास करवाया कि कोई भी आर्यसमाजी पण्डित कालूराम और अखिलानन्द के साथ शास्त्रार्थ न करे।

कालूराम और अखिलनन्द पर ही क्या दार मदार है। आर्यसमाजी पंडित शास्त्र के विद्वान् नहीं होते, वेद और धर्मशास्त्र इनका साथ नहीं देता, इन गरीबों का आधार तो चालाकियां ही हैं। जो चालाकियाँ करीं कि तत्काल हारे? जो पण्डित इनकी चालाकियों को परख कर काट देगा आर्यसमाजी फौरन हार जायंगे और फिर उसके साथ शास्त्रार्थ करने को कभी तैयार न होंगे।

हमने इस ग्रन्थ में आर्यसमाज की चालाकियों का विस्तृत वर्णन किया है, साथ ही साथ यह भी उत्तम रीति से दिखलाया है कि वेद और स्वामी दयानन्द जी के लेख को आर्य्यसमाज बिल्कुल नहीं मानती केवल चालबाजियों से, धोखे से झूंठ बोलकर ही अपनी उन्नति कर रही है। हमने यह सच्ची बात लिखी है, आर्य्यसमाजियों से हमारा कोई द्वेष नहीं, इन्होंने हमें कुछ हानि नहीं पहुंचाई, हमने जनता के कल्याण के लिये यह ग्रन्थ लिखा है ताकि पबलिक इसको पढ़े और धर्म धर्म चिल्ला कर मनुष्यों को पापी बनाने वाले ठगों से बचे।

## आग्रह।

हम आर्य्यसमाज के नेता, लीडर-प्लीडर, प्रिंसिपल-प्रोफेसर, पण्डित-उपदेशक, प्रधान-मंत्री,सभासद और कार्यकर्ता, सम्पादक और लेखक तथा समस्त आर्यप्रतिनिधि सभाओं के आगे यह ग्रन्थ रखते हुये नम्र निवेदन करते हैं कि यदि यह ग्रन्थ मिथ्या लिखा गया है तो आर्य्यसमाज इसका वह जोरदार खण्डन करवावे कि जिसके ऊपर फिर हमारी लेखनी न उठ सके। हम इस पुस्तक के खण्डन में जो ग्रन्थ देखेंगे उससे अप्रसन्न न होंगे वरन् हमारे हर्ष का पारावार न रहेगा। हम भी समझेंगे कि आर्यसमाज में विद्वान् मौजूद हैं और उनमें ग्रन्थ लिखने की शक्ति विद्यमान है किन्तु साँच को आँच नहीं, इसको सत्य समझ हम यह बड़े जोर से कहते हैं कि चार लाख आर्यसमाजी एक स्थान में इकट्ठे हों और फिर सब इस पुस्तक के खण्डन में अपने अपने विचार प्रकट करें, लक्षों रुपया खर्च हो तब भी इस पुस्तक का खण्डन नहीं हो सकता। लेखनी उठाते ही हाथ कांपने लगेगा, बुद्धि इन्कार की कबड्डियां मचाती हुई लेख लिखने से स्पष्ट इन्कार करेगी इस कारण लेखनी उठाने वाला लेखनी को जमीन में रख हाथ जोड़ लेगा।

आर्यसमाजी भाइयो! हमने जितनी किताब आर्यसमाज की देखीं प्रायः सभी के वेद विरुद्ध अंश में लेखनी उठाई किन्तु क्या तुम में इतना भी साहस नहीं कि हमारी इस एक ही किताब का खण्डन लिख दो? क्या संसार में तुमको ईश्वर ने

सर्वाधिकारी स्वामी हीरानन्दजी ([redacted])

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

# आर्यसमाज की मौत

यो अस्मभ्यमरातीया-
　　यश्च नो द्वेषते जनः ।
निन्दाद्यो अस्मान्धिप्साच्च-
　　सर्वं तं भस्मसात्कुरु ॥ यजु० ॥ १ ॥

दुरापारसंसारसंहारकारी-
　　भवत्यश्ववचारः कृपाणप्रहारी ।
मुरारिर्दशाकारधारीह कल्की-
　　करोतु द्विषां ध्वंसनं वः स कल्की ॥२॥

स्वामी दयानन्द जी अपने ग्रन्थों में अवतार, मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध, द्विजों में विधवा विवाह निषेध, जन्म से वर्ण-व्यवस्था, फलित ज्योतिष्, देवजाति, इतिहास, पुराण की प्रामाणिकता इन सनातनधर्म के सिद्धान्तों को वैदिक मान कर इनकी पुष्टि में विविध प्रमाण उद्धृत करते हैं। आज हम स्वामी जी के इसी विवेचन को पाठकों को दिखलाने के

लिये तैयार हुये हैं, हमें आशा है कि सनातनधर्मी और आर्यसमाजी दोनों ही स्वामी जी के लेख से लाभ उठावेंगे।

## अवतार।

सनातनधर्म का सिद्धान्त है कि ईश्वर के निराकार और साकार दो रूप हैं, समय २ पर ईश्वर शरीरधारी भी बनता है। स्वामी जी ईश्वर के शरीरधारण करने की पुष्टि अपने अनेक लेखों में करते हैं इनको पाठक क्रम से देखें।

नं० (१) यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याथं शूद्राय चार्याय च
स्वाय चारणाय। प्रियो देवानां दक्षिणायै
दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुपमादो नमतु॥

यजु० २६। २

हे मनुष्यो! * मैं ईश्वर जैसे ( ब्रह्मराजन्याभ्याम् ) ब्राह्मण-क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य ( शूद्राय ) शूद्र ( च ) और ( स्वाय ) अपने स्त्री सेवक आदि ( च ) और ( अरणाय ) उत्तम लक्षण युक्त प्राप्त हुये अंत्यज के लिये ( च ) भी ( जनेभ्यः ) इन उक्त सब मनुष्यों के लिये ( इह ) इस संसार में ( इमाम् ) इस प्रकट की हुई ( कल्याणीम् ) सुख देने वाली ( वाचम् ) चारो वेद रूप वाणी का ( आवदानि ) उपदेश करता हूँ वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश करें। जैसे मैं ( दातुः ) दान वाले के संसर्गी ( देवनाम् ) विद्वानों की ( दक्षिणायै ) दक्षिणा अर्थात् दान आदि के लिये (प्रिय) मनोहर पियारा ( भूयासम् ) होऊं और (मे) मेरी (अयम्) यह ( कामः ) कामना ( समृध्यताम् ) उत्तमता से बढ़े तथा ( मा ) मुझे ( अदः ) वह परोक्ष सुख ( उपनमतु ) प्राप्त हो वैसे आप लोग भी होवें और वह कामना तथा सुख आपको भी प्राप्त होवे।

इस भाष्य में स्पष्ट रूप से लिखा है कि ईश्वर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को वेद पढ़ाता हुआ साथ ही साथ अपनी स्त्री तथा अपने नौकरों को भी वेद पढ़ाता है। जब ईश्वर अपनी स्त्री को वेद पढ़ाता है तो वेद तब ही पढ़ावेगा जब उसके स्त्री होगी, क्या कोई स्त्री वाला भी निराकार होता है? यहाँ पर यह

* यह अर्थ दयानन्दकृत यजुर्वेद भाष्य में है। सत्यार्थ प्रकाश में इस अर्थ को बदल दिया।

भी सन्देह नहीं हो सकता कि निराकार ईश्वर के निराकार स्त्री होगी ? यह स्त्री साकार है और वेद पढ़ती है।

महात्मा धर्मपाल जब दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य का उर्दू अनुवाद करने बैठे तब उनको यह बात खटकी कि ओ हो ! ईश्वर निराकार और उस निराकार के एक स्त्री ? स्त्री भी मामूली नहीं-वेद पढ़ने वाली ? यह तो युक्ति विरुद्ध है। यह समझ कर धर्मपाल ने "स्त्री और सेवक" ये पद छोड़ दिये, उर्दू में इनका अनुवाद नहीं किया किन्तु संस्कृत न जानने के कारण इनको इतना ज्ञान न हुआ कि मंत्र में 'स्वाय' पद है और दयानन्द जी ने भाष्य करते हुये 'स्वाय' को कोष्ठ में देकर उसका अर्थ 'अपनी स्त्री और सेवक' किया है।

चाहे किसी मनुष्य का अन्तःकरण ईश्वर के स्त्री का होना और उसको वेद पढ़ाना न मानता हो किन्तु ऐसा मनुष्य भूतल पर एक भी न मिलेगा जो स्वामी जी के भाष्य को पढ़कर यह कह दे कि इस भाष्य में ईश्वर के स्त्री का होना और ईश्वर के द्वारा उसको वेद पढ़ाया जाना नहीं लिखा ?

आर्यसमाजियो ! यह तो आप भी मानते ही हैं कि ईश्वर के पत्नी है और वह वेद पढ़ती है, संभव है कि आप इस पति पत्नी के विवाह में बराती बन कर गये हों और आप लोगों ने खूब चकाचक माल उड़ाया हो तथा विवाह भी किसी आर्यसमाजी उपदेशक ने ही करवाया हो ? फिर आप ईश्वर को निराकार किस मुंह से कहते हैं।

मजा तो यह है कि ईश्वर के विवाह में बराती बनकर आर्यसमाजी जावें, माल आर्यसमाजी चबावें, ईश्वर का विवाह करवाकर दक्षिणा के टके आर्यसमाजी लावें, ईश्वर के एक स्त्री आर्यसमाजी बतलावें, उसका वेद पढ़ना संसार को आर्यसमाजी समझावें इतने पर भी साकार का मण्डन सनातनधर्मियों को करना पड़े क्या इसी का नाम इंसाफ है ?

नं० (२) यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पति
यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूंरधरां अवातिरन्
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

ऋ० १।७।१२।५

आर्याभिविनय मं० ४४

हे मनुष्यो ! ‡ जो सब जगत (स्थावर) जड़ अप्राणी का और चेतना वाले जगत् का अधिष्ठाता और पालक है तथा जो सब जगत् के प्रथम सदा से है और जिसने यही नियम किया है कि ब्रह्म अर्थात् विद्वान् के ही लिये पृथ्वी का लाभ और उसका राज्य है और जो परमैश्वर्यवान् परमात्मा डाकुओं को नीचे गिराता है तथा उनको मार ही डालता है, आओ मित्रो भाई लोगो ! अपने सब संप्रीति से मिलके मरुत्वान् अर्थात् परमानन्द बलवाले इन्द्र परमात्मा को सखा होने के लिये अत्यन्त प्रार्थना से गद्गद् होके बुलावें, वह शीघ्र ही कृपा करके अपने से सखित्व (परम मित्रता) करेगा इसमें कुछ सन्देह नहीं।

समय बड़ा कठिन है, धार्मिक आर्यसमाजी उपरोक्त मंत्र की आज्ञानुसार आप तो नित्य ईश्वर को बुलालें और ईश्वर से मित्रता करें किन्तु जब कोई दूसरा मनुष्य ईश्वर की भक्ति करना चाहे तो उसको समझा दें कि ईश्वर के शक्ल नहीं वह तो सर्वथा निराकार है, न कहीं आता है न जाता है, सब जगह ठसाठस भरा है; उसका न कोई मित्र है न शत्रु-यह दुरंगी बात कैसी ? आप तो ईश्वर को बुलावें और उससे मित्रता करें और दूसरों को निराकार बतला दें; हमें तो यही अनुमान होता है आर्यसमाजी यह समझे बैठे हैं कि जो दूसरों ने ईश्वर को बुलाया और उनसे ईश्वर की मित्रता हो गई तो फिर वह ईश्वर आर्यसमाजियों के पास न आवेगा।

नं० (३) मानो वधीरिन्द्र मापरा दा
मा नः प्रिया भोजनानि प्रमोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्
मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥

ऋ० १ । ७ । १६ । ८

आर्याभिविनय मं० ४६

हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्तेश्वर ! हमारा बध मत कर अर्थात् अपने से अलग हमको मत गिरावे। हम से अलग आप कभी मत हो, हमारे प्रिय भोगों को मत चोर और मत चोरवावै, हमारे गर्भों का विदारण मत कर, हे सर्वशक्तिमन् ! समर्थ हमारे पुत्रों का विदारण मत कर। हमारे भोजनार्थ सुवर्णादि पात्रों को

‡ यह मंत्र और भाष्य दयानन्दकृत आर्याभिविनय से लिया है।

हमसे अलग मत कर, जो २ हमारे सहज अनुषक, स्वभाव से अनुकूल मित्र हैं, उनको आप नष्ट मत करो अर्थात् कृपा करके पूर्वोक्त सब पदार्थों की यथावत् रक्षा करो।

इस मंत्र में स्पष्ट लिखा है कि हे ईश्वर! हमारे पदार्थों को न तो तू खुद चुराना और न औरों से चुरवाना। पदार्थों को चोरी करना बिना शरीर धारी के हो नहीं सकता। आर्यसमाजियों में स्वार्थ की मात्रा विशेष पा जाती है वे अपने लिये तो ईश्वर से नित्य यह प्रार्थना करते हैं कि हे ईश्वर! तुम हमारी चोरी मत करो किन्तु जब कोई दूसरा मनुष्य पूछता है कि ईश्वर कैसा है? तब ये बतला देते हैं कि बिल्कुल निराकार। आर्यसमाजियों को यह भय है कहीं संसार को यह मालूम हो गया कि इस मंत्र में की हुई प्रार्थना से ईश्वर प्रार्थना करने वाले की चोरी नहीं करता तो फिर संसार की चोरियाँ बन्द हो जावेगी। आर्यसमाजी चाहते हैं कि हमारे घर की चोरियां बन्द हो जायं किन्तु अन्य संसार की चोरी होती रहें इस कारण ये लोग इस वेद मंत्र और स्वा० दयानन्दकृत मंत्र के भाष्य को छिपाया करते हैं।

यदि कोई दूसरा मनुष्य कह दे कि आर्याभिविनय में ईश्वर का पेशा चोरी करना लिखा है तब फिर ये चालबाजी के लम्बे चौड़े पैंतरे फेंकते हैं, कभी कहते हैं कि ऐसा लिखा ही नहीं, कभी कहते हैं इसका यह अभिप्राय ही नहीं। स्वामी जी के अभिप्राय पर चौका लगा अनेक नई नई मिथ्या कल्पनायें उठाते रहते हैं जब कुछ नहीं बनता तब इसको बिल्कुल छोड़ देते हैं और ईश्वर के निराकार होने में उपनिषद् की श्रुतियां देने लगते हैं।

एक दिन फरह जिला मथुरा में 'ईश्वर स्वरूप' पर शास्त्रार्थ चला। आर्य-समाज की तरफ से संपादकाचार्य पं० रुद्रदत्त और सनातनधर्म की तरफ से शास्त्रार्थकर्ता हम थे, शास्त्रार्थ के सभापति यहां के मान्य, प्रतिष्ठित, रईस, पेंशनर इंस्पेक्टर ला० चिरंजीलाल जी हुये। हमने कहा कि ईश्वर साकार निराकार दो रूप रखता है, साकारता में हमने यही मंत्र प्रमाण में दिया, फिर क्या था पं० रुद्रदत्त चालबाजी के पैंतरे बदलने पर उतर पड़े। हमने भी उनके समस्त पैंतरों को काट डाला और इसी मंत्र को पकड़ लिया कि बिना शरीर के पदार्थों की चोरी? इतना अन्धेर? ईश्वर तुम्हारे बर्तन-कपड़े-रोटी-लड्डू रोज

चुराले और तुम उसको इतने पर भी निराकार मानो? संपादकाचार्य जी! आप पागलों की सी बातें छोड़ दें केवल इसका निर्णय करदें कि लड्डू जलेबी का चोर क्या निराकार हो सकता है? जब घिर गये तब कहा कि स्वा० दयानन्द जी समझे नहीं-बेसमझी में लिख दिया? इतना सुनते ही लोग हंस पड़े किन्तु हमने फिर पकड़ा कि जो दयानन्द परिब्राजकाचार्य, परमहंस,वेदज्ञ, योगी और महर्षि हो वह तो वेदतत्व को समझे नहीं और एक मनुष्य जो संस्कृत न जानता हो केवल अखबार लिख लेता हो वह वेदतत्व को समझ ले यह हमारी बुद्धि में नहीं आया। अच्छा अब आप बतलावें कि स्वामी जी ने वेदभाष्य लिखते तथा लेख लिखते समय कहां २ गलतियां खाई हैं और आपने उसके विषय में क्या विवेचन किया है? इस सबूत के लिये कम से कम आप स्वामी जी की पच्चीस गलतियों की लिस्ट दें और उनको गलती सिद्ध करें एवं उन गलतियों के ऊपर आप युक्ति युक्त प्रमाणों से पुष्ट अपना विवेचन दिखलावें तब हम मान लेंगे कि स्वामी जी ने गलती खाई है? इसको सुनकर रुद्रदत्त ने कहा कि मैंने स्वामी के सब ग्रन्थ देखे हैं वे और तो कहीं नहीं भूले केवल इसी मंत्र पर भूल गये हैं-इतना सुनते ही बीस हजार पबलिक् हंस पड़ी। हमने कहा कि लोमड़ी उछली कूदी बहुत, जब बेरों तक न पहुँची तब यह कह कर चलदी कि अभी बेर खट्टे हैं, खाने के लायक नहीं हुये। इसी प्रकार संपादक जी ने पैंतरे खूब बदले किन्तु जब कुछ भी कामयाबी नहीं हुई तब यह कहने लगे कि दयानन्द ने अर्थ गलत किया है। अब हमें यह पूछना है कि यह अर्थ तुम्हारी दृष्टि में गलत है या दयानन्द जी की दृष्टि में? बतलाओ, पं० रुद्रदत्त जी ने कहा स्वामी जी ने तो लिखा ही है, हमारी दृष्टि में गलत है। फिर हमने कहा कि बस शास्त्रार्थ तय हो गया, यह अर्थ स्वामी जी की दृष्टि में सही है इस कारण स्वामी जी ईश्वर का शरीर धारण करना मानते हैं। रही बात तुम्हारी, नहीं मालूम तुम नास्तिक हो या मुसलमान अथवा ईसाई, हम तुम्हारे सिद्धान्तों पर शास्त्रार्थ नहीं करते स्वामीजी के सिद्धान्तों पर कर रहे हैं जब स्वामी जी ईश्वर को साकार मानरहे हैं तब फिर हम यह कैसे मानलें कि ईश्वर कोरा निराकार है, बहस हो चुकी ,फैसले के लिये आर्याभिविनय सभापति जी के आगे रखता हूँ। सभापतिजी ने आर्याभिविनय को खूब पढ़ा, पन्द्रह मिनट विचार किया अन्त में फैसला दिया कि प०कालूरामशास्त्री जी ने स्वामी जी के लेख में ईश्वर को साकारता दिखलादी बस आर्यसमाज की हार होगई।

नं० (४) अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्नाधूपयामि देवजने पृथिव्याः। मखायं त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।

यजु० अ० ३७ मंत्र ९

हे मनुष्य! जैसे मैं (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के (देवयजने) विद्वानों के यज्ञस्थल में (वृष्णः) बलवान् (अश्वस्य) अग्नि आदि के (शक्ना) दुर्गंध के निवारण में समर्थ धूम आदि से (त्वा) तुझको (मखाय) वायु की शुद्ध करने के लिये (त्वा) तुझको (धूपयामि) सम्यक तपाता हूँ (पृथिव्याः) पृथ्वी के बीच विद्वानों के (देवयजने) यज्ञस्थल में (वृष्णः) वेगवान् (अश्वस्य) घोड़े की (शक्ना) लेंड़ी लीद से (त्वा) तुझको (मखाय) पृथिव्यादि के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझको (मखस्य) तत्वबोध के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझको (मखाय) यज्ञ सिद्धि के लिये (त्वा) तुझको (धूपयामि) सम्यक् तपाता हूँ (पृथिव्या) भूमि के बीच (देवयजने) विद्वानों की पूजा स्थल में (वृष्णः) बलवान् (अश्वस्य) शीघ्रगामी अग्नि के (शक्ना) तेज आदि से (त्वा) आपको (मखाय) उपयोग के लिये (त्वा) तुझको (मखस्य) उपयुक्त कार्य के लिये (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझको (मखाय) यश के लिये (त्वा) तुझको (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझको (मखाय) यज्ञ के लिये (त्वा) आपको और (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझको (धूपयामि) सम्यक् तपाता हूँ।

स्वामी दयानन्द जी ने अपने भाष्य में स्पष्ट दिखला दिया है कि ईश्वर घोड़े की लेंड़ी से विद्वानों को तपाता है। केवल इतनी बात रह गई स्वा० दयानन्द जी ने यह नहीं बतलाया कि कब तपाता है, आर्यसमाज के जलसे में या विधवाविवाह में किन्तु तपाता अवश्य है। जो ईश्वर घोड़े की लीद बीन लावे और फिर उसको सुलगा कर विद्वानों को उस आग से तपा दे वह कभी निरा

कार हो सकता है ? यदि उसको भी आर्यसमाजी निराकार कहें तो फिर गजब है। संभव है कि हमारे भोले भाई आर्यसमाजियों की दृष्टि में तपाने वाला ईश्वर निराकार हो, तापने वाले आर्य विद्वान् निराकार हों, कुछ आश्चर्य नहीं है कि इनकी दृष्टि में घोड़ा भी निराकार हो।

इस लीद से तपाने पर एक रोज बड़ी हंसी आई, यह हमने पहिले एक ट्रैक्ट में लिखा था उस ट्रैक्ट को महाराजाधिराज श्री १०५ माधौ जी राव शिन्दे ग्वालियर नरेश ने कहीं पढ़ लिया। एक रोज हम उनसे मिले तो उन्हों ने कहा कि हम आर्यसमाज के ऊपर केश चलाने के लिये पुलिस को हुक्म दे आये हैं, तीन महीने से हमारे रिसाले में घोड़ों की लीद का पता नहीं लगता, हमारा अनुमान है कि आर्यसमाज का निराकार ईश्वर ही हमारे तबेले की लीद उठा ले जाता है, उसी को सुखा कर आर्यसमाजियों को तपाता होगा।

नं० ( ५ ) प्रजापतिश्चरति गर्भे

अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।

तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरा

स्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥

यजु० अ० ३१ मं० १९

हे मनुष्यो! जो ( अजायमानः ) अपने स्वरूप से उत्पन्न नहीं होने वाला ( प्रजापतिः ) प्रजा का रक्षक जगदीश्वर ( गर्भे ) गर्भस्थ जीवात्मा और (अन्तः) सब के हृदय में ( चरति ) विचरता है और (बहुधा) बहुत प्रकारों से (विजायते) विशेष कर प्रकट होता ( तस्य ) उस प्रजापति के जिस (योनिम्) स्वरूप को ( धीराः ) ध्यानशील विद्वान् जन ( परिपश्यन्ति ) सब ओर से देखते हैं ( तस्मिन् ) उसमें ( ह ) प्रसिद्ध ( विश्वा ) सब ( भुवनानि ) लोक लोकान्तर ( तस्थुः ) स्थित हैं।

हमने स्वा० दयानन्द जी का पदार्थ ज्यों का त्यों लिखा है। इस पदार्थ में ईश्वर का प्रकट होना और उसके स्वरूप को ध्यानशील पुरुषों का देख लेना लिखा है, जब उसके कोई स्वरूप है तभी तो प्रकट होता है और तभी उसके स्वरूप को ध्यानशील देखते हैं। निराकार पदार्थ जब तक साकार नहीं होगा तब तक उसका प्रकट होना नहीं बनेगा और जब तक कोई शक्ल नहीं होगी तो वह ध्यानशीलों को दीख नहीं सकेगा यहां पर स्पष्टरूप से स्वा० दयानन्द

जी ने ईश्वर को साकार माना है क्या इसके ऊपर आर्यसमाजी लोग विचार करेंगे ?

आर्यसमाजी स्वा० दयानन्द के भाष्य को छिपाना चाहते हैं, हमको इसका कारण यह मालूम होता है कि अभी तो ईश्वर आर्यसमाजियों को ही दर्शन देता है यदि इस अर्थ को कोई दूसरा समझ गया तो फिर ईश्वर उस को भी दर्शन देने लगेगा तो उसकी मोक्ष हो जावेगी। दूसरों की उन्नति पर आर्यसमाजी जलते हैं इसी कारण छिपाते हैं।

दयानन्द जी ने ईश्वर को वेद मंत्रों द्वारा शरीरी सिद्ध किया है,इन मंत्रों का दयानन्दभाष्य पढ़कर कोई भी मनुष्य यह नहीं कह सकता कि स्वामी जी ईश्वर का शरीर धारण करना नहीं मानते। न्याय को आगे रख सभी को यह कहना पड़ेगा कि यहां पर तो स्वामी जी ने ईश्वर को शरीरधारी ही माना है।

इस के विरुद्ध आर्यसमाजी कभी तो दयानन्द के अर्थ का भाव बदलते हैं कभी स्वामी जी को मूर्ख बतलाते हैं ,कभी यह कहते हैं कि हम दयानन्द के लेख को ही प्रमाण नहीं मानते, कभी कभी यह कह चलते हैं कि स्वामी जी भारी विद्वान् थे उन के लेख को समझना हंसी खेल नहीं है। अनेक हुज्जतें लड़ाकर उपरोक्त पांच वेद मंत्रों का भाव संसार के सामने नहीं आने देते।

## मूर्तिपूजा

स्वामी जी ने जैसे ईश्वर को शरीरधारी वेद द्वारा सिद्ध किया है उसी प्रकार आप मूर्तिपूजा का मंडन भी वेद से ही लिखते हैं पाठक क्रम से पढ़ें।

नं० (६) संस्कारविधि पृ० १६४ इस पते पर आर्यसमाज की संध्या में मनसा परिक्रमा लिखी है। प्रथम तो ऊपर लिखा है कि 'अथ मनसा परिक्रमा मंत्राः' इस हेडिंग के बाद नीचे 'प्राचीदिगग्निरधिपतिः' इत्यादि वेद के छः मंत्र परिक्रमा करने के लिखे हैं। जिन मंत्रों से हमारे समाजी भाई नित्यप्रति ईश्वर की मानसिक परिक्रमा करते हैं। मन से ईश्वर की परिक्रमा करना तब ही हो सकता है जब कि ईश्वर की मूर्ति कायम करली जावे। मूर्ति कायम करके उसके चारों तरफ घूमना निःसन्देह मूर्तिपूजन है क्योंकि बिना स्वरूप के शरीर या मूर्ति के परिक्रमा हो ही नहीं सकती। हमारे आर्यसमाजी भाइयों को ईश्वर की मूर्ति नित्य प्रति बनानी पड़ती है, यह दूसरी बात है कि सनातनधर्मी चार अंगुल या बिलस्त भर की मूर्ति बनाते हों और आर्यसमाजी भाई सौ दो सौ

मील लम्बी या पचास साठ मील चौड़ी बनाते हो परन्तु बिना मूर्ति के इनकी संध्या हो ही नहीं सकती। जब ये रोजाना संध्या करते हुये संध्या में ईश्वर की मन से परिक्रमा करते हैं तब क्या कोई भी विचारशील मनुष्य यह कह सकता है कि ये मूर्ति नहीं पूजते।

दयानन्द जी जो संध्या में ईश्वर की नित्य 'मनसा परिक्रमा' करना लिखते हैं क्या इतने पर वे मूर्तिपूजा का मण्डन नहीं करते?

नं० ( ७ ) सत्यार्थप्रकाश पृ० ६६ में लिखा है कि 'पश्चात् थाली अथवा भूमि में पत्ता रख के पूर्व दिशादि क्रमानुसार यथाक्रम इन मन्त्रों से भाग रक्खे' और संस्कारविधि पृ० १६८ में इसी के लिये लिखा है कि 'तत्पश्चात् निम्नलिखित मंत्रों से बलिदान करें'।

ओं सानुगायेन्द्राय नमः। इससे पूर्व

ओं सानुगाय यमाय नमः। इससे दक्षिण

ओं सानुगाय वरुणाय नमः। इससे पश्चिम

ओं सानुगाय सोमाय नमः। इससे उत्तर

ओं मरुद्भ्यो नमः। इससे द्वार

ओं अद्भ्यो नमः। इससे जल

ओं वनस्पतिभ्यो नमः। इससे मूसल और ऊखल

ओं श्रियै नमः। इससे ईशान

ओं भद्रकाल्यै नमः। इससे नैर्ऋत्य

सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि दोनों में यह लेख है। साथ चलने वाले गण सहित इन्द्र के लिये एक ग्रास का भोग पूर्व में रखने की आज्ञा स्वा० दयानन्द जी ने दी है एवं गण सहित यमराज के लिये एक ग्रास का भोग दक्षिण में, वरुण के लिये एक ग्रास का भोग पश्चिम और चन्द्रमा के लिये उत्तर में लिखा है, आर्यसमाजियो! यह क्या है? तुम बड़े हुज्जतबाज हो, अब चलाओ हुज्जत? यह इन्द्र कोई आर्यसमाजी है? इसके साथ कितने आदमी रहते हैं? इसका भोग पूर्व में रक्खा जाता है क्या यह कलकत्ते में रहता है? या कोई चीन का लामा है? और यह प्रत्येक आर्यसमाजी के यहां किस समय भोजन खाने को पहुँचता है? इसके साथ बहुत से नौकर हैं फिर क्या सबका

पेट एक ही ग्रास से भर जाता है ? यम का भोग दक्षिण में क्यों रक्खा गया, क्या कोई यम नाम वाला आर्यसमाजी अपने नकौर चाकरों को लेकर मद्रास में रहने लगा है ? यह पश्चिम में रहने वाला वरुण कौन है, क्या कोई शुद्ध किया हुआ काबुली पठान है ? और उत्तर में जो चन्द्रमा की बलि रखवाई है, यह चन्द्रमा कौन है ? संभव है आर्यसमाजियों को दाल, भात, रोटी परोस कर खिलाने वाला यह कोई उत्तर का भंगी हो ? आर्यसमाजियो ! इन्द्र, यम, वरुण, सोम ये कौन हैं और आर्यसमाजी इनको एक एक ग्रास भोजन क्यों देते हैं ? यहां पर तो चालाकी खेलने में चार लाख आर्यसमाजियों की बुद्धि का दिवाला निकल जायगा ? ये कोई मनुष्य नहीं हैं वरन् इन्द्र, यम, वरुण, सोम ये वे ही चारों देवता हैं जिनको वेद ने देवता माना है और वेद के दुश्मन आर्यसमाजी जिनका खण्डन किया करते हैं। अक्ल को नीलाम करने वाले आर्यसमाजियो ! और करो मूर्तिपूजा का खण्डन ? चक्खो मजा ? ये चारों देवताओं को भोग रखना क्या मूर्तिपूजा नहीं है ? स्वामी दयानन्द जी ने तुमको बेवकूफ बना आखिर यहां मूर्तिपूजा करवा ली या नहीं ? यहां पर मूर्तिपूजा खण्डन करने वाले आर्यसमाजियों के गाल पर स्वामी जी ने वह थप्पड़ दिया है कि जब तक 'सत्यार्थप्रकाश' और 'पंचमहायज्ञविधि' तथा "संस्कारविधि" संसार में रहेंगी आर्यसमाजी संसार को मुंह दिखलाने से छिपते फिरेंगे।

स्वामी जी ने चार ही देवताओं को भोग लगाना नहीं लिखा किन्तु पांचवें मंत्र में 'मरुत देवता' और छठे मंत्र से 'जल देवता' को भी एक एक ग्रास भोग देना लिख दिया है। सातवें मंत्र में स्वामी जी ने 'वनस्पतिभ्यो नमः' यह मंत्र पढ़कर ऊखल-मूसल को भोग लगाना लिखा, आर्यसमाजियो ! ये तुम्हारे दो देवता बड़े बिकट हैं एक गोल गोल गड्ढे वाला और एक लम्बा। जब देवता में देवता पड़े तब पड़ोसी भी घबरा उठें। कहो, तुमतो कहते थे कि हम मूर्ति नहीं पूजते तुमसे तो ओखली-मूसल तक नहीं बचा ? इतने बड़े पुजारी होकर तुम जो यह कहते हो कि हम मूर्ति नहीं पूजते क्या उस वक्त तुमको ऊखल-मूसल का भोग लगाना याद नहीं रहता या संसार की आंख में धूल झोंकना तुम्हारा पेशा हो गया है ? ओखली-मूसल के भोग को जब हम शास्त्रार्थ में रखते हैं तब आर्यसमाजी ऐसे फड़ फड़ाते हैं जैसे बिना पानी की मछली फड़ फड़ाया करती है। एक दिन गोरखपुर के प्रश्नोत्तर में इस ओखली-मूसल के भोग को हमने आगे रख दिया

तो आर्यसमाजी पंडित जवाब देता है कि हम तो ओखली-मूसल को भोग नहीं लगाते ? इसको सुनकर हमने कहा कि तुम दयानन्द को बेवकूफ समझ नास्तिक बन जाओ तो इसका हम क्या करें ? स्वामी जी ने ओखली-मूसल को भोग लगाना लिखा या नहीं ? हमारे इस कथन पर आर्यसमाजियों की नानी मर गई, अपनी किताबें बटोर कर फौरन चल दिये। आर्यसमाजियो ! हम खूब समझते हैं कि झूठ बोलना, चालाकी करना, धोखा देना ये तीन ही कर्तव्य तुम्हारे रह गये हैं काम पड़ने पर तुम दयानन्द जी को भी बेवकूफ बनाते हो इतने पर भी तुम्हें लज्जा नहीं आती यह शोक है।

ओखली-मूसल के बाद स्वामी जी ने 'श्री' और 'भद्रकाली' का भोग लगाना लिखा है। तुम्हारी दृष्टि में ये दोनों कौन हैं ? क्या ये किसी कन्या विद्यालय की अध्यापिका हैं या कोई उपदेशिका ? तुम क्या समझ कर इनको भोग रखते हो, ये वे ही लक्ष्मी और भद्रकाली दुर्गा हैं जो पापियों का खून पी जाया करती हैं। इन भोग के दोनों मंत्रों पर बबयाल जिला अंबाला में आर्यसमाजियों ने बड़ी कच्ची खाई, जब कुछ उत्तर नहीं बना तब दुम दबा कर भागे। तुम तो दुर्गा की मूर्ति का खण्डन करते हो और फिर भोग क्यों लगाते हो, इसका क्या जवाब है ? तुम्हारे पास इसका कोई जवाब नहीं, लाचार होकर यही कहते हो कि कालूराम मूर्ख है, आर्यसमाज से बैर रखता है, हसननिजामी का नौकर है, उसके साथ कोई आर्यपंडित शास्त्रार्थ न करे। तुम यह बतलाओ कि कालूराम मूर्ख है या तुम ? तुम घर में तो 'श्री' और 'भद्रकाली' का भोग लगाओ और घर से बाहर निकल इनका खण्डन करो, ऐसा करना क्या यह मूर्खता नहीं है ? हमें विश्वास है कि तुम 'श्री' और 'भद्रकाली' के भोग पर मन ही मन गालियां देते हुये स्वामी जी को मूर्ख बतला रहे हो। यही तो मजा है कि बिना लिखे पढ़े आर्यसमाजियों की दृष्टि में महर्षि स्वामी दयानन्द जी भी मूर्ख हैं, मालूम होता है कि अब तुम अपने मन से निराकार ईश्वर के चाचा गुरु बन गये हो, तुम्हारी इस दुरंगी चाल को संसार घृणा की दृष्टि से देखता हुआ तुमको नरपशु समझता है।

नं० (८) आर्याभिविनय पृ० १८ में लिखा है कि—

वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः।

## तेषां पाहि श्रुधीहवम् ।

ऋ० १ । १ । ३ । १

हे अनन्त बल परेश वायो दर्शनीय ! आप अपनी कृपा से ही हमको प्राप्त हो, हम लोगों ने अपनी अल्पशक्ति से सोम ( सोमवल्यादि ) ओषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है और जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं वे आप के लिये अलंकृत अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाये हैं और वे सब आप के समर्पण किये गये हैं उन को आप स्वीकार करो ( सर्वात्मा से पान करो ) हम दीनों को दीनता सुन कर जैसे पिता को पुत्र छोटी चीज समर्पण करता है उस पर पिता अत्यंत प्रसन्न होता है वैसे आप हम पर होओ ।

यहां पर आर्यसमाज ने निराकार ईश्वर को गुर्च के अर्क का भोग लगाया है । भोग आर्यसमाज भी लगाता है और हम भी लगाते हैं अन्तर केवल इतना है कि हम लड्डू,पेड़ा,जलेबी,खीर,साग,पूरी,दाल,भात,रोटी का भोग लगाते हैं और आर्यसमाज गिलोय के अर्क का । संसार में हम देखते हैं कि तपेदिक के बीमार को गुर्च का अर्क पिलाया जाता है संभव है आर्यसमाजी ईश्वर को तपेदिक हो गया हो और इसी कारण से ये गुर्च का भोग लगते हैं । कहीं ऐसा न हो कि इस तपेदिक वाले ईश्वर का सनातनधर्मी ईश्वर के साथ विवाद ठन जावे यह तो बेचारा तपेदिक में बीमार है और सनातनधर्मियों का ईश्वर लड्डू-पेड़ा-हलुआ-रबड़ी,दूध खाकर पहलवान बन गया है यदि दोनों में कुश्ती चल गई और इस सनातनधर्म के पहलवान ईश्वर ने तपेदिकवाले ईश्वर के पेट पर पैर रख दिया तब तो बड़ी मुश्किल हुई , एक ही पैर के रखने से इस बीमार ईश्वर का राम नाम सत्य होजावेगा और आर्यसमाज को बिना ईश्वर रहना पड़ेगा ।

एक बार आर्यसमाज के साथ सनातनधर्म का शास्त्रार्थ ठना ,सनातनधर्म की तरफ से यही मंत्र मूर्तिपूजा में हमने रक्खा , स्वा० पूर्णानन्द ने बहुत चाहा कि हम किसी तरह से इस मंत्र के पेंच में से निकल जावें किन्तु हमने नहीं निकलने दिया , अन्त में आर्यसमाज शास्त्रार्थ हार गया । गुर्च के अर्क का भोग लगाने वाला आर्यसमाज मूर्तिपूजक नहीं है इसको कोई भी मनुष्य किसी समय भी सिद्ध नहीं कर सकता ।

आर्यसमाजी इस पर बहुत घबराते हैं एक बार पं० छुट्टनलाल जी स्वामी मेरठ वालों ने यह कहा कि यह जो 'पान' करो, है इस के स्थान में

स्वा० दयानन्द जी ने 'पालन करो' लिखा था छपने में लकार उड़ गया अतएव 'पानकरो' होगया यह प्रेस की गलती है।

इस के ऊपर हमने कहा कि 'पाहि' क्रिया का अर्थ स्वामी जी ने 'पानकरो' लिखा है उस पर आप यह कल्पना उठाते हैं, कल्पना आप की मिथ्या है क्योंकि 'पाहि' का अर्थ निरुक्त ने 'पिब' किया है जिस की हिन्दी भाषा होती है कि 'पियो' इस को सुन कर स्वा० छुट्टनलाल चुप रह गये।

निराकार को सोमवल्ली के अर्क का भोग लगाना पूजा है 'स्वामीजी ने अपने अर्थ में इस का मंडन किया है फिर कौन कहता है कि स्वामीजी पूजा को नहीं मानते।

नं० (६) घृतेन सीता मधुना समज्यतां
विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना
स्मान्त्सीते पयसाभ्या ववृत्स्व॥

सब अन्नादि पदार्थों की इच्छा करने वाले विद्वान् मनुष्यों की आज्ञा से प्राप्त हुआ जल वा दुग्ध से पराक्रम सम्बन्धी सींचा वा सेवन किया हुआ पटेला घी तथा सहत वा शक्कर आदि से संयुक्त करो, पटेला हम लोगों को घी आदि पदार्थों से संयुक्त करेगा इस हेतु से जल से बार २ वर्ताओ।

आर्यसमाज के मत में लकड़ी का पटेला (पट्टा) जिससे खेत की मिट्टी एक सी की जाती है पूजनीय वस्तु है। जब पटेले के ऊपर जल, घी, दूध, शक्कर-शहद चढ़ाया जाता है तब यह पटेले का पूजन नहीं तो और क्या बलाय है। जो सोसायटी लकड़ी के पटेले का पूजन करे और वह फिर मूर्तिपूजन से डरे तो यह उसकी भूल नहीं तो और क्या है।

कुरारा के शास्त्रार्थ में हमने यह मंत्र पेश किया, आर्यसमाज की तरफ से शास्त्रार्थ करने वाले पं० प्रयागदत्त अवस्थी जी ने कहा कि यह झूठ बात है ऐसा नहीं लिखा। हमने उत्तर दिया क्या आर्यसमाजियों को जन्मघुटी के साथ ही झूठ बोलना सिखलाया जाता है जो लिखा रहने पर भी जबर्दस्ती से इन्कार करते हैं? कैसे नहीं लिखा, बराबर लिखा है, आप उसका जवाब नहीं दे सकते इस कारण कहते हैं कि नहीं लिखा? इतना सुनते ही पंडित जी ने आर्यसमाजी अन्य पंडितों से कहा कि उठा कर देखियो क्या लिखा है? हमारे समीपस्थ बरौली

ग्राम निवासी महाशय ईश्वरीप्रसाद कुर्मी ने वेद उठा कर एकदम पढ़ दिया, बीस हजार पबलिक् में कहकहा मच गया, जितने आर्यसमाजी पंडित थे सब लज्जित हो गये। हमने अवस्थी जी से कहा कि हमारा कथन तो आपने असत्य माना था किन्तु अब तो आपने एक आर्यसमाजी से पढ़वाया है, अब दीजिये जवाब ? जवाब क्या था, अवस्थी जी को चुप हो जाना पड़ा।

आर्यसमाज स्वामी लिखित इस पटेले के पूजन को जान बूझ कर छिपाती है, इसके छिपाने का कारण यह है कि यदि दूसरे लोग जान जावेंगे तो वे भी पटेला पूजने लगेंगे और यह पटेला उनको घी, दूध, शक्कर, पानी, शहद देने लगेगा तो आर्यसमाजियों के हाथ से एक बड़ा भारी रोजगार निकल जावेगा।

नं० ( १० ) संस्कारविधि पृ०७३ में लिखा है कि—

ओं ओषधे त्रायस्व एन थं मैनथं हिथंसीः।

इसका अर्थ यह है कि 'भो ओषधे ! एनं बालं त्रायस्व एनं मा हिंसीः' है ओषधि कुश ! इस बालक की रक्षा कर इसको मत मार।

कुश तृण है, तृण से जीवन प्रार्थना करना निःसन्देह मूर्तिपूजा है।

नं० ( ११ ) संस्कारविधि पृ० ७४ में लिखा है कि—

ओं विष्णोर्दथंष्ट्रोसि।

इसका भावार्थ यह है कि हे छुरे ! तू विष्णु की दाढ़ है।

बड़े आश्चर्य की बात है कि इनके मत में विष्णु तो निराकार और उस निराकार विष्णु के चार २ अंगुल की दाढ़ तथा तरक्की के जमाने में विष्णु की दाढ़ भी तरक्की कर गई।

देशी छुरा तो चार ही अंगुल का होता था किन्तु अब बिलायती छुरा आठ आठ अंगुल का आता है। अब कुछ दिन से इनके निराकार ईश्वर की आठ आठ अंगुल की दाढ़ हो गई। जिसके इतनी बड़ी बड़ी दाढ़ हो और वह सर्वथा निराकार रहे इस बात को कोई भी विचारशील मान नहीं सकता। हम कैसे मान लें कि छुरा निराकार ईश्वर की दाढ़ है। कोई माने या न माने आर्यसमाजियों को तो मानना ही पड़ेगा क्योंकि उनकी धर्मपुस्तक में लिखा है। आगे चल कर फिर संस्कारविधि पृ० ७३ में लिखा है कि—

ओं शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते
मा मा हिंसीः ।

इसका भाषा यह है कि हे तेजधार वाले छुरे ! शिव तेरा नाम है और लोहा तेरा बाप है मैं तुझे नमस्ते करता हूँ ।'मामा हिँसीः' इतने पद को लेकर आगे छुरे से प्रार्थना की जाती है कि—

ओं स्वधिते मैनथं हिंथं सीः ।

सम्वत् १६३३ की छपी संस्कारविधि में स्वा० दयानन्द जी ने इस मंत्र का भाषा लिखा था कि 'हे छुरे ! तू इस बच्चे को मत मार'। स्वा०दयानन्द जी के स्वर्ग वास होने के पश्चात् आर्यसमाज ने यह समझा कि इस भाषा टीका से तो साधारण मनुष्य भी छुरे से प्रार्थना करनी समझ जावेंगे अतएव यह भाषा टीका संस्कारविधि से निकाल दिया गया, चाहें निकाल दें और चाहे रखलें अर्थ मंत्र का यही होगा जो स्वा० दयानन्द जी ने लिखा था।

सचाई किसी की छिपाई नहीं छिपती, 'अन्ततो गत्वा' रामगोपाल विद्यालंकार गुरुकुल कांगड़ी ने स्वामी जी कृत संस्कारविधि पर "संस्कार प्रकाश" नामक टीका लिखा और वह टीका गोविन्दराम-हासानन्द जी ने सम्वत् १६८४ में छपवाया, उस में "स्वधिते मैनँ हिं ँसीः" इस मंत्र का भाषा टीका लिखा है कि 'हे लोहे ! इस बालक को हानि मत पहुँचाना"

छुरे से यह प्रार्थना करना कि तू इस बच्चे को मत मार, निःसन्देह मूर्तिपूजा है फिर कौन कहता है कि आर्यसमाज मूर्तिपूजक नहीं है ? हमने एक दिन एक मनुष्य से एक कविता सुनी थी वह यह है ।

**देव मूर्ति कभी न पूजें पूजें छुरा जो नाइयों का !**
**अजब हाल संस्कारविधि में आर्यसमाजी भाइयों का ॥**

स्वामी जी ने मूर्तिपूजा को अपने ग्रन्थों में भली भांति लिखा है जिसको हम ऊपर दिखला आये हैं किन्तु आर्यसमाजी इस पूजा को नहीं चाहते।

## मृतकश्राद्ध

नं० ( १२ ) स्वामी दयानन्द जी ने 'प्रथमावृत्ति सत्यार्थ प्रकाश' में मृतक पितरों का ही श्राद्ध लिखा था किन्तु सम्वत् १६४० की शुभ तिथि नरक चतुर्दशी को स्वामीजी का शरीर पात होगया। सम्वत् १६४१ में जो द्वितीयावृत्ति 'सत्यार्थप्रकाश' आठ पंडितों ने बनाया तब इस सत्यार्थप्रकाश में जीवित पितरों का श्राद्ध लिख दिया।

स्वामी जी का बनाया प्रथमावृत्ति ही सत्यार्थप्रकाश था द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश उनका बनाया नहीं है। आर्यसमाजी जो द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश को स्वा० दयानन्द का बनाया बतला रहे हैं यह मिथ्या है।

इस विषय में संयुक्तप्रान्त आर्यप्रतिनिधि सभा के सभापति, समस्त उपदेशकों के प्रबन्धक, सामवेदभाष्यकार, भास्कर प्रकाश के लेखक, वेदप्रकाश के सम्पादक माननीय स्वर्गीय पं० तुलसीराम जी स्वामी लिखते हैं कि 'सत्यार्थप्रकाश की द्वितीयावृत्ति आर्यसमाज प्रयाग की बनाई और वैदिक प्रेस कमेटी की निगरानी में छपी है। देखो वेद प्रकाश अगस्त सन् १९१० ई० पृ० १८२।

इस लेख से स्पष्ट सिद्ध है कि द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश आर्यसमाज प्रयाग ने बनाया है और स्वामी जी के मरने के बाद बना है। जब यह मामला शास्त्रार्थ में आता है तब आर्यसमाजी अपनी चालाकियों से जैसे दयानन्द जी को झूठा ठहराते हैं उसी प्रकार हमारे मित्र स्वर्गीय पंडित तुलसीराम स्वामी जी को भी झूठा बना देते हैं और जब इनके आगे कोई दूसरा पंडित डट जाता है तब ये दूसरे पहलू पर चल जाते हैं, कहने लगते हैं कि स्वामी जी ने तो प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में जीवित पितरों का ही श्राद्ध लिखा था किन्तु सनातनधर्मी कंपाजीटरों ने उसके स्थान में मरों का लिख दिया। कैसा जाल बनाया, श्रुति-स्मृति आर्यसमाजियों से विरोध रखती हैं, आर्यसमाजियों के विरुद्ध चलती हैं: बस इनका कोई आधार है तो जाल बनाना है। (१) कंपाजीटरों से एक अक्षर की हेरा फेरी या न्यूनाधिकता होती है इसको सभी प्रेसोंवाले जानते हैं। कंपाजीटर पंडित नहीं होते जो किसी किताब के दो चार पृष्ठ लिख डालें? कंपाजीटरों के जिम्मे झूठा कलंक लगाना पिण्ड छुड़ाने के सिवाय और कुछ भी फल नहीं देता। (२) कल्पना करो कि कंपाजीटरों ने ही मिला दिया तो प्रूफ तो स्वा० दयानन्द जी ने ही देखा था यह तो भास्कर प्रकाश में स्पष्ट लिखा है कि प्रूफ स्वामी जी ने देखा है, प्रूफ देखते समय कंपाजीटरों की मिलावट को क्यों नहीं निकाला। (३) फिर स्वा० दयानन्द जी ने प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश का शुद्धाशुद्ध पत्र बनाया, सब अशुद्ध पद तो स्वामी जी को दीख गये किन्तु मरे पितरों का श्राद्ध जो दो पृष्ठ में लिखा है यह नहीं दीखा, अच्छा न्याय है। (४) इस के बाद स्वामी जी ने प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश का विषयसूची बनाया तब भी कंपाजीटरों की मिलावट न जान पड़ी, यहां पर सब विषय तो स्वा० दयानन्द-जी को दीखे किन्तु मृतकों का श्राद्ध न दीखा। इन चार बातों का जवाब आर्य-

समाज तब तक नहीं दे सकती जब तक कि आर्यसमाज का अस्तित्व संसार में विद्यमान है। चालबाजियों से स्वा० दयानन्द जी के लेखों को लूट से कुचलना यह चार लाख आर्यसमाजियों के लिये भयंकर लज्जा का अवसर है।

नं० (१३) जाने दो स्वा० दयानन्द जी के पुराने ग्रंथों को। आजकल जो ग्रन्थ चालू हैं, जिन को आर्यसमाज मानती है उन में भी तो पितरों का श्राद्ध-तर्पण और पितरों के नाम का हवन लिखा है? संस्कारविधि पृ० ६४ नामकरण संस्कार में जहां तिथि और तिथि के देवता; नक्षत्र और नक्षत्र के देवताओं के नाम से हवन करना लिखा है वहां पर मघा नक्षत्र और मघा नक्षत्र के स्वामी पितरों के नाम से भी आहुति देनी लिखी है। यहां पर ही अमावास्या तिथि और इस के स्वामी पितरों के नाम से हवन करना लिखा है, क्या मघा के स्वामी और अमावास्या के स्वामी पितर जिन के नाम का हवन होता है वे जीवित आर्यसमाजी हैं?

नं० (१४) सत्यार्थप्रकाश पृ० ६८ में लिखा है कि

**ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्। अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम् बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्। सोमपाःपितरस्तृप्यन्ताम्। हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम्। आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम्। यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि। पित्रे स्वधा नमः पितरं तर्पयामि। पितामहाय स्वधा नमः पितामहं तर्पयामि। प्रपितामहाय स्वधा नमः प्रपितामहं तर्पयामि। मात्रे स्वधा नमः मातरं तर्पयामि। पितामह्यै स्वधा नमः पितामहीं तर्पयामि। प्रपितामह्यै स्वधा नमः प्रपितामहीं तर्पयामि। स्वपत्न्यै स्वधा नमः स्वपत्नीं तर्पयामि। सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धिनस्तर्पयामि। सगोत्रेभ्यःस्वधा नमः सगोत्रांस्तर्पयामि।**

हम आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि यह तर्पण क्या जीवित पितरों का है? यदि सच ही जीवतों का है तो आर्यसमाजी बतलावें कि कौन २ आर्यसमाजी सोमसद हैं जिन का यह तर्पण है? और अग्निष्वात्त पितर कौन हैं, किस २ आर्यसमाजी के बाप दादा बर्हिषद हैं एवं किस२ आर्यसमाजी के घर में सोमपा नाम के पितर निवास करते हैं। कौन२ आर्यसमाजी अपने पितरों को हविर्भुक् मानते

हैं, किस२ आर्यसमाजी ने अपने पितरों का नाम आज्यपा रक्खा है जब इन शब्दों के अर्थ किये जायंगे और इन पितरों का निवासस्थान पूछा जायगा एवं जब यह सवाल होगा कि वे पितर कौन हैं जो बिल्कुल अन्न नहीं खाते केवल आज्यपा हैं घी पी कर रहते हैं इतना पूछते ही आर्यसमाजियों को मूक होजाना पड़ता है।

नं० (१५) संस्कारविधि पृ० १६६ बलिदान में लिखा है कि

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः।

इस मंत्र को पढ़ कर एक ग्रास भोग पितरों के लिये दक्षिण दिशा में रख दे। क्या यह दान जीवित पितरों के लिये रक्खा जाता है? (१) दक्षिण की तरफ क्यों? क्या यह कोई कानून है कि जितने पितर हों वे दक्षिण दिशा मद्रास वगैरह में रहें और छोटी२ उम्र के आर्यसमाजी लोग दरभंगा, मुजफ्फरपुर, नैपाल और गंगोत्तरी में रहें? (२) समस्त जीवित पितरों के लिये यह एक ग्रास अन्न पर्याप्त है? इस एक ग्रास को खाकर समस्त जीवित पितरों का पेट भर जावेगा? (३) यह जीवित पितरों का श्राद्ध है या फांसी? घर में दश-पांच जितने भी जीवित पितर होंगे उन सब को एक ग्रास ही अन्न दिया जायगा, अधिक अन्न देने की स्वामी जी की आज्ञा ही नहीं। एक ग्रास से पेट न भर कर जब पितर 'हाय भूखे मरे-हाय भूखे मरे' कह कर चिल्लावेंगे तब यही जवाब दिया जायगा कि चाहे तुम मरो या बचो, महर्षि के लेख के मुताबिक तुम सब को एक ही ग्रास अन्न मिलेगा। हम इतने नास्तिक नहीं हैं जो महर्षि की आज्ञा का उल्लंघन करें। अब बतलाओ यह जीवित पितरों का श्राद्ध करना है या तड़फा कर भूखों मारना, इस से अच्छा तो यही है कि तुम एक ग्रास अन्न से भी इन्कार कर दो, जो कुछ होना होगा हो जावेगा इस एक ग्रास अन्न दान को जीवतों के लिये कोई नहीं कह सकता।

नं० (१६) संस्कारविधि पृ० ११५ समावर्तन प्रकरण में लिखा है कि "हाथ में जल ले, अपसव्य और दक्षिण मुख होके " ओं पितरः शुन्धध्वम्,, इस मंत्र से जल भूमि पर छोड़ दे,,।

यदि श्राद्ध तर्पण जीवित पितरों का ही होता है तो फिर' हाथ में जल लेना कैसा? क्या आर्यसमाजियों के घरों में लोटा गिलास, कटोरा, कुछ भी नहीं रहता? क्या इनकी कुर्की होगई? या ये सब होटलों में हो खाकर गुजारा करते हैं, गरीब से गरीब घर में भी एक दो बर्तन रहते हैं पीतल के न

सही तो मिट्टी के ही सही, क्या आर्यसमाजियों के यहां मिट्टी का भी कोई बर्तन नहीं? क्या वजह है जो ये अपने जीवित पितरों को बर्तन से जल न देकर हाथ से देते हैं ?

स्वा० दयानन्द जी हैं बड़े मसखरे, वे लिखते हैं कि 'अपसव्य होकर' अपने जीवित पितरों को पानी पिलाया करो। अपसव्य होना, जनेऊ को दक्षिण कंधे से हटा कर बायें कंधे पर धरना यह कोई आर्यसमाज की सभ्यता है या इसमें कोई गूढ़ फिलास्फी है ? वेदादिक सच्छास्त्रों में तो मृतक पितरों के अन्न-जल देने पर ही अपसव्य होना लिखा है। आर्यसमाजी जो जीवित पितरों के जलदान के समय अपसव्य होते हैं इस अपसव्य होने का कोई छिपा हुआ वेद मंत्र इन को जरूर मिलगया है नहीं तो क्या इनका सिर फिरा था।

कहीं जाड़े का हो महीना, रात का हो समय और कपड़े ओढ़े हुये पड़े हों अब आई मुश्किल। पहिले रजाई उतारो, फिर कोट, उस के बाद वास्कट को दूर धरो, कमीज निकाल कर अलहदा फेंको, सलूके को उतार कर दूर पटको फिर अपसव्य होकर पानी दो। मजा रहा, बाप तो प्यासे मर गये क्योंकि ये जल भी पेट भर के न देंगे और आप मुफ्त में ही जा मरे, यदि ऐसे में लग जाय ठंडी हवा तो पहिले राम नाम सत्य बाप का हो या बेटे का इसको आर्यसमाजी ही समझ लें।

स्वा० दयानन्द जी यह भी लिखते हैं कि "दक्षिण की तरफ मुख कर के" यह क्यों ? मालूम होता है कि भारत के उत्तर भाग में आर्यसमाजियों का रोजगार नहीं चलता अतएव उन के पितर पूर्व उत्तर पश्चिम भारत में बिल्कुल ही नहीं रहते। यहां पर जो दक्षिण की तरफ को मुख करना लिखा है यह स्पष्ट सिद्ध कर देता है कि आर्यसमाजियों के जीवित पितर निजाम हैद्राबाद के यहां नौकर हो गये हैं तभी तो दक्षिण की तरफ को मुख किया जाता है, नहीं तो दक्षिण दिशा में मुख करने की क्या जरूरत ?

आर्यसमाजी अपने पितरों को जल भी कितना पिलाते हैं कि जितना एक हाथ में आ सकता हो उतना, और किसी पितर को अधिक प्यास हो तो बनी रहे ये तो अधिक नहीं पिलावेंगे क्योंकि स्वामी जी ने एक ही चुल्लू पानी पिलाना लिखा है। इन की आज्ञा के विरुद्ध एक गिलास या एक लोटा पिला कर आर्यसमाजियों को ईसाई अथवा मुसलमान नहीं बनना है। फिर स्वामीजी लिखते हैं कि वह जल जमीन में छोड़ दे, फूट गई आर्यसमाजियों के पितरों की तकदीर

यह एक चुल्लू जल भी पितरों को न मिला, जमीन में छोड़ा गया। जमीन में छोड़ने का मतलब क्या? क्या तर्पण करने वाले महाशय के पितर जमीन के अन्दर बैठे हैं जो उस जल को गट गट पीजावेंगे? यह तर्पण जीवित पितरों का हो सकता है? आर्यसमाजियो! तुम हमें बेवकूफ मत बनाओ, यह मत कहो कि यह तर्पण जीवित पितरों का है।

## विधवा विवाह निषेध

नं० (१७) सत्यार्थप्रकाश पृ० १११ में लिखा है कि

किन्तु ब्राह्मण· क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षतयोनि स्त्री और क्षतवीर्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिये। (प्रश्न) पुनर्विवाह में क्या दोष है? (उत्तर) (पहिला) स्त्री पुरुष में प्रेम न्यून होना, क्योंकि जब चाहे तब पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष छोड़ कर दूसरे के साथ संबन्ध करले (दूसरा) जब स्त्री वा पुरुष पति वा स्त्री के मरने के पश्चात् दूसरा विवाह करना चाहे तब प्रथम स्त्री वा पूर्व पति के पदार्थों को उड़ा लेजाना और उन के कुटुम्ब वालों का उन से झगड़ा करना (तीसरा) बहुत से भद्र कुल का नाम वा चिन्ह भी न रह कर उस के पदार्थ छिन्न भिन्न होजाना (चौथा) पतिव्रत और स्त्री व्रत धर्म नष्ट होना इत्यादि दोषों के अर्थ द्विजों में पुनर्विवाह व अनेक विवाह कभी न होना चाहिये।

यहां पर स्वामी जी द्विजों में अक्षत योनि स्त्री और अक्षत वीर्य पुरुष का तो पुनर्विवाह होना लिखते हैं किन्तु क्षत योनि स्त्री और क्षत वीर्य पुरुष के विवाह का निषेध करते हैं, यह तो यहां की कथा है। आगे चल कर क्षत योनि तथा अक्षत योनि दोनों प्रकार की स्त्रियों का और क्षत वीर्य तथा अक्षत वीर्य दोनों प्रकार के पुरुषों का द्विजों में विधवा विवाह का सर्वथा निषेध करेंगे।

नं० (१८) सत्यार्थप्रकाश पृ० ११४ में लिखा है कि "द्विजों में स्त्री और पुरुष का एक ही वार विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है, द्वितीय वार नहीं"।

इस लेख में पीछे लिखे अक्षत वीर्य पुरुष और अक्षत योनि स्त्री के पुनर्विवाह का भी खण्डन कर दिया है। यह लेख द्विजों में विधवा विवाह का सर्वथा निषेध करता है।

नं० (१९) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ० २२२ में लिखा है कि "कुमारयोः स्त्री पुरुषयोरेकवारमेव विवाहः स्यात्। पुनरेवं नियोगश्च, नैव द्विजेषु द्वितीयवार

विवाहो विधीयते। पुनर्विवाहस्तु खलु शूद्रवर्ण एव विधीयते तस्य विद्याऽव्यवहार रहितत्वात्'' ।

'कुमार स्त्री पुरुष का एक ही वार विवाह विधान किया है,फिर विवाह नहीं होता नियोग होता है द्विजों (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों) में द्वितीय वार विवाह का विधान नहीं। पुनर्विवाह का तो शूद्र वर्ण में विधान है क्योंकि उसको विद्या व्यवहार की शून्यता है, ।

आर्यसमाजियों को स्वा० दयानन्द जी का यह लेख साधु जान पड़ता है या असाधु ?

नं० (२०) संस्कारविधि पृ० १६५ में लिखा है कि''एक स्त्री के लिये एक पति से एक वार विवाह और पुरुष के लिये भी एक स्त्री से एक ही वार विवाह करने की आज्ञा है"।

इन लेखों से स्वामी जी द्विजों में विधवा विवाह का निषेध लिखते हैं।

## वर्णव्यवस्था

स्वा० दयानन्द जी वर्णव्यवस्था जन्म से मानते हैं इसके उदाहरण इस प्रकार हैं।

नं० (२१) सत्यार्थप्रकाश पृ० ३८८ में लिखा है कि'' (प्रश्न) जाति भेद ईश्वर-कृत है वा मनुष्य कृत ? (उत्तर) ईश्वर कृत और मनुष्य कृत भी जाति भेद है। (प्रश्न) कौन से ईश्वर कृत और कौन से मनुष्यकृत ? (उत्तर) मनुष्य, पशु, पक्षी वृक्ष,जल, जन्तु आदि, जातियां परमेश्वर कृत हैं। जैसे पशुओं में गौ,अश्व,हस्ति आदि जातियां, वृक्षों में पीपल, वट,आम्र,आदि, पक्षियों में हंस,काक,बकादि, जलजन्तुओं में मत्स्य,मकरादि जाति भेद है वैसे मनुष्यों में ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य शूद्र अन्त्यज जाति भेद ईश्वर कृत हैं।

यहां पर स्वामीजी ने मनुष्य जाति में ब्राह्मणादि जातियां ईश्वरकृत मानी हैं, ईश्वरकृत कार्य में कोई तबदीली नहीं कर सकता इसलिये तुम्हारा लगाया गुण, कर्म स्वभाव का अडंगा निष्प्रयोजन है।

नं० (२२) सत्यार्थप्रकाश पृ० २८ में लिखा है कि''६वें वर्ष के आरंभ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्यकुल में अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हो वहां लड़के लड़कियों को भेज दें और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये विना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें" ।

यहां पर स्वामी जी ने जाति भेद वर्णव्यवस्था को जन्म से माना है। द्विजों को आचार्यकुल में प्रवेश करवाया है और शूद्रों को आचार्यकुल में फटकने नहीं दिया, उन के पढ़ने के लिये गुरुकुलों की व्यवस्था लिख दी। द्विजों के लड़कों का उपनयन करना लिखा और शूद्रों के लड़कों के उपनयन का निषेध किया यह बात सनातनधर्म मानता है।

नं० (२३) सत्यार्थप्रकाश पृ० ३८ में लिखा है कि "ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्तुमर्हति। राजन्यो द्वयस्य। वैश्यो वैश्यस्यैवेति। शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मंत्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके। यह सुश्रुत के सूत्र स्थान के दूसरे अध्याय का बचन है। ब्राह्मण तीनों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य, क्षत्रिय-क्षत्रिय और वैश्य तथा वैश्य एक वैश्य वर्ण का यज्ञोपवीत कराके पढ़ा सकता है। और जो कुलीन शुभ लक्षण युक्त शूद्र हो तो उसको मंत्र संहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढ़े परन्तु उस का उपनयन न करे – यह मत अनेक आचार्यों का है।

सुश्रुत का मत यह है कि ब्राह्मण तीन वर्णों के, क्षत्रिय दो के, वैश्य एक का उपनयन करके उनको अध्ययन करवावे। सुश्रुत का मत नहीं है कि शूद्र को अध्ययन करवाया जावे, सुश्रुत से भिन्न कई एक आचार्य शूद्रों का अध्ययन मानते हैं किन्तु शूद्रों का उपनयन होना और मंत्र भाग पढ़ाना नहीं मानते।

नं० ( २४ ) स्वामी जी संस्कारविधि पृ० ७१ में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य इन तीन ही वर्णों का उपनयन लिखते हैं और तीन ही वर्ण के लिये उपनयन के आरंभ में क्रम से पयोव्रत, यवागू, आमिक्षा ये तीन व्रत बतलाते हैं आपने अपने इस सिद्धान्त की पुष्टि में गृह्यसूत्र, मनु और शतपथ के प्रमाण भी दिये हैं। स्वामी जी के मत में तीन ही वर्णों का उपनयन संस्कार होता है, शूद्र का नहीं। उपनयन में वर्ष संख्या एवं भिन्न भिन्न प्रकार के पृथक् २ व्रत जाति को जन्म से सिद्ध करते हैं।

नं० ( २५ ) नामकरण संस्कार में स्वामी जी ने ब्राह्मण बालक का नाम शर्मा और क्षत्रिय बालक का नाम वर्मा तथा वैश्य के बालक के नाम के अन्त में गुप्त लगा कर नाम रखना लिखा है। ११ दिन के बच्चे की जाति गुण-कर्म-स्वभाव से कभी हो नहीं सकती, नाम करण में वर्णव्यवस्था जन्म से ही है। सनातनधर्मी इसको प्रमाण मानते हैं, आर्यसमाजी स्वामी जी के इस लेख से अत्यन्त चिढ़ते हैं।

## फलित ज्योतिष्।

नं० ( २६ ) गर्भाधान संस्कार में स्वा० दयानन्द जी लिखते हैं कि 'उन

ऋतुदान के सोलह दिनों में पौर्णमासी-अमावास्या-चतुर्दशी वा अष्टमी आवे उस-को छोड़ देवें इन तिथियों का छोड़ना ज्योतिष् के जातक और मुहूर्त ग्रन्थों में लिखा है एवं स्वामी जी ने इसको प्रमाण माना है।

नं० ( २७ ) नाम करण प्रकरण में स्वा० दयानन्द जी लिखते हैं कि 'इस मंत्र से एक आहुति देकर पीछे जिस तिथि, जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि और उस नक्षत्र के देवता के नाम से चार आहुति देनी अर्थात् एक तिथि, दूसरी तिथि के देवता, तीसरी नक्षत्र और चौथी नक्षत्र के देवता के नाम से अर्थात् तिथि, नक्षत्र और उनके देवताओं के नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति का रूप और स्वाहान्त बोल के चार घी की आहुति देवे, जैसे किसी का जन्म प्रतिपदा और अश्विनी नक्षत्र में हुआ हो तो।

ओं प्रतिपदे स्वाहा। ओं ब्रह्मणे स्वाहा।
ओं अश्विन्यै: स्वाहा। ओं अश्विभ्यां स्वाहा॥

इन सूत्रों की टिप्पणी देकर स्वामी जी लिखते हैं कि—

तिथिदेवता:—१-ब्रह्मन्। २-त्वष्टृ। ३-विष्णु। ४-यम। ५-सोम। ६-कुमार। ७-मुनि। ८-वसु। ९-शिव। १०-धर्म। ११-रुद्र। १२-वायु। १३-काम। १४-अनन्त। १५-विश्वेदेव। ३०-पितर।

नक्षत्र देवता:—अश्विनी-अश्वी। भरणी-यम। कृतिका-अग्नि। रोहिणी-प्रजापति। मृगशीर्ष-सोम। आर्द्रा-रुद्र। पुनर्वसु-अदिति। पुष्य-बृहस्पति। आश्लेषा-सर्प। मघा-पितृ। पूर्वाफाल्गुनी-भग। उत्तराफाल्गुनी-अर्यमन्। हस्त-सवितृ। चित्रा-त्वष्टृ। स्वाति-वायु। विशाखा-चन्द्राग्नी। अनुराधा-मित्र। ज्येष्ठा-इन्द्र। मूल-निर्ऋति। पूर्वाषाढा-अप्। उत्तराषाढ़ा-विश्वेदेव। श्रवण-विष्णु। धनिष्ठा-वसु। शतभिषज्-वरुण। पूर्वाभाद्रपदा-अजपाद। उत्तराभाद्रपदा-अहिर्बुध्न्य। रेवती-पूषन्।

गर्भाधान में एकादशी आदि तिथियों का फल नेष्ट लिखा है इस कारण स्वा० दयानन्द जी ने इन का त्याग किया है और तिथि, तिथि देवता, नक्षत्र, नक्षत्र देवताओं की नामकरण में आहुतियां देना इसको गोभिल गृह्यसूत्र शुभ फल-दायक मानता है इसकारण स्वामी जी ने संस्कार विधि में आहुति चतुष्टय का ग्रहण किया है फिर कौन कहता है की स्वामी जी फलित ज्योतिष् को नहीं मानते? उपरोक्त दोनों प्रकरणों को देख कर सभी विचारशील यह कहते हैं कि दयानन्द जी को ज्योतिष् का फलित प्रमाण है।

हां—जो स्वामी जी को देश का शत्रु और मूर्ख समझते हैं वे आर्यसमाजी कहा करते हैं कि फलित ज्योतिष् ब्राह्मणों के कमाने खाने का ढोंग है ।

## देवजाति

नं० ( २८ ) स्वा० दयानन्द जी देवजाति को मनुष्य जाति से भिन्न मानते हैं, इसकी पुष्टि में वे सत्यार्थप्रकाश पृ० १०० में लिखते हैं कि "सानुगायेन्द्राय नमः । सानुगाय यमाय नमः । सानुगाय वरुणाय नमः । सानुगाय सोमाय नमः । मरुद्भ्यो नमः । अद्भ्यो नमः । वनस्पतिभ्यो नमः । श्रियै नमः । भद्रकाल्यै नमः ।"

इन देवताओं को जो स्वा० दयानन्द जी ने एक एक ग्रास का भोग लगवाया है कोई भी विद्वान् आर्यसमाजी इनकार नहीं कर सकता, ये मनुष्य जाति से भिन्न देवजाति के इन्द्रादि देव हैं यह इनके नामों से और भोग से स्पष्ट झलकता है ।

नं० ( २९ ) सत्यार्थप्रकाश के इसी प्रकरण में 'वास्तुपतये नमः' यह मंत्र पढ़ कर एक ग्रास भोग रखना लिखा है । 'वास्तुपति' मकान के देवता को कहते हैं । जितने भी आर्यसमाजी हैं और उनके जितने मकान हैं उनका एक एक मकान का देवता है, इसको आर्यसमाजी नहीं जानते क्योंकि ये पढ़े लिखे नहीं, स्वामी जी विद्वान् थे, वे जानते थे कि एक वास्तुपति आर्यसमाजियों के मकान का देवता होता है वह भूखा न रहे इस कारण उन्होंने इस देवता के लिये एक ग्रास भोग देना लिख दिया । कोई भी मनुष्य इस देवता को मानव जाति का विद्वान् पुरुष नहीं कह सकता ।

नं० ( ३० ) नामकरण संस्कार में स्वामी जी ने सोलह तिथियों के सोलहदेवता और सत्ताइस नक्षत्रों के सत्ताइस देवता लिखे हैं । वहां पर स्वामी जी का जो लेख है वह हमने ऊपर फलित ज्योतिष् में दे दिया है उसको ऊपर से ही पढ़लें ।

## इतिहास-पुराण

स्वामी जी भारत के इतिहास-पुराण को भी प्रमाण वैसे ही मानते हैं जैसे कि सनातनधर्मी प्रमाण में लेते हैं ।

नं० ( ३१ ) सत्यार्थप्रकाश पृ० ११७ में लिखा है कि "जैसा कि पाण्डु राजा की स्त्री कुन्ती और माद्री ने किया और जैसा व्यास जी ने चित्रांगद और विचित्रवीर्य के मरजाने पश्चात् उन अपने भाइयों की स्त्रियों से नियोग करके अम्बिका में धृतराष्ट्र और अम्बालिका में पाण्डु और दासी में विदुर की उत्पत्ति की इत्यादि इतिहास भी इस बात में प्रमाण हैं'।

नं० ( ३२ ) सत्यार्थप्रकाश पृ० ८२ में लिखा है कि 'महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातंग ऋषि चांडाल कुल से ब्राह्मण हो गये थे'।

यहां पर स्वामी जी ने इतिहास को प्रमाण माना है अब आर्यसमाजी किस मुंह से कह सकते हैं कि इतिहास-पुराण हमको प्रमाण नहीं ?

यहां पर स्वामी जी ने अवतार,मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध, द्विजों में विधवा-विवाह निषेध, जन्म से वर्णव्यवस्था, फलित ज्योतिष्, देवजाति, इतिहास-पुराण की प्रामाणिकता, वेदानुकूल तथा आर्षग्रन्थप्रतिपाद्यपद्धति के अनुसार लिखी है इसको देख कर आर्यसमाजी बड़े घबराते हैं, क्रोध के मारे स्वा० दयानन्द जी से इतने चिढ़ जाते हैं कि 'मूर्ख, तक कह डालते हैं। स्वामी जी ने इन विषयों का वैदिक ग्रन्थानुकूल मण्डन क्या किया आर्यसमाज को बिना मौत लम्बे चौड़े मैदान में प्यासा मार डाला। संसार में जब तक आर्यससमाज का एक एक बच्चा जीता रहैगा तब तक स्वामी जी को गालियां मिलती रहेंगी। अब आर्यसमाज कुछ भी करे किन्तु यहां तो स्वामी जी वैदिकता का मण्डन कर गये।

# प्रमाण पञ्चक

शास्त्रकारों ने प्रत्यक्ष-अनुमान-उपमान शब्द इन चार प्रमाणों को माना है। किसी ने छः और किसी ने आठ प्रमाण भी माने हैं किन्तु छः और आठ प्रमाण भी इन्हीं चार के अन्तर्गत आजाते हैं इस कारण शास्त्र में चार ही प्रमाण प्रधान हैं। प्रत्येक बात की सत्यता एवं असत्यता के लिये ये चार प्रमाण कसौटी हैं। जिस सिद्धान्त का इन चार में से किसी प्रमाण ने मण्डन किया

वह मान्य और चारों के मण्डन से बाहर निकल जाने पर सिद्धान्त अमान्य हो जाता है ।

दयानन्द के मत के लिये ये चारों ही प्रमाण दिया सलाई का काम कर जाते हैं, दयानंद के प्रत्येक सिद्धान्त के ये चार प्रमाण शत्रु हैं इसकारण स्वामी जी ने इन प्रमाणों को सर्वथा ही छोड़ दिया, उन्हों ने अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिये पांच प्रमाण नये बनाये हैं, उन्हीं पांच प्रमाणों से वे अपने सिद्धान्तों की पुष्टि करते हैं, उनके प्रमाणों के ये नाम हैं(१ ) गाली देना (२ )झूठबोलना ( ३ ) चालाकी करना (४) धोखादेना (५) हठ बांध बैठना ।

जब कोई मनुष्य स्वामी जी से शास्त्रार्थ कर बैठता था तब वे मूर्ख होने के कारण जवाब तो दे नहीं सकते थे- एक दम गालियां देने लगते थे । शास्त्रार्थ कर्ता स्वामी जी की इस नीचता को देख कर चुप हो जाता था , उसके चले जाने पर स्वामी जी अपने मूर्ख शिष्यों से कहने लगते थे कि देखो हमने कैसा फटकारा ? हमको जीत ने आया ? जब हमसे बड़े २ हार गये तो इस बिचारे का अस्तित्व ही क्या है जो हमको जीतले ?

अब दूसरे प्रमाण की कथा सुनिये । जब स्वा० दयानन्द जी के पास दो चार विद्वान् मनुष्य शास्त्रार्थ करने जाते थे तब स्वामी जी झूठ बोलने लगते थे, कहने लगते थे देखो वायु पुराण में लिखा है कि भद्र की घोड़ी ने ऊंट का बच्चा पैदा किया ? ऐसे अप्रामाणिक ग्रन्थ कभी प्रमाण नहीं हो सकते ? किसी के तो सब ग्रन्थ देखे नहीं होते, ऐसे मनुष्य मान जाते थे कि संम्भव है ऐसा लिखा हो ? यह सुन कर सुनने वाले चुप रह जाते थे और जिसका ग्रन्थ पढ़ा होता था वह कह देता था कि स्वामी जी ! ऐसा नहीं लिखा, तुम झूठ बोलते हो ? इतना सुनते ही स्वामी जी कहने लगते थे कि तू हमको झूठा बतलाता है ? तू झूठा और तेरे बाप-दादा झूठे । इस तरह से झूठ बोल बोल के जान बचालेते थे ।

तीसरा शास्त्रार्थ इनका इस प्रकार होता था कि जब कोई मनुष्य इनसे आकर विवाद करता था तब ये कहते थे कि जो अर्थ तुमने किया इसमें प्रमाण क्या है ? वह उत्तर में किसी भाष्यकार या ऋषि का नाम लेता था तब स्वामी जी कह देते थे कि ये सब झूठ लिख रहे हैं । उसके बोले हुये प्रमाण का एक आश्चर्यमय अर्थ बना देते थे जिस फर्जी अर्थ में काव्य कोष, निरुक्त, निघंटु कुछ भी प्रमाण न मिले । स्वामी जी का अर्थ वैसा ही होता

थे जैसे ऊंट का अर्थ चूहा और छुछूंदर का अर्थ रेलगाड़ी, ऐसे ही असम्भव अर्थों से स्वामी जी ने यजुर्वेद का भाष्य लिखा है। जब ऐसे अनर्थकारी अर्थों से शास्त्रार्थ करने वाला चकित रह जाता था तब स्वामी जी कह देते कि हां तुम इन बातों को अभी नहीं समझते, कुछ दिन और पढ़ो ? इस प्रकार की चालाकी करना स्वामी जी के लिये बांयें हाथ का कर्तव्य था।

चतुर्थ—बाज बाज जगह स्वामी जी धोखे से काम ले लेते थे। किसी मनुष्य ने शास्त्रार्थ में शतपथ का प्रमाण दिया तो स्वामी जी फौरन कह देते थे कि इसको हम नहीं मानते ? शतपथ वेद नहीं है ? और जब आप शतपथ का प्रमाण दें और यदि कोई दूसरा कह दे कि आप तो शतपथ को मानते ही नहीं फिर उसका प्रमाण क्यों देते हो ? तब कह बैठते थे कि हमारा प्रमाण वेदानुकूल है। यदि वेदानुकूलता उसने पकड़ ली तो स्वामी जी हार गये, नहीं तो धोखा देकर जीत जाते थे।

शास्त्रार्थ में स्वामी जी को यदि ठीक प्रमाण दे दिया गया और उस प्रमाण को स्वामी जी के मनने मान भी लिया किन्तु ऊपर से यही कहते रहते थे कि यह गैर मुमकिन है, ऐसा कभी हो नहीं सकता। हठ के जरिये से शास्त्रार्थ के बिजय करने के पुलाव पकाने लगते थे यह उनका पंचम प्रमाण है।

स्वामी जी ने वाणी द्वारा जो कुछ भी काम किया इन पांच ही प्रमाणों के अवलम्बन से किया और उन्होंने जितने ग्रन्थ लिखे इन पांच प्रमाणों के सहारे से लिखे। आज हम विस्तार पूर्वक यह दिखलावेंगे कि स्वामी जी के ग्रन्थों में इन्हीं पांच प्रमाणों के अवलम्बन से लेख लिखे गये हैं पाठक इसको ध्यान से पढ़ें।

## गालियां

आज हम स्वामी जी के प्रथम प्रमाण के कुछ उदाहरण जनता के आगे रखते हैं जनता उनको पढ़कर यह पूर्ण ज्ञान कर सकेगी कि स्वामी जी किस श्रेणी के मनुष्य थे और उनका अन्तःकरण कितना पवित्र था।

नं० ( १ ) सत्यार्थप्रकाश पृ० ७० में स्वामी जी लिखते हैं कि 'तुम कुआ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोल कल्पना से हुई है'।

क्या मजा है श्रुति का बतलाने वाला कुये में गिर पड़े, ऐसे मीठे शब्द दयानन्द को छोड़कर संसार में कौन लिख सकता है ?

नं० ( २ ) वैष्णवों का खण्डन करते समय सत्यार्थप्रकाश पृ० ३१२ पं०

७ में लिखा है कि प्रथम इनका मूलपुरुष शठकोप हुआ कि जो चक्रांकितों ही के ग्रन्थों और भक्तमाल ग्रन्थ जो नाभा डोम ने बनाया है उनमें लिखा है 'विक्रीय सूर्पं विचचार योगी' इत्यादि वचन चक्रांकितों के ग्रन्थों में लिखे हैं। शठकोप योगी सूप को बना,बेचकर विचरता था अर्थात् कंजर जाति में उत्पन्न हुआ था'।

स्वामी जी जब वैष्णवों का खण्डन न कर सके तो उनको झूठे कलंक लगाने लगे। किसी भी वैष्णव ग्रन्थ तथा भक्तमाल में 'विक्रीय सूर्पं' यह नहीं लिखा ? स्वामी जी को जब वैष्णवों में कोई सच्चा दोष नहीं मिला तब फिर झूठे दोष लगाकर खण्डन न करें तो क्या करें। खण्डन रूपी भूत के जकड़े हुये स्वा० जी जब झूठा भी खण्डन न कर सके तब गालियां देने लगे। आपका क्रोध रुक न सका, आपने शठकोप को 'कंजर' लिख दिया शठकोप कंजर नहीं था, स्वा० जी क्रोध में आकर कंजर झूठ लिखते हैं क्या कोई आर्यसमाजी शठकोप को कंजर सिद्ध करने की शक्ति रखता है ? यदि रखता हो तो लेखनी उठावे, नहीं तो मानना पड़ेगा कि क्रोधी कलियुगी ऋषि ने झूठी गाली दी है।

नं० ( ३ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ०३१२ पं० १५ में लिखा है कि उस ( शठकोप ) का चेला मुनिवाहन जो कि चाण्डालवर्ण में उत्पन्न हुआ था।

हमने आज तक चार ही वर्ण सुने थे किन्तु आज एक पांचवां चाण्डाल वर्ण और मिला। एक दिन शिवशर्मा के साथ शास्त्रार्थ हो रहा था, उस शास्त्रार्थ में उनके मुंह से निकल गया कि वर्ण तो चार ही हैं। हमने इसके उत्तर में कहा आपको मालूम नहीं है वर्ण पांच हैं ? वे खूब उछले कूदे कि यदि आप पांच वर्ण सिद्ध कर दें तो हम शास्त्रार्थ की हार स्वीकार करलें हमने उठाकर सत्यार्थ-प्रकाश की यह चाण्डाल वर्ण वाली इबारत पढ़ दी। शिवशर्मा बोले कि पांचवें वर्ण की सिद्धि में शास्त्र का प्रमाण दीजिये। दयानन्द के इस लेख को संसार में एक भी आर्यसमाजी नहीं मानता ? यह मजा रहा, आर्यसमाजियों की दृष्टि में भी स्वा० दयानन्द जी को उन्माद है, स्वामी जी का 'मुनिवाहन' को चाण्डाल लिखना क्या यह गाली नहीं है ? क्या कोई आर्यसमाजी 'मुनिवाहन' को चांडाल सिद्ध कर सकता है ? यदि कोई कर सकता हो तो लेखनी उठावे नहीं तो आर्यसमाज को यह मानना पड़ेगा कि जब स्वामी जी खण्डन न कर सके तब गाली देने पर टूट पड़े।

नं० (४) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३१२ पं० १५ में लिखा है कि उस (मुनि-

वाहन ) का चेला यावनाचार्य यवनकुलोत्पन्न था।

मजा रहा, स्वामी जी अब अपने असली स्वरूप पर आये, आप गालियों से ही अपना विजय समझे हैं। यह किसी भले आदमी का काम नहीं है कि किसी अन्य सम्प्रदाय के आचार्य को कंजर-चाण्डाल-मुसल्मान कहने लगे। स्वामी जी की खूबी तब थी जब शठकोप को कंजर और मुनिवाहन को चाण्डाल तथा यावनाचार्य को मुसल्मान प्रमाणों से सिद्ध करते। प्रमाणों का तो निकल गया दिवाला? प्रमाण तो एक भी मिला नहीं, खण्डन करें तो क्या करें? और क्रोध भयंकर आगया, अन्त में गालियां देने लगे। गाली देने से ही आर्यसमाज ने स्वामी जी को 'महर्षि' पदवी दी है यदि सच ही यावनाचार्य जाति के मुसलमान थे तो फिर कोई आर्यसमाजी कलम क्यों नहीं उठाता क्या आर्यसमाजियों की विद्या-बुद्धि-विचार सभी नष्ट हो गये जो समस्त आर्यसमाजी चुप्पी साध कर बैठ गये।

नं० (५) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३१२ पं० ८ में लिखा है कि भक्तमाल ग्रन्थ जो नाभा डूम ने बनाया है।

अब क्या था, अब तो स्वामी जी को खण्डन की सड़क मिल गई, अब आप खुल्लम खुल्ला गालियाँ देने लग गये। नाभा जी को डूम कह कर आपने उनके लेख का खण्डन समझ लिया। कौन कहता है कि नाभा जी डूम थे? जो आर्यसमाजी कहता हो वह लेखनी उठा कर नाभा जी को डूम सिद्ध करे-नहीं तो मानना पड़ेगा कि ये गाली देने वाले स्वामी खण्डन में विवस होकर गालीदेने पर उतारू होगये हैं। गाली देना यह किस का काम है इसकी विवेचना मैं आर्यसमाजियों पर ही छोड़ता हूँ।

स्वा० दयानन्द जी कापड़ी जाति में उत्पन्न हुये थे और लड़कपन में इनका पेशा गाना तथा नाचना था यह बात सोलह आने सच है और 'दयानन्द छल कपट दर्पण' आदि बीसियों ग्रन्थों में लिखी है इतने पर भी जब दयानन्द जी को कापड़ी बतलाते हैं तो आर्यसमाजी हमसे बिगड़ जाते हैं और कहते हैं कि तुम झूठ बोलते हो, झूठ बोलना विद्वानों का काम नहीं। पाठको! जो हम सच्च कहते हैं तब तो आर्यसमाजी हम पर बिगड़ते हैं और हमारे इस कार्य को बुरा बतलाते हैं और जो स्वामी दयानन्द जी बिलकुल ही झूठ बोलकर शठकोप को कंजर-मुनिवाहन को चाण्डाल-यावनाचार्य को मुसल्मान एवं नाभा जी को डूम

कह रहे हैं इस गाली गलौज के लेख को पढ़कर खुश होते हैं, बाजारों में नाचते हैं और स्वा० दयानन्द जी को देशोद्धारक-महर्षि-वेदतत्व ज्ञाता कहते हैं । कहो तो सही क्या ये आर्यसमाजी पागल नहीं हैं ?

नं० ( ६ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३७२ पं० २४ में रामसनेही को रांडसनेही लिखा है ।

क्या मधुर भाषण है मानो स्वामी जी की वाणी से फूल टपकते हैं ।

नं० ( ७ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३३३ में वृन्दावन जब था तब था अब तो वेश्या बन है यह लिखा है ।

स्वामीजी का जब क्रोध न रुका तब वृन्दावनको वेश्याबन लिख दिया लेकिन शोक है कि आर्यसमाजियों ने इस लेख को झूठ माना,सच मानते तो इस वेश्या-बन में गुरुकुल न खोलते । भला वेश्याबन में गुरुकुल का क्या काम ? वेश्याबन में तो तबलचीकुल, सारंगीकुल, हारमोनियमकुल, पखावजीकुल खुलने चाहिये किन्तु आर्यसमाजियों ने वृन्दावन में गुरुकुल खोल स्वामी जी के इस लेख को असत्य सिद्ध कर दिया अस्तु जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ ।

नं० ( ८ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३२० में लिखा है कि मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं है किन्तु एक बड़ी खाई है जिसमें गिर कर चकनाचूर हो जाता है ।

बलिहारी है स्वामी जी के इस मधुर लेख और विज्ञान पर । क्या मधुर शब्दों में मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं हो सकता था ? जब मूर्तिपूजा दूषित है तो फिर स्वामी जी ने नाई के छुरे और ओखली मूसल का पूजन ही लेखनी से क्यों लिखा !

क्या कोई आर्यसमाजी संसार में यह हिम्मत रखता है कि मूर्तिपूजा को खाई और दयानन्द के पुजवाये हुये ओखली मूसल एवं नाई के छुरे ( उश्तरे ) से मनुष्य का कल्याण सिद्ध कर दे ?

नं० (६) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३१६ में लिखा है कि 'सुनो अन्धो ? पूर्ण परमात्मा न आता और न जाता है' ।

स्वामी जी का 'सुनो अंधे' यह लेख आर्यसमाजियों को सुनहरी अक्षरों में लिखकर अपने कमरों में लटकाना चाहिये ताकि उनके लड़के भी इतने ही मधुर भाषी बन जावें ।

रही आने जाने की बात, इसके विषय में स्वामी जी ने आर्याभिविनय के

'तमीशानं' इस मंत्र के भाष्य में ईश्वर को बुलाया है। जब ईश्वर कहीं आते ही जाते नहीं तो फिर इस मंत्र में स्वामी जी ने ईश्वर का आह्वान क्यों किया ? ईश्वर को बुलाया क्यों ? क्या कहीं ऐसा तो नहीं कि स्वामी जी के बुलाने से ईश्वर चला आता हो और सनातनधर्मियों के बुलाने से उसका आना जाना वेद विरुद्ध पड़ जाता हो, इसका विवेचन आर्यसमाजी ही करेंगे।

नं० (१०) सत्यार्थप्रकाश समु० २ पृ० २५ में लिखा है कि 'जो कोई बुद्धिमान उनको भेट पांच जूता दंडा व चपेटा लातें मारे तो उसके हनुमान देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं'।

आर्यसमाजियो ! तुम बतलाओ कि स्वामी जी के ये शब्द कटु हैं या मधुर ? सच्चे हैं या झूठे ? क्या तुम इस बात पर तैयार हो गये हो कि जूते लगा कर हनुमान देवी और भैरव को भगा दो ? शोक है कि इस प्रकार की गालियां देने वाले को आर्यसमाजी महर्षि लिखते हैं।

नं० ( ११ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३५६ में लिखा है कि 'जब उन्हों से दण्ड न पाया तो इनके कर्मों ने पुजारियों को बहुत सी मूर्ति विरोधियों से प्रसादी दिला दी और अब भी मिलती है और जब तक इस कुकर्म को न छोड़ेंगे तब तक मिलेगी।

यहां पर स्वामी जी मूर्तिपूजा को कुकर्म और विदेशियों के द्वारा भारत के पददलित होने को 'प्रसादी' लिखते हैं, अच्छा है किन्तु अब तो भारतवर्ष में चार लाख आर्यसमाजी हो गये और सभी आर्यसमाजियों ने चारों वेद कंठ कर लिये फिर भी प्रसादी ज्यों की त्यों बनी हुई है तो क्या अब कोई विचारशील यह मान लेगा कि वेद का पढ़ना भी कुकर्म है ? मूर्तिपूजा या वेद के पढ़ने ने भारत को पददलित नहीं करवाया, पददलित होने में कारण परस्पर की फूट है मूर्तिपूजा नहीं क्या कोई मनुष्य यह सिद्ध कर सकता है कि भारतवर्ष मूर्तिपूजन से ही पददलित हुआ जो कर सकता हो वह लेखनी उठावे ?

नं० ( १२ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३२१ में लिखा है कि 'आप पराधीन भठियारे के टट्टू और कुम्हार के गदहे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेक विध दुःख पाते हैं'

आर्यसमाजियो ? देखो स्वामी जी के क्या मधुर शब्द हैं मगर शोक है की तुम इनसे शिक्षा नहीं लेते। यह महर्षि का लेख है इससे शिक्षा लो और

ऐसे ही मीठे मीठे शब्द तुम भी उच्चारण किया करो जिससे आर्यसमाज की सभ्यता सातवें आसमान पर जा विराजे ।

नं० ( १३ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३०५ में लिखा है कि 'उन निर्लज्जों को तनिक भी लज्जा न आई कि यह पामरपन का काम हम क्यों करते हैं' ।

ईश्वर पूजक शंकर की स्थापना करने वालों के लिये स्वा० दयानन्द जी के ये मधुर बचन हैं । इतने मधुर बचन कोई आर्यसमाजियों को कहे तो आर्य-समाजी घर में घुसकर रोवें या मार पीट कर बैठें । कविरत्न पं० अखिलानन्द जी ने 'देवसभा में वेदों की अपील' नामक एक छोटी सी पुस्तक लिख दी थी, आर्यसमाजी उसका उत्तर तो दे नहीं सके क्योंकि वर्तमान समय में एक भी आर्यसमाजी ऐसा नहीं जो कभी स्वप्न में भी श्रुति-स्मृति को देखता हो । आर्य-समाजी तो मोटी दृष्टि से यही जानते हैं कि ईसाई धर्म ही वैदिक धर्म है । लाचार होकर कई एक आर्यसमाजियों ने संयुक्तप्रान्त की गवर्नमेंट के बूटों को नमस्ते किया तब वह पुस्तक जप्त हुई किन्तु यह छाती सनातनधर्मियों की है जो दयानन्द की अनुचित गालियों को सह लेते हैं, क्या कभी इन गालियों पर आर्यसमाजियों को लज्जा आती है या नहीं ?

नं० ( १४ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३११ में लिखा है कि 'अपने २ शरीर को भाड़ में झोंक के सब शरीर को जलावें' ।

क्या मधुर शब्द हैं । स्वामी जी खण्डन करने की अपेक्षा गाली देना अच्छा समझते हैं, यहां पर तो स्वामी जी वैसी ही गालियां देने लगे जैसी औरतें रांड-निपूती आदि मधुर शब्द बोलकर दिया करती हैं ।

नं० ( १५ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३४० में लिखा है कि 'वाहरे वाह भागवत के बनाने वाले लालबुझक्कड़ ! क्या कहना तुझको, ऐसी २ मिथ्या बातें लिखने में तनिक भी लज्जा और शरम न आई निपट अंधा ही बन गया । ...... भला इन महाभूठ बातों को वे अंधे पोप और बाहर भीतर की फूटी आखों वाले उनके चेले सुनते और मानते हैं । बड़े ही आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य हैं वा अन्य कोई !!! इन भागवतादि पुराणों के बनाने हारे क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये ? वा जन्मते समय मर क्यों न गये ? क्योंकि इन पापों से बचते तो आर्यावर्त देश दुःखों से बच जाता' ।

यहां पर तो स्वा० दयानन्द जी ने भठियारियों को भी मात कर दिया। गाली क्या लिखी, गालियों का जकशन बना दिया, यद्यपि आर्यसमाजी यह हुज्जत मचाया करते हैं कि भागवत व्यास की बनाई नहीं है परन्तु जहां २ पर इस विषय में आर्यसमाज के साथ शास्त्रार्थ हुआ वहां २ पर आर्यसमाज फेल हुआ और सनातनधर्म द्वारा यह निरन्तर सिद्ध हुआ कि श्रीमद्भागवत के रचयिता भगवान् वेद व्यास हैं। व्यास के लिये यह गालियों का जंकशन लिखा गया है, इसके एक एक पद में गाली है। क्या सम्पादक की यही विवेचना होती है कि किसी के लेख का जब तुम खण्डन न कर सको तब गालियों पर उतारू हो जाओ? यह मनुष्य का काम नहीं।

कभी २ अपने व्याख्यान में कविरत्न पं० अखिलानन्द जी 'भागवत' इसके स्थान में 'सत्यार्थप्रकाश' और 'भागवतादि' के स्थान में 'सत्यार्थप्रकाशादि' करके पढ़ देते हैं उस समय यह पाठ ऐसा हो जाता है।

वाहरे वाह सत्यार्थप्रकाश के बनाने वाले लालबुझक्कड़। क्या कहना तुझको ऐसी २ मिथ्या बातें लिखने में तनिक भी लज्जा और शरम न आई, निपट अंधा ही बन गया। ......भला इन महा झूठ बातों को वे अंधे पोप और बाहर भीतर की फूटी आंखों वाले उनके चेले सुनते और मानते हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य हैं वा अन्य कोई, इन सत्यार्थप्रकाशादि के बनाने हारे क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये? वा जन्मते समय मर क्यों न गये। क्योंकि इन पापों से बचते तो आर्यावर्त देश दुःखों से बच जाता।

इसको सुन आर्यसमाजी चिढ़कर आपे से बाहर हो जाते हैं। क्या आर्यसमाजी ही अन्न खाते हैं और सनातनधर्मी नहीं खाते? क्या आर्यसमाजियों को ही क्रोध आता है सनातनधर्मियों को नहीं आता? जिस समय सनातनधर्मी 'सत्यार्थप्रकाश' में इस लेख को पढ़ते हैं पढ़ते ही स्वामी जी और सत्यार्थप्रकाश इन दोनों पर रोष आजाता है, स्वामी जी ने यहां पर एक दो गालियां नहीं दीं गालियों की श्रेणी बना दी। इतने आवेश में आ गये कि 'लज्जा और शरम' लिख गये। स्वामी जी की दृष्टि में 'लज्जा' और है और 'शरम' और चीज है, हम आर्यसमाजियों से नम्र होकर यह अपील करेंगे कि 'सत्यार्थप्रकाश' से परस्पर में फूट और द्वेष फैलाने वाली गालियां निकाल दी जायं।

नं० (१६) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३२६ में लिखा है कि 'इस निर्दयी

कसाई को लिखते समय कुछ भी मन में दया न आई नहीं तो निर्जला का नाम सजला और पौष महीने की शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम निर्जला रख देता'।

एकादशी व्रत की विधि पुराणों में है। आर्यसमाज की दृष्टि में चाहे पुराण कितने ही बुरे हों और उनका बनाने वाला चाहे कोई अनपढ़ जंगली हो किन्तु बाइस करोड़ हिन्दुओं की दृष्टि में पुराण भारत के पवित्र इतिहास के कहने और वेदार्थ को स्पष्ट कर देने वाले हैं, इनके रचयिता विष्णु के सत्रहवें अवतार भगवान् वेद व्यास हैं, उन्हीं के लिये कसाई पदवी दी है यह दयानन्द की सभ्यता है, इसको पढ़ कर अन्य धर्म के मनुष्य को भी रोष आ जाता है।

इस प्रकार के असभ्य गाली गलौज के लेख किसी सभ्य मनुष्य की लेखनी से लिखे नहीं जा सकते। इन लेखों को देख गालियां पढ़ प्रत्येक मनुष्य को मानना पड़ता है कि स्वा० दयानन्द जी के चित्त में नीच वृत्तियाँ थीं।

## * असत्य *

हमने इस बात का उदाहरण दिखला दिया कि जब स्वामी जी से कुछ करते धरते नहीं बनता तब वे सच्चे मनुष्यों को गालियां देकर गालियों से अपना विजय करने पर उतारू हो जाते हैं। अब हम यह दिखलावेंगे कि जिस समय सत्य बात से स्वामी जी पराजित हो उठते हैं तब वे झूठ बोलने पर एकदम टूट पड़ते हैं, उनमें इतनी शक्ति है कि वे समस्त संसार को झूठे होने की डिगरी दे अपने को विजयी, सत्यवक्ता करार दे दें। आज हम कुछ ऐसे लेख पाठकों के आगे रखते हैं कि जिन लेखों में स्वामी जी ने पेट भर कर झूठ बोला और इस कुकृत्य से उन्होंने अपना विजय मान लिया। उदाहरण देखिये—

नं० (१७) सत्यार्थप्रकाश पृ० १३४ में लिखा है कि—

विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत् ।

नाना प्रकार के रत्न, सुवर्णादि धन ( विविक्त ) अर्थात् संन्यासियों को देवे।

स्वा० दयानन्द जी विरक्त थे, जब इनको धन लोलुपता ने घेरा तब स्वार्थ-

सिद्धि के लिये मनु के श्लोक को काट छांट कर ऊपर लिखे मुताबिक बना लिया। वह श्लोक मनु में इस प्रकार है।

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत्।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥६

मनु० अ० ११

वेदज्ञाता और त्यागी ब्राह्मणों को जो यथाशक्ति धन देता है वह मर कर स्वर्ग में जा सुख भोगता है।

स्वामी जी ने श्लोक ही लौट दिया, पाठ भी बदला और श्लोक का भाव भी बदला, ब्राह्मणों के बजाय संन्यासी को रत्न देने लिख दिये। मानना पड़ेगा कि या तो स्वामी जी को उन्माद है नहीं तो धनलोलुपता रूप स्वार्थ ने स्वामी जी से यह पाप करवाया है।

नं० (१८) सत्यार्थप्रकाश समु० ८ पृ० २२५ में लिखा है कि

'मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त।

यह यजुर्वेद में लिखा है'।

दोनों श्रुतियां यजुर्वेद में नहीं हैं। यजुर्वेद का नाम स्वामी जी ने झूठ लिखा। सन् १९१२ में कासगंज में शास्त्रार्थ हुआ, आर्यसमाज की तरफ से स्वा० दर्शनानन्द जी और सनातनधर्म की तरफ से पं० अनोखेलाल भजनोपदेशक तिलहर थे। पं० अनोखेलाल जी ने कहा कि ये दोनों श्रुतियां यजुर्वेद में नहीं हैं। दर्शनानन्द जी ने कहा हैं। पं० अनोखेलाल ने स्वामी जी के आगे यजुर्वेद रख दिया कि दिखलाओ ? स्वामी जी नहीं दिखला सके और शास्त्रार्थ हार गये, तब से "और उसके ब्राह्मण में" इतना पाठ बढ़ाया गया। अब इबारत यह हो गई कि 'यजुर्वेद और उसके ब्राह्मण में लिखा है'। अब भी आर्यसमाज यजुर्वेद का नाम झूठ ले रही है, यजुर्वेद में दोनों श्रुतियां नहीं हैं। जो मन्त्र वेद में नहीं वेद के नाम से उनको झूठ लिखना किसी धार्मिक मनुष्य को शोभा नहीं देता। जो झूठ लिखे उसको कोई भी मनुष्य धार्मिक नहीं कह सकता। क्या किसी आर्यसमाजी में इतनी हिम्मत है जो इन दोनों श्रुतियों को यजुर्वेद में दिखलादे ? यदि आर्यसमाज नहीं दिखला सकती तो स्वा० दयानन्द जी के झूठे लेख को सत्य मानना क्या कलंक नहीं है ?

नं० (१९) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३४३ में लिखा है कि हिरण्याक्ष को वराह

ने मारा। उसकी कथा इस प्रकार से लिखी है कि वह पृथ्वी को चटाई के समान लपेट शिराने धर सो गया। विष्णु ने वराह का स्वरूप धारण करके उसके शिर के नीचे से पृथ्वी को मुख में धर लिया, वह उठा। दोनों की लड़ाई हुई, वराह ने हिरण्याक्ष को मार डाला।

यह कथा श्रीमद्भागवत के नाम से लिखी गई है, इसका लिखना झूठ नहीं वरन् सुफेद झूठ है। हिरण्याक्ष ने न तो पृथ्वी को उठाया और न चटाई की भांति लपेटा एवं न वह पृथ्वी को ले गया। सब बातें झूठी हैं प्रकरण देखिये।

सृजतो मे क्षितिर्वार्भिः प्लाव्यमाना रसां गता ।
अथात्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयोजितैः ॥१७॥

भाग० स्कं० ३ अ० १३

मैं सृष्टि रचना चाहता था किन्तु जल से डूबी हुई पृथ्वी रसातल को चली गई। अब हम सर्ग रचना में लगे हुये लोगों को क्या करना चाहिये।

यह ब्रह्मा का कथन है, यहां पर जल द्वारा पृथ्वी का डूबना स्पष्ट लिखा है, हिरण्याक्ष का पृथ्वी ले जाना नहीं लिखा। बात यह है कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति आई नहीं थी उसका निर्माण हुआ वह बजन अधिक होने के कारण जल के नीचे चली गई। सत्रह के अध्याय में यह कथा है। हिरण्याक्ष ने वरुण से कहा कि हमारा तुम्हारा संग्राम हो जाय ? वरुण ने उत्तर दिया तुम बड़े बलवान् हो हम तुमसे नहीं लड़ सकते; तुम विष्णु से लड़ो वह तुम्हारे कैसे दुष्टों को मार कर जमीन में सुला देगा। विष्णु कहां हैं इस बात का पता लगाने के लिये हिरण्याक्ष नारद के पास गया, नारद ने बतलाया कि विष्णु वराह रूप धारण करके जल में डूबी हुई पृथ्वी को लेने के लिये रसातल गये हैं। अठारहवें अध्याय में लिखा है कि—

तदेवमाकर्ण्य जलेशभाषितं
महामनास्तद्विगणय्य दुर्मदः ।
हरेर्विदित्वा गतिमंग नारदा
द्रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ॥१॥

दर्दश तत्राभिजितं धराधरं
प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया ।
मुष्णन्तमक्ष्णा स्वरुचोऽरुणश्रिया
जहास चाहो वनगोचरो मृगः ॥२॥

श्री० भा० स्कं० ३ अ० १८

हे विदुर जी ! विष्णु भगवान् के हाथ से तू मरण को प्राप्त होगा इस प्रकार तिन वरुण जी के कथन को सुनकर मन में हर्षित हुआ वह मदोन्मत्त हिरण्याक्ष तिस कथन पर कुछ ध्यान न दे और नारद ऋषि से 'श्रीहरि कहां हैं' यह जान बड़ी शीघ्रता से रसातल को चला गया ।१। तहां अपनी दाढ़ के अग्र-भाग से पृथ्वी को ऊपर निकाल कर धारण करने वाले आस पास के सकल वीरों को जीतने वाले और नेत्रों की आरक्त कान्ति से अपने ( हिरण्याक्ष के ) तेज को लुप्त करने वाले तिन वराह रूप श्रीहरि को देख कर वह हिरण्याक्ष दैत्य हंस कर कहने लगा, अहो कैसा आश्चर्य है कि वन में ( स्तुति पक्ष में वन कहिये जल में ) विचरने वाला यह मृग अर्थात् वराह पशु ( स्तुति पक्ष में मृग कहिये योगीजन जिनकी खोज करते हैं ऐसे श्री नारायण ) यहां जल में दीख रहा है ॥ २ ॥

पूर्व के श्लोक से यह सिद्ध हुआ कि पृथ्वी को जल ने डुबाया था और इन दो श्लोकों में यह सिद्ध है कि जब हिरण्याक्ष वराह की खोज में रसातल को चला और उसको रास्ते में वराह मिले तब वराह के दांत पर स्थित पृथ्वी को हिरण्याक्ष ने देखा-अब कौन कह सकता है कि हिरण्याक्ष पृथ्वी को चटाई की भांति लपेट और शिरहाने धर कर सो गया । नहीं मालूम स्वामी जी श्रीमद्भागवत पर झूठा कलंक क्यों लगाते हैं ? झूठी कथा लिख संसार को धोखा क्यों देते हैं ? या तो इस कारण से झूठ लिखा है कि झूठ लिखने से आर्यसमाज हमको महर्षि की पदवी दे देगी या स्वामी जी को कुछ उन्माद है, असली बात क्या है इसका विवेचन आर्यसमाजी करेंगे हमको तो केवल इतना ही दिखलाना था कि स्वामी जी का यह लेख सर्वांश में असत्य है ।

नं० (२०) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३४२ में लिखा है कि तब वह ( प्रह्लाद ) अध्यापकों से कहता था कि मेरी पट्टी में राम राम लिख देओ । जब उसके बाप ने सुना उसने कहा तू हमारे शत्रु का भजन क्यों करता है ? छोकरे ने न माना ।

तब उसके बाप ने उसको बांध के पहाड़ से गिराया, कूप में डाला परन्तु उसको कुछ न हुआ। तब उसने एक लोहे का खंभा आग में तपा के उससे बोला जो तेरा इष्टदेव राम सच्चा हो तो तू इसको पकड़ने से न जलेगा। प्रह्लाद पकड़ने को चला। मन में शंका हुई कि बचूंगा वा नहीं ? नारायण ने उस खंभे पर छोटी छोटी चीटियों की पंक्ति चलाई।

भागवत में यह कहीं नहीं लिखा कि प्रह्लाद कहता था मेरी पट्टी पर राम राम लिख दो और न भागवत में खंभे का गर्म करना लिखा है एवं न उसके ऊपर चीटियों का चलना। जब स्वामी जी को भागवत में कोई दोष न मिला तब बनावटी दोष बनाकर भागवतःको अप्रमाण बनाया। संसार में लोभ बड़ी चीज है, लोभ के कारण ही स्वामी जी ने यह भूठ लिखा है,उनको इस बात का पूर्ण ज्ञान था कि यदि हम भूठ लिखकर संसार को धोखा न देंगे तो आर्यसमाजी हमको परिव्राजक,वेदज्ञाता-महर्षि प्रभृति उपाधियां न देंगे। स्वामी जी ने निष्प्रयोजन भूठ नहीं लिखा उपाधि पाने के लोभ से लिखा है किन्तु है भूठ। स्वामी जी के इस भूठ लेख को त्रिकाल में भी कोई आर्यसमाजी सत्य सिद्ध नहीं कर सकता।

नं० ( २१ ) सत्यार्थप्रकाश.समु० ११ पृ० ३३४ में लिखा है कि—

**"रथेन वायुवेगेन जगाम गोकुलं प्रति।**

अक्रूर जी कंस के भेजने से वायु के वेग के समान दौड़ने वाले घोड़ों के रथ पर बैठ के सूर्योदय से चले और चार मील गोकुल में सूर्यास्त समय पहुँचे अथवा घोड़े भागवत बनाने वाले की परिक्रमा करते रहे होंगे ? वा मार्ग भूल कर भागवत बनाने वाले के घर में घोड़े हांकने वाले और अक्रूर जी आकर सो गये होंगे ?

ऊपर लिखा हुआ आधा श्लोक श्रीमद्भागवत में नहीं है। सन् १९११ में आर्यसमाज के साथ सनातनधर्म सभा बहिराइच का शंका समाधान हुआ। सनातनधर्म की तरफ से पं०बाबूराम जी महोपदेशक भारतधर्म महामंडल और आर्यसमाज की तरफ से पं० रुद्रदत्त संपादकाचार्य थे, यही शंका संपादकाचार्य ने बाबूरामजी के आगे रक्खी,बाबूरामजी ने कहा यह पाठ श्रीमद्भागवत में नहीं है, भागवत के नाम से स्वामी जी ने भूठ लिखा है, यह स्वामी जी का संसार को धोखा देना है। संपादकाचार्य ने कहा कि आप गलत कहते हैं, यह पाठ भाग.

वत में है और हम दिखला सकते हैं इस झगड़े के लिये म्युनिस्पेल्टी के सैक्रेटरी पांडेय जी ने श्रीमद्भागवत मंगवाकर संपादकाचार्य को दे दी—यह पाठ उसमें नहीं मिला। संपादकाचार्य को नीचा देखना पड़ा। इस घटना के बाद सम्बत् १९६९ में यह पाठ 'रथेन वायुवेगेन भा० स्कं० १० अ० ३९ श्लोक ३८। जगाम गोकुलं प्रति भा० स्कं० १० पू० अ० ३८ श्लोक २४' ऐसा कर दिया गया।

स्वामी जी के झूठ को छिपाने के लिये उद्योग तो किया किन्तु कर न जाना। 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा-भानमती ने कुनबा जोड़ा। टाट की अंगिया मूज की तनी-कहो मेरे बलमा कैसी बनी' की कहावत को सत्य कर दिया। चौथाई श्लोक ३९ के अध्याय का ३८ वां लिया और शेष ३८ के अध्याय का २४वां श्लोक लिया, इस प्रकार से पाठ दिखलाया। पहिले ३९ वें अध्याय का पाठ और फिर ३८ के अध्याय का। आर्यसमाज जैसे सब जगह उल्टी चलती है वैसे यहां भी उल्टी ही चली, इन दोनों श्लोकों का परस्पर में सम्बन्ध कोई विचारशील मनुष्य जोड़ सकता है ? ईश्वर न करे संसार में ऐसी अन्वय चल जावे नहीं तो आर्य-समाज का 'आजसमार्य' हो जावेगा। आर्यसमाजी उल्टे चले, कहीं का कहीं सम्बन्ध जोड़ा तब भी स्वा० दयानन्द का अर्थ इनसे न निकला। फिर स्वामी के लिखे आधे श्लोक के दो टुकड़े करने का मतलब क्या निकला ?

झूठ-झूठ ही रहता है, हजार जाल बनाने पर भी झूठ सत्य नहीं होता। आर्यसमाज ने आधे श्लोक के दो टुकड़े किये और यह दिखलाया कि 'जगाम गोकुलं प्रति' यह पाठ ३८ के अध्याय के २४ वें श्लोक में है किन्तु इस श्लोक में यह पाठ ही नहीं। श्लोक इस प्रकार है।

**इति संचिन्तयन्कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि।**
**रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप॥**

अब आर्यसमाजी खूब आंखें फाड़ फाड़ कर देखलें इस श्लोक में 'जगाम गोकुलं प्रति' कहीं भी नहीं है। जिस आर्यसमाज के समस्त ही मनुष्य झूठ को सत्य और संसार को धोखा देने के लिये झूठा लेख लिखें उस आर्यसमाज को धार्मिक सोसाइटी वही कहेगा जिसकी अक्ल का दिवाला निकल गया हो। आर्य-समाज ने बहुत हिमायत की किन्तु स्वामी जी का लेख झूठा ही रहा, इस झूठे लेख लिखने का प्रयोजन क्या है इस पर आर्यसमाजियों को विचार करना चाहिये हां इतना हम कहते हैं कि स्वामी जी का लेख झूठा है।

नं० ( २२ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३२७ में लिखा है कि 'जब रामचन्द्र सीता जी को ले हनुमान् आदि के साथ लंका से चले, आकाश मार्ग में विमान पर बैठ अयोध्या को आते थे तब सीता जी से कहा है कि—

**अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ।**
**सेतुबन्ध इति विख्यातम् ।**

वाल्मीकि रा० ६ लंका कॉ० सर्ग १२५ श्लोक २०

हे सीते ! तेरे वियोग से हम व्याकुल होकर घूमते थे और इसी स्थान में चातुर्मास्य किया था और परमेश्वर की उपासना ध्यान भी करते थे। वही जो सर्वत्र विभु (व्यापक) देवों का देव महादेव परमात्मा है उसकी कृपा से हमको सब सामग्री यहां प्राप्त हुई और देख यह सेतु हमने बांध कर लंका में आके उस रावण को मार तुझको ले आये। इसके सिवाय वहां वाल्मीकि में अन्य कुछ भी नहीं लिखा'।

यहां पर स्वामी जी ने वाल्मीकि के श्लोकों को छिपाकर केवल तिटंगा श्लोक लिखा है, पूरा श्लोक इसलिये नहीं लिखा कि हमारे जाल की कलई खुल जावेगी। वाल्मीकि का लेख यह है।

**एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ।**
**सेतुबंध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम् ॥२०**
**एतत्पवित्रं परमं महापातकनाशनम् ।**
**अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ॥२१**

वाल्मीकि रा० युद्ध कां० स० १२५

हे जानकि ! महात्मा सागर का यह सेतुबन्ध तीर्थ दीखता है जो त्रिलोकी में पूजित होगा यह परम पवित्र और महापाप का दूर करने वाला है पूर्वकाल में इसी तीर्थ पर विभु महादेव जी ने मुझ पर कृपा की थी।

कहिये स्वामी जी ने इन सब बातों को दबा कर तीन पाद का श्लोक लिख संसार को धोखे में डालने के लिये असत्य लिखने पर कमर बांधी या नहीं ? स्वामी जी को यह सब झूठ इस कारण लिखना पड़ा कि आर्यसमाज की दृष्टि में सत्य लिखने वाला धर्म नाशक और पापी एवं झूठ बोलने वाले को आर्यसमाज धर्मात्मा और विद्वान् समझती है। यदि स्वा० दयानन्द जी सोलह आने सत्य

लिखते तो फिर आर्यसमाज उनको महर्षि की डिगरी कभी न देती । कहो आर्य-समाजियो ! स्वामी जी के झूठ लिखने का यही कारण है या उन्माद, इसका विचार तुम करो हम तो इतना ही कहेंगे कि स्वा० जी ने जो रामायण के विषय में लेख लिखा वह झूठ है ।

नं० ( २३ ) सत्यार्थप्रकाश पृ० ३६६ में लिखा है कि--

**वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारो वेद कहानि ।**
**सन्त ( साध ) की महिमा वेद जाने ॥**

स्वामी जी का लिखा हुआ यह पाठ सुखमनी पौड़ी ७ चो० ८ में नहीं है । स्वा दयानन्द जी ने झूठ लिखा है । आर्यसमाजियो ! यह तुम्हारा पोथा सत्यार्थ प्रकाश है या असत्यार्थप्रकाश ? जरा बिचारो तो, जिस ग्रन्थ का कले-वर झूठे लेखों से तैयार हो उस ग्रन्थ को कभी कोई विचारशील 'सत्यार्थप्रकाश' कह सकता है ?

यदि हम स्वामी दयानन्द जी के असत्य लेख दिखलावें तो पुस्तक के पचास साठ पन्ने भर जावेंगे,इतने पर भी आर्यसमाजी यह न मानेंगे कि यह लेख वास्तव में असत्य है । आर्यसमाजी तो यही कहते रहेंगे कि स्वा० दयानन्द के लेख सर्वथा ही सच्चे हैं । जो मनुष्य सत्य-न्याय-धर्म-विचार को तिलांजलि देकर पक्षपात के पंजे में पड़ हठी बन जाता है फिर वह किसी की बात नहीं मानता । आज सत्य-धर्म-न्याय-विचार इन सबको तिलांजलि देकर आर्यसमाजी अपनी और स्वामी जी की इज्जत बचाने के लिये अधर्म पर टूट पड़े हैं, अब ये किसी की बात नहीं सुनेंगे । रही विचार शील मनुष्यों की बात वे ऊपर के लेख से ही निर्णय कर लेंगे कि वास्तव में स्वामी दयानन्द जी असत्य लेखों के लिखने वाले हैं या नहीं ?

आर्यसमाजियो ! तुम दयानन्द के जाल को चाहे कितना भी दबाओ अब वह तुम्हारा दबाया हुआ दब नहीं सकता,उसका तो भंडाफोड़ होकर ही रहेगा तुम धर्म से बतलाओ कि ऊपर के झूठे लेख स्वामी जी ने क्यों लिखे ? हमारे समझ में तो तुम लोग सत्यवादियों का अपमान और झूठों का मान करते हो इस बात को समझ तुम से महर्षि की डिगरी पाने के लिये स्वामी जो ने मिथ्या लेख लिखे हैं । यदि ऐसा नहीं तो तुमको मानना पड़ेगा कि स्वामी जी का झूठ बोलना और झूठ लिखना ही पेशा था ।

## चालबाजी

जब गालियां देने और झूठ बोलने से काम नहीं चलता तब स्वामी जी चालबाजियों से काम बनाते हैं। स्वामी जी जिन चालबाजियों का आश्रय लेते हैं वे तीन प्रकार की हैं ( १ ) वेदोक्ति ( २ ) कल्पित वेदार्थ ( ३ ) साहित्य पर छुरा। स्वामी जी अपने मन में भरे हुये भाव को लिख लेख को इस प्रकार का बनाते हैं पढ़नेवाला यह समझे कि यह वेद की आज्ञा है, ऐसी चालाकी का नाम है 'वेदोक्ति'। स्वामी जी निरुक्त-निघंटु ब्राह्मण-उपनिषद् और वेदभाष्यों के विरुद्ध वेद मंत्रों का कल्पित ( फर्जी ) ऐसा अर्थ लिखते हैं कि जिससे वेद का अभिप्राय तो साफ उड़ जावे और स्वामी जी के मानसिक भाव उस अर्थ में से निकल पड़ें-इस चालाकी का नाम है 'कल्पित वेदार्थ'। जब इनसे भी काम नहीं चलता तब स्वामी जी प्रामाणिक ग्रन्थों को अप्रामाणिक और वेदों को पुराण तथा जबेद बना और फिर समस्त वेद के असली भाव को उड़ा कर मनमाना भाव संसार के आगे रखते हैं इसका नाम है 'साहित्य पर छुरा'। इन तीन चालाकियों का आश्रय लेकर स्वामी जी सत्य को झूठ और झूठ को सत्य, धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म का रूप देकर अपने चलाये नकली ईसाई धर्म को वैदिक सिद्ध करते हैं। इसी को चालाकी प्रकरण में हम दिखलावेंगे।

### वेदोक्ति

नं० (२४) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ० २२३ में लिखा है कि 'नियोग करने में ऐसा नियम है कि जिस स्त्री का पुरुष वा किसी पुरुष की स्त्री मर जाय अथवा उनमें किसी प्रकार का रोग हो जाय या नपुंसक वंध्या दोष पड़ जाय और उनकी युवावस्था हो तथा सन्तानोत्पत्ति की इच्छा हो तो उस अवस्था में उनका नियोग होना अवश्य चाहिये'।

देखो यहां पर स्वामी जी ने कैसी चालबाजी चली, पहिले लिखा कि 'ऐसा नियम है'। यह नहीं बतलाया यह नियम कहां है कुरान में या बाइबिल में? धर्मशास्त्र में या स्वामी जी के मन में? यह भी नहीं बतलाया कि 'नियोग अवश्य होना चाहिये' यह लेख कहां लिखा है इस चालबाजी से लेख लिखा गया है कि लेख पढ़ने वाला मनुष्य यह समझे कि नियोग अवश्य होने का नियम वेद में

है किन्तु भूतल पर इस लेख को वैदिक सिद्ध करने वाला कोई मनुष्य पैदा नहीं हुआ ?

नं० ( २५ ) द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश पृ० १२० में लिखा है कि 'गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के विषय में पुरुष वा स्त्री से न रहा जाय तो किसी से नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति कर दे'।

यह विज्ञान फिलास्फी कहां की आज्ञा है, धर्मशास्त्र की या ईसाइयों के बाइबिल की ? संसार के ग्रन्थों में से किसी भी ग्रन्थ में इस प्रकार का नियोग नहीं मिलता तो भी इसके लिखने में वह चालबाजी खेली गई है कि मानो यह वेद का अभिप्राय है ?

इस गूढ़, फिलास्फी का असली तत्व हमारी समझ में न आया, इसमें लिखा है कि 'गर्भ की दशा में किसी स्त्री से न रहा जाय तो वह किसी दूसरे पुरुष के साथ भोग करे' क्यों ? ऐसा क्यों किया जावे ? अपने पति से भोग करे तो क्या जहर चढ़ जावे ? और फिर एक लड़का पैदा करके उस भोग करने वाले को दे दे ? पेट में पहिले से ही एक लड़का बैठा है फिर इस दूसरे को कहां रक्खे ?

सम्वत् ५४ में कर्णवास में इस लेख पर पं० तुलसीराम स्वामी और स्वा० ईश्वरानन्द सरस्वती इन दोनों में विवाद चला, दो घंटे विवाद रहा, आखिर स्वा० ईश्वरानन्द जी सरस्वती आर्यसमाजी का यह कथन पं० तुलसीराम जी ने मान लिया कि दयानन्द अपनी चालबाजी से वेदविरुद्ध विषय को वैदिक बनाते हैं।

सन् १८६७ में 'गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के विषय में पुरुष वा स्त्री से न रहा जाय' इसके स्थान में 'गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष से वा दीर्घरोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाय' बदल कर ऐसा कर दिया। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थावृत्ति इन तीन सत्यार्थप्रकाशों में तो पाठ ठीक छपा किन्तु पंचमावृत्ति सन् १८६७ में बदला गया, आर्यसमाजियों को क्या हक है कि वे किसी लेखक के पाठ को बदल दें ? निःसन्देह यह आर्यसमाजियों की अनधिकार चेष्टा है। स्वामी जी तो इसको वैदिक धर्म मानते थे, तुम नहीं मानते, तो भी पाठ बदलने का अधिकार नहीं है, क्या स्वामी जी भूत बन गये हैं जो सन् १८६७ में आर्यसमाजियों के कान में आकर यह कह गये कि हम यहां भूल गये थे ? कुछ भी हो स्वामी जी की इस चालबाजी को आर्यसमाज ने परखा

और उस बनावटी पाठ को बदला, वह बदला हुआ पाठ भी वैदिक नहीं है, वैदिक होने का भ्रम अब भी उसमें ज्यों का त्यों है।

नं० ( २६ ) सत्यार्थप्रकाश पृ० ११२ में लिखा है कि "एक विधवा स्त्री दो अपने लिये और दो दो अन्य चार नियुक्त पुरुषों के लिये सन्तान कर सकती है"।

यहां पर स्वामी ने इस चालाकी से लेख लिखा है कि पढ़ने वाला फौरन यह समझ जावे कि यह पुत्रों का बटवारा वैदिक है। और वेद में इसका कहीं पर भी चर्चा नहीं, क्या इस चालाकी को आर्यसमाजियों ने जाना या नहीं?

## * कल्पित-वेदार्थ *

नं० ( २७ ) सत्यार्थप्रकाश पृ० ११४ में लिखा है।

उदर्ष्व नार्यभिजीवलोकं
गतासुमेतमुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं
पत्युर्जनित्वमभि संबभूथ।

ऋ० मं० १० सू० १८ मं० ८

हे ( नारी ) विधवे तू ( एतं गतासुम् ) इस मरे हुये पति की आशा छोड़ के ( शेषे ) बाकी पुरुषों में से ( अभिजीवलोकम् ) जीते हुये दूसरे पति को ( उपैहि ) प्राप्त हो और ( उदीर्ष्व ) इस बात का विचार और निश्चय रख कि जो ( हस्तग्राभस्य दिधिषोः ) तुझ विधवा के पुनः पाणिग्रहण करने वाले नियुक्त पति के सम्बन्ध के लिये नियोग होगा तो ( इदम् ) यह ( जनित्वम् ) जना हुआ बालक उसी नियुक्त (पत्युः) पति का होगा और जो तू अपने लिये नियोग करेगी तो यह सन्तान ( तव ) तेरा होगा ऐसे निश्चय युक्त ( अभिसंबभूथ ) हो और नियुक्त पुरुष भी इसी नियम का पालन करे।

स्वा० दयानन्द जी ने इस मंत्र के अर्थ में हिन्दू जाति की दया का छुरी से गला काटा है। हाय हिन्दू जाति तेरी दया, वास्तविक में हिन्दू जाति में जितनी दया है उतनी दया संसार की किसी जाति में नहीं यदि ऐसा कहा जावे

तो मेरी समझ में किञ्चिन्मात्र भी अत्युक्ति नहीं है। हिन्दू जाति की यदि कोई हानि भी करे तथापि हिन्दू जाति उस पर दया ही करती है। आप औरों को तो जाने दीजिये जरा एक दृष्टि चूहों पर डालिये जिनके मारे जेब में रेवड़ियां रखना भी एक आफत है। यदि कहीं भूल कर रात को जेब में रेवड़ियां रह जावें तो रात ही भर में रेवड़ियां और जेब दोनों नदारद। वस्तुतः चूहे आपका बड़ा नुक्सान करते हैं, गल्ले के बोरों की तो कौन कहे लकड़ी के सन्दूकों तक में हमला करके भीतर ही बैठकर भोग लगाते हैं। चूहों के सामने बड़े बड़े कीमती कपड़े भी टाट की हैसियत रखते हैं, इनके मारे हमारी और आपकी नाक में दम रहती है, इतने पर भी यदि आपके घर से बिल्ली चूहा पकड़ कर ले जावे तो आप उसके पीछे लकड़ी लेकर दौड़ते हैं, आप बिल्ली के मारने और चूहे के छुड़ाने में पूर्ण कोशिश करते हैं। क्यों जनाबमन्! यह क्या बात है, आप इस चूहे के बचाने पर क्यों कटिबद्ध हैं? यह तो आपके घर का कुछ न कुछ नुक्सान ही करता है। इस पर आप यही कह उठते हैं कि पंडित जी महाराज! यह सब कुछ ठीक है किन्तु इस समय चूहे पर जो कष्ट पड़ा है वह हमसे देखा नहीं जाता। यह हिन्दू जाति की दया का नमूना है,यह हिन्दुओं का एक स्वाभाविक धर्म हो गया है कि सबको दया की दृष्टि से देखते हैं।

कहीं हिन्दू बैठा हो और उस समय छत पर से चिड़िया का बच्चा गिर पड़े तो उस गिरे हुये बच्चे को देखकर उस हिन्दू के चित्त में कष्ट की तरंगे उठ बैठती हैं, वह दो चार बार तो अपने मुख से 'राम-राम' कहता है और उस बच्चे को उठाकर दीवाल के किसी ऊंचे आले में रखता है। वह यह भी जानता है कि अब इसकी माता इसको न छुयेगी वह तो मनुष्य के स्पर्श करते ही बायकाट कर बैठती है तथापि उसके ऊपर भी अपनी दया से काम लिये बिना नहीं रहता। और यदि कहीं किसी दिन हिन्दू के मुहल्ले में किसी मनुष्य या स्त्री की मृत्यु हो जावे तो मृत्यु वाला प्राणी चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, ईसाई हो या आर्यसमाजी, जब तक मृतक शरीर मुहल्ले से न उठ जावेगा हिन्दूमात्र के चूल्हे में आग न सुलगेगी और जो कहीं ऐसा अवसर आ गया कि दिन में मुर्दा न उठा,रात को वहीं रह गया तो फिर हिन्दू लोग तो अन्न और जल दोनों को छोड़ कर उपवास ही करेंगे। जितनी दया हिन्दू जाति में मौजूद है उतनी दया अपने हृदय में लाने के लिये दूसरी जातियों को सैकड़ों वर्ष तक अभ्यास करने की

आवश्यकता होगी किन्तु स्वा० दयानन्द जी आज उस हिन्दुओं की दया को बाजीकर की भांति आनन फानन में चुटकियों से उड़ाये देते हैं। भला इन समाजी सभ्यों से यह तो पूछो कि जिस स्त्री का पति मर गया है, जिस स्त्री के हृदय में अत्यन्त दुःख भरा है, जिस स्त्री को आज स्वर्ग तुल्य घर कारागार दिखलाई दे रहा है, जो दुःख सागर में डूब कर आंखों से आंसुओं की धारा बहा रही है, जिसके आगे प्राण प्यारे पति की ल्हाश पड़ी है उसको यह कौन कहेगा कि पहिले तू इन आये हुये मनुष्यों में से किसी को नियोगी पति बना ले और लड़कों के बांटने का फैसला कर ले तब हम तेरे मरे हुये पति की ल्हास उठावेंगे? ऐसा कठोरपना आज तक दुनियां की किसी भी जाति में पाया नहीं गया जैसा कठोरपना आर्यसमाजियों में घंसाकर घर में ल्हाश पड़ी रहने पर स्वामी जी स्त्री को खसम करवाते हैं। ईसाई-मुसलमान-यहूदी-पार्सी और हिन्दुओं में शूद्र भी विधवाविवाह करते हैं किन्तु सबके यहां यही रश्म है कि पहिले मुर्दा उठाकर उसकी अन्त्येष्टि की जाती है,फिर कुछ दिन स्त्री विधवा रहती है तब पति करती है। आर्यसमाजियों में इतना कामदेव बढ़ गया कि जब तक स्त्री पति न करेगी ल्हास ही न उठाई जावेगी। यहां पर तो स्वा० दयानन्द जी ने आर्यसमाजियों को कंजर बना दिया? लज्जा को दियासलाई दिखला व्यभिचार के पुतले आर्य-समाजी दूसरों की बहू बेटियों की इज्जत लिंये बिना ल्हाश ही न उठावेंगे। यह वेद से अनोखा अर्थ निकला?

ये सब चालबाजियां हैं,स्वामी जी ने ताजा अर्थ बना कर तैयार किया है,ऐसी दशा में आप पूछ बैठेंगे कि क्या इस मंत्र का कोई दूसरा अर्थ है? इसके उत्तर में हम यही कहेंगे जी हां-अर्थ इस मंत्र का यह है कि—

हे नारि! मृतकपत्नि! जीवित पुत्र पौत्रादि और निवास घर को देख कर इस स्थान से उठ, तेरे बिना पुत्रादिकों का पालन कौन करेगा? इस मृतक के समीप जो तू पड़ी है यहां से उठ, चल, कारण यह है कि विवाह समय में हस्तग्रहण करने वाले तथा गर्भाधान करने वाले इस पति के सम्बन्ध से प्राप्त हुये तुम्हारे इस पत्नीपन को देख कर पति के साथ मरने का जो निश्चय किया है, इस निश्चय को छोड़ कर उठ।

यह इस मंत्र का अर्थ है, जिस समय पत्नी को मृतक पति से अलाहिदा किया जाता है उस समय इस मंत्र का बोलना लिखा है, यह अर्थ हम अपने मन

से गढ़कर नहीं लिखते किन्तु इस पर आश्वलायन गृह्यसूत्र का भी यही लेख है। 'उदीर्ष्वनारी' मंत्र का 'संकुसुक' ऋषि 'पितृमेध' देवता 'त्रिष्टुप्छन्द' तथा अन्त्येष्टि कर्म में विनियोग है। इसके ऊपर आश्वलायन गृह्यसूत्र लिखता है कि—

**उत्तरतः पत्नीम् ॥१६**

अर्थात् मृतक के उत्तर की तरफ पत्नी को बिठलाया जावे।

**धनुश्च क्षत्रियाय ॥१७**

यदि मृतक शरीर क्षत्रिय है तो मृतक के उत्तर की तरफ धनुष रक्खे और पत्नी न बैठे।

**तामुत्थापयेद्देवरः पतिस्थानीयोऽन्तेवासी।**
**जरद्दासो वोदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकमिति ॥१८**

मृतक पति के समीप से उसका देवर और देवर के अभाव में कोई पड़ोसी या बूढ़ा नौकर 'उदीर्ष्व नारी' इस मंत्र को बोल के उस स्त्री को उठावे।

**कर्ता वृषले जपेत् ॥१६**

यदि उठाने वाला शूद्र है तब मंत्र को न बोले क्योंकि शूद्र को वेद का अधिकार नहीं। इस सन्देह को दूर करने के लिये यह सूत्र है। इसका अर्थ यह है कि कर्ता शूद्र हो तो इस मन्त्र को एकान्त में बैठ कर आचार्य जपे।

हमने जो अर्थ किया, आश्वलायन गृह्य सूत्र उसकी पुष्टि करता है। संभव है आप इतने पर भी इस प्रश्न को उठादें कि अब किस का अर्थ सही समझा जावे। इसके ऊपर हम और कुछ भी न कह कर 'जज' आपको ही बनाते हैं और हम सबूत देकर बैठते हैं। प्रथम तो स्वामी जी का अर्थ सभ्यता के बाहर है;मुर्दे की ल्हाश फुकने नहीं पाई कि उससे पहिले ही दूसरा पति करले-यह कहना कैसा ? दूसरे स्वा०दयानन्द जी ने 'शेषे' क्रिया का अर्थ 'बाकी'क्रिया जो त्रिकाल में भी समाजी सिद्ध नहीं कर सकते और फिर उस'शेषे'एक बचन का बहुबचन कर दिया जो किसी भाषा के भी विद्वान् मानने को तैयार नहीं ? तीसरे यदि स्वा० दयानन्द जी का ही अर्थ ठीक मान लिया जावे तो फिर इन चार सूत्रों की क्या गति होगी ? क्या धनुष को भी नियोग कराया जायगा ? चतुर्थ सायणादि

भाष्यकार स्वा० दयानन्द के विपरीत हमारे अर्थ को लिख रहे हैं। पंचम-यदि वेद के इस मंत्र में यही अर्थ है तो क्या इस अर्थ का एक भी ऋषि को ज्ञान न हुआ ? यदि उनको इस अर्थ का ज्ञान हुआ तो फिर बतलाओ कि इस अर्थ को किस २ ऋषि ने समझ कर किस २ स्त्री के पति की लहाश पड़ी रहते कौन २ स्त्री का नियोग कराया ? यह कुछ नहीं, व्यभिचारप्रिय स्वामी जी संसार में व्यभिचार फैलाने के लिये वेद के नये २ बनावटी अर्थ बनाकर आर्यसमाजियों को चालबाजियों में फांस रहे हैं।

नं० ( २८ ) सत्यार्थप्रकाश पृ० ११७ में लिखा है कि—

**अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ।**

ऋ० मं० १० सू० १०

जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि हे सुभगे ! सौभाग्य की इच्छा करने हारी स्त्री तू ( मत् ) मुझ से ( अन्यम् ) दूसरे पति की ( इच्छस्व ) इच्छा कर क्योंकि अब मुझ से सन्तानोत्पत्ति न हो सकेगी।

यह प्रकृति विरुद्ध कार्य है, जब एक कुत्ता कुतिया से सम्बन्ध जोड़ने को तैयार होता है तब वह दूसरे कुत्ते को कुतिया के पास नहीं आने देता। नहीं मालूम इस प्रकृति विरुद्ध कार्य का सहन आर्यसमाजी कैसे कर सकेंगे, यह अत्यन्त निर्लज्जता की बात है कि स्त्री का पति तो घर में बैठा रहे और दूसरा कोई बाहरी संडा आकर मौज उड़ावे ? किन्तु आप लोग क्या करें वेद का लेख और उस पर महर्षि का टीका, आप लोगों को तो यह काम करना ही पड़ेगा, नहीं तो धर्म के पालन का उल्लघंन होगा। अच्छा करो, इच्छा तुम्हारी, पूछना इतना है कि यह जो वेद है इसमें व्यभिचार ही भरा है या कुछ और भी है ?

याद रक्खो यदि तुम वेद पढ़े होते तो इस प्रकार की चालें और बनावटी अर्थ लिख कर स्वा० दयानन्द जी तुमको व्यभिचार में प्रवृत्त न करवाते। स्वामी जी ने समझ लिया कि ये लोग लिखे पढ़े तो हैं ही नहीं, वेद के नाम से हम जो कुछ लिख देंगे उसको ये आंख बन्द करके मान लेंगे। हमें भी विश्वास है कि स्वामी जी के ऊपर तुम्हारी श्रद्धा है और इसी कारण से आप लोग उनको परिव्राजक-वेदज्ञाता-योगी-महर्षि मानते हैं एवं आप उनके बतलाये इस नियोग

को भी मानेंगे किन्तु हमारा भी धर्म है कि एक बार हम आपको समझा दें। मामला यह है कि स्वा० दयानन्द जी ने वेद के बहाने से तुमको व्यभिचार में फांसना चाहा है, वेद की यह आज्ञा नहीं है। यहां पर तो स्वामी जी ने पूरा वेदमंत्र भी नहीं दिया, मंत्र की पूंछ से नियोग सिद्ध करना चाहा है और यह मान लिया कि आर्यसमाजी हमारे शिष्य हैं, हम जो लिखते हैं उसको ये अवश्य करेंगे। इस भरोसे पर स्वामी जी ने यहां वेद का गला घोटा है। वेद का कथन यह है कि—

आघाता गच्छानुत्तरायुगानि
यत्र जामयः कृणवन्नजामि।
उपबर्बृहि वृषभाय बाहु
मन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्॥

ऋ० मं० १० अ० १ सू० १० मं० १०

यह मंत्र यमयमी सूक्त का है। यमदेव कुछ बड़े थे और यमी बहुत छोटी थी, उसको संसार के धर्मों से अनभिज्ञता थी। एक दिन एक बरात चली जा रही थी, उस बरात में घोड़े पर चढ़े हुये वर को देख कर यम से पूछा कि कि भइया! यह घोड़े पर चढ़ा है- कौन है? और घोड़े पर क्यों चढ़ा है? तथा ये बहुत से लोग इसके साथ क्यों जा रहे हैं? इसके ऊपर यम ने कहा कि बहिन! यह दूल्हा है और इसका विवाह है, यह विवाह करने के लिये जाता है। यह सुन कर यमी ने कहा आओ भइया हमारा और तुम्हारा विवाह हो जाय? यम बोले कि (आघाता आगच्छानि आगमिष्यन्ति उत्तरा युगानि) आगे को आवेंगे वे दुष्ट युग कि (यत्र जामयः अजामि कृणवत्) जिसमें भाई अयोग्य कार्य बहिन से करेंगे (हे सुभगे मत् मत्तः अन्यं पतिं इच्छस्व) हे सौभाग्यवती! तू मेरे से अन्य पति की इच्छा कर, मेरी इच्छा तो तू कभी अपने मन में नहीं करना (वृषभाय बाहु उपबर्हि) योग्य पति के वास्ते तू अपने हस्त को ग्रहण कर वाले।

वेदमंत्र का असली अर्थ यह है। अब आप लोगों को अधिकार है चाहे इस अर्थ को मानो चाहे स्वामी जी की चालबाजी को?

जब कोई आर्यसमाजी विदेश को चला जावे तो स्वामी जी लिखते हैं कि उसकी स्त्री नियोग करके पुत्र उत्पन्न करले।

नं० ( २६ ) सत्यार्थप्रकाश पृ० ११८ में लिखा है कि—

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः ।
विद्यार्थं षड् यशोर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥७६॥

मनु० अ० ६

विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश गया हो तो आठ वर्ष, विद्या और कीर्ति के लिये गया हो तो छः और धनादि कामना के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक बाट देख के पश्चात् नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करले, जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति छूट जावे।

स्वामी जी आर्यसमाजियों का कल्याण चाहते हैं, इनकी इच्छा है कि हमारे शिष्यों को बिना मेहनत के लड़के मिल जावें, इज्जत चाहे रसातल को चली जाय स्वामी जी को इज्जत का ख्याल नहीं, सुख का फिक्र है। हम आर्यसमाजियों को बराबर कहते हैं कि तुम कुछ पढ़ो नहीं तो अनेक मनुष्य बनावटी महर्षि बन कर तुम्हारी इज्जत की कौड़ियां कर देंगे। इस चालाकी में एक नई पकड़ पकड़ दें वह यह है। सत्यार्थप्रकाश के प्रमाण्याप्रामाण्य विषय में यह लिखा है कि हम वेदानुकूल मनुस्मृति को प्रमाण मानते हैं जब स्वा० दयानन्द जी वेदानुकूल मनुस्मृति को प्रमाण मानते हैं तब इस श्लोक को प्रमाण में क्यों लिया? यह तो वेदानुकूल है नहीं क्योंकि वेद में कोई मंत्र ऐसा नहीं जिससे परदेश जाने से नियोग सिद्ध होता हो? कोई हर्ज नहीं अपने चेलों को ज्ञान देने के लिये स्वामी जी वेद विरुद्ध को भी वेदानुकूल मान लेते हैं। अच्छा स्वामी जी और स्वामी जी के चेले मान लें किंतु मनु को जो झूठा कलंक लगाया है यह हमको अखरता है इस कारण से हम यहां पर मनु के लेख को लिख उनके भाव को स्पष्ट कर देना चाहते हैं। मनु का प्रकरण यह है।

विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः ।
अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ॥७४॥
विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता ।
प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ॥७५॥
प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः ।

विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥७३॥

मनु० अ० ६

जब पति परदेश को जाय तो स्त्री के खान पान का प्रबन्ध करके जाय क्योंकि जीविका के प्रबन्ध विना ( स्थितमति ) नेक स्त्री भी दूषित हो जाती है ।७४। यदि पति खान पान का प्रबन्ध कर जाय तो स्त्री पति के परदेश रहते उबटना-तेल-इतर न लगावे, अधिक पुष्ट भोजन न खाय इत्यादि नियमों में स्थित होकर अपना कालक्षेप करे और यदि पति वृत्ति का कुछ प्रबन्ध न कर जावे तो फिर स्त्री को चाहिये कि अनिन्दित दस्तकारी ( अपने हाथ के काम सीना पिरोना या कढ़ना आदि ) से गुजर करे किंतु कोई निन्दा का काम न करे ।७५। यदि पति धर्म के लिये परदेश गया हो तो आठ, विद्या और यश के लिये गया हो तो छः, किसी और काम को गया हो तो तीन वर्ष उसकी प्रतीक्षा करे। इसके बाद क्या करे ? वसिष्ठ स्मृति लिखती है कि "अत ऊर्ध्वं पतिसकाशं गच्छेत्" इसके बाद फिर वह अपने पति के पास वहां चली जावे कि जहां उसका पति है।

स्वामी जी स्त्री को पति के पास नहीं जाने देते, यहां ही मौज उड़ाने की आज्ञा देते हैं। आपने स्वामी जी और मनु का भाव समझ लिया, अब आर्यसमाजियों के मन को जैसा अच्छा लगे वैसा करें विशेष हम कुछ नहीं कहते।

नं० ( ३० ) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ० २२४ में लिखा है कि—

इमां त्वमिन्द्र मीढ्व सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि ॥

ऋ० अ० ८ अ०३ व०२८

( इमां० ) ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि हे इन्द्रपते! ऐश्वर्ययुक्त! तू इस स्त्री को वीर्यदान दे के सुपुत्र और सौभाग्ययुक्त कर, हे वीर्यप्रद! ( दशास्यां पुत्रानाधेहि ) पुरुष के प्रति वेद की यह आज्ञा है कि इस विवाहित वा नियोजित स्त्री में दश सन्तान पर्यन्त उत्पन्न कर अधिक नहीं ( पतिमेकादशं कृधि) तथा हे स्त्री! तू नियोग में ग्यारह पति तक कर अर्थात् एक तो उनमें प्रथम विवाहित और दश पर्यन्त नियोग के पति कर अधिक नहीं।

यहां पर स्वामी जी ने स्त्रियों को मौज उड़ाने के लिये पतियों का भंडार

खोल दिया। स्त्री एक और पति पूरे ग्यारह। अच्छी बात है, कोई नहीं मानेगा तो स्वामी जी के चेले आर्यसमाजी तो अवश्य ही मानेंगे क्योंकि उन के लिये तो डबल हुक्म है, एक तो स्वामी जी का हुक्म और दूसरे वेद की आज्ञा। आर्य-समाजियो ! क्या वेद का यही अभिप्राय है ? क्या समस्त ही वेद में व्यभिचार भरा है ? वेद में एक भी अक्षर व्यभिचार का नहीं स्वा० दयानन्द जी अपने मन में आये हुये व्यभिचार को वेद के बहाने से तुम्हें उपदेश करते हैं। वेद का असली अभिप्राय यह है।

'विवाह के समय में दूल्हा देवराज इन्द्र से प्रार्थना करता है कि कल्याण कारक, वृष्टि करने वाले हे इन्द्र ! इस स्त्री को तू सुपुत्र और सुभगा करना किस प्रकार, इसमें दश पुत्र उत्पन्न हों और ग्यारहवां मैं पति बना रहूँ'।

आर्यसमाजियो ! आप लोगों को यह विचारना चाहिये कि पवित्र वेद को स्वामी दयानन्द जी अपनी जबर्दस्ती से किस प्रकार व्यभिचार प्रतिपादक बना रहे हैं, क्या स्वा० दयानन्द जी की इस अनधिकार चेष्टा और अयोग्यता पर आप लोगों को कभी भी रोष नहीं आता ? क्या आप लोगों की श्रद्धा वेद से बिल्कुल उठ गई ? यदि नहीं उठी तो इन अनर्थकारी स्वामी जी के अर्थों का तुम उसी प्रकार खण्डन क्यों नहीं करते जैसे पं० बदरीदत्त जोशी भूतपूर्व उप-देशक आर्यसमाज कानपुर और वेदतीर्थ पं० नरदेव शास्त्री ने किया है।

नं० ( ३१ ) यजुर्वेद अध्याय ३२ मं० १ यह है।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

इसके ऊपर भाष्य करते हुये स्वा०दयानन्द जी लिखते हैं कि'हे मनुष्यो ! ( तत् ) वह सर्वज्ञ सर्वव्यापि सनातन अनादि सच्चिदानन्द स्वरूप नित्य, शुद्ध, बुद्ध मुक्त स्वभाव न्यायकारी; दयालु, जगतका स्रष्टा धारणकर्ता और सबका अन्तर्यामी ( एव ) ही ( अग्निः ) ज्ञानस्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि ( तत् ) वह ( आदित्यः ) प्रलय समय को ग्रहण करने से आदित्य ( तत् ) वह ( वायुः ) अनन्त बलवान् और सबका धर्ता होने से वायु ( तत् ) वह (चन्द्रमाः) आनन्द स्वरूप और आनन्द कारक होने से चन्द्रमा ( तत् एव ) वही ( शुक्रम् ) शीघ्रकारी वा शुद्धभाव से शुक्र ( तत् ) वह ( ब्रह्म ) महान् होने से ब्रह्म ( ताः ) वह ( आपः ) सर्वत्र व्यापक होने से आप ( उ ) और ( सः ) वह ( प्रजापतिः )

सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है ऐसा तुम लोग जानो'

ऐसा अच्छा फर्जी वेदार्थ जानने वाला सृष्टि के आरम्भ से आज तक संसार में न कोई पैदा हुआ और न आगे को होगा। असली बात यह है कि संसार में वेदार्थ का यदि किसी को पूर्ण ज्ञान हुआ तो वह दयानन्द जी को ही हुआ, इनको छोड़कर जितने भी ऋषि मुनि हुये उनको वेदार्थ का ज्ञान नहीं हुआ और न ईश्वर को ही हुआ ?

आज हम इस मंत्र के अर्थ को परीक्षा करेंगे कि यह कैसा बढ़िया अर्थ है। आर्यसमाजियो ! इस अर्थ की फिलास्फी तुम बतला सकोगे या वेदार्थ का महत्व दयानन्द के साथ ही समाप्त हो गया ? (१) 'हे मनुष्यो !' यह जो अर्थ में लिखा है यह मंत्र के कौन पद का अर्थ है, इसके विचार में आर्यसमाजियों को टूट पड़ना चाहिये। (२) 'सर्वज्ञ' यह मंत्र के कौन पद में आया है ? (३) 'सर्वव्यापि' जो मंत्र के अर्थ में लिखा है यह किसी दूसरे मंत्र से खैंचा गया है या इसी मंत्र में है ? (४) 'सनातन अनादि सच्चिदानन्द स्वरूप नित्य, शुद्ध, बुद्ध मुक्त स्वभाव, न्यायकारी, दयालु, जगतका स्रष्टा धारणकर्ता और सबका अन्तर्यामी' यह इतना बड़ा पुलन्दा मंत्र के किसी पद में छिपा बैठा है या दयानन्द के दिमाग से टपका है ? आर्यसमाजियो ! यही मंत्रार्थ होता है, मंत्र के बहाने से प्रत्येक मनुष्य अपने मन की भावनाओं को अर्थ में भरा करता है या मंत्रार्थ लिखता है ? धन्य है तुम्हारे ऋषि को जो वेदार्थ के बहाने से तुमको बेवकूफ बनाने के लिये अनाप सनाप बक दे और अत्यन्त धन्य है तुम्हारी बुद्धियों को जो दयानन्द के अनर्गल तथा जाली लेख को मंत्रार्थ समझ लें ? आर्यसमाजियों कैसे बुद्धिमान मनुष्य तो हमको संसार में ही नहीं मिले, यदि इनको पशुओं के परदादा कहा जावे तो कोई अत्युक्ति न होगी ? (५) मंत्र तो कहता है कि "वही ईश्वर अग्नि है" और स्वा० दयानन्द जी अर्थ में लिखते हैं कि 'ज्ञानस्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि' ज्ञानस्वरूप और प्रकाशित ये दो हेतु स्वा० दयानन्द जी ने अपने दिमाग से निकाल कर जो मंत्रार्थ में जबर्दस्ती से मिलाये यह क्यों ? हां-हां अब समझ गये, स्वा० दयानन्दजी ने लिखा है कि ईश्वर बेवकूफ है, बेवकूफी के कारण ईश्वर मंत्र में ये हेतु लगाने भूल गया ? स्वा० दयानन्द जी ने हेतु लगाकर अशुद्ध मंत्र को शुद्ध बना दिया ? (६) मंत्र लिखता है कि 'वह ईश्वर आदित्य है' स्वा० दयानन्द जी अर्थ करते हैं कि 'प्रलय समय के ग्रहण करने से आदित्य' यहां पर भी बेवकूफ ईश्वर भूल गया था। उस भूल का

संशोधन करने के लिये स्वामी जी ने 'प्रलय समय को गृहण करने से' इतना मिला दिया। भाग्य की बात है, दयानन्द पैदा न होते तो ईश्वर की गलतियां कौन निकालता ? ( ७ ) मंत्र का भाव है कि 'वही ईश्वर वायु है' स्वा० दयानन्द जी इसके ऊपर लिखते हैं कि 'अनन्त बलवान् और सबका धर्ता होने से वायु' ये दो हेतु जो स्वा० दयानन्द जी ने यहां बढ़ाये हैं अच्छा किया, संसार का उपकार हो गया ? ईश्वर की बुद्धि को क्या जानें क्या हो गया हर दम भूल जाता है, स्वा० दयानन्द जी वेद का कहां तक संशोधन करें ? अच्छा होता कि स्वा०दयानन्द जी वेद बना लेते,फिर तो ईश्वर के वेद को कोई पूछता भी नहीं और जो आर्यसमाजी दयानन्द के वेद को पढ़ता उसके दरवाजे ज्ञान का पहाड़ बन जाता ? ( ८ ) वेद कहता है कि 'वह ईश्वर चन्द्रमा है' स्वामी दयानन्द जी बतलाते हैं कि 'आनन्द स्वरूप और आनन्द कारक होने से चन्द्रमा' देख लो यहां भी ईश्वर की गलती को स्वामी जी ने तुरंत जान लिया। क्यों न हो, कोई मामूली महर्षि हैं ? ( ९ ) वेद समझाता है कि 'वही ईश्वर शुक्र ( पराक्रम ) है' स्वामी जी यहां पर अर्थ करते हैं कि 'शीघ्रकारी वा शुद्धभाव से शुक्र' भला यह तो बतलाओ कि दो हेतु अपनी तरफ से स्वामी जी न मिलाते तो क्या कोई सज्जन वेद का अर्थ करलेता ? स्वामी जी बड़े उपकारी हैं ईश्वर की गलतियों को संसार के आगे स्पष्ट रख देते हैं जिससे संसार ईश्वर की बदमासी को अच्छी तरह समझ जाता है ? ( १० ) मंत्र का कथन है कि 'वही ईश्वर ब्रह्म है' स्वामी जी इसका भाषा टीका लिखते हैं कि "महान् होने से ब्रह्म" भला इस बात को कोई जान सकता था कि महान् होने से ब्रह्म है ? सच बात तो यह है कि ईश्वर ने जितना वेद मंत्र नहीं बनाया उससे अधिक लेख अपनी बुद्धि से पैदा करके स्वामी जी ने अर्थ में मिला दिया, क्या अब भी आर्यसमाजी दयानन्द के लेख से ईश्वर को मूर्ख नहीं मानेंगे ? ( ११ ) वेद का आदेश है कि 'वह ईश्वर जल है' इसके अर्थ में स्वामी जी अपने प्राण प्यारे शिष्यों को उपदेश करते हैं कि "सर्वत्र व्यापक होने से आप" स्वामी जी की दृष्टि में जो व्यापक होगा वही जल होगा। इसी नियम से सर्वव्यापक अग्नि को जल समझ अब आर्यसमाजी पीने का आरंभ कर देंगे ? ( १२ ) वेद बतला रहा है कि 'वह ईश्वर प्रजापति है' स्वामी जी फरमाते हैं कि "सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है ऐसा तुम लोग जानो"।

कहो आर्यसमाजियो ! स्वामी जी ने अपनी तरफ से हेतु लगाकर मंत्र के

अर्थ में चालबाजी को कबड्डी खेली या नहीं ? यदि तुम पढ़े लिखे होते तो तुम्हें मालूम हो जाता कि स्वामी जी वेद मंत्र का अर्थ नहीं कर रहे बरन् वेद के गले पर छुरा चला रहे हैं ? सच तो बतलाओ इतना बड़ा वेद का दुश्मन क्या कोई आजतक हुआ है ? क्यों न हो नास्तिकों का महर्षि है न ?

कई एक आर्यसमाजी यह कह बैठते हैं कि मंत्रार्थ में हेतु देने से हानि क्या हो गई ? इसके उत्तर में हम यही कहेंगे कि आर्यसमाजियो ! तुम लिखे पढ़े नहीं हो इस कारण तुमको हानि लाभ का कुछ ज्ञान नहीं ? यहां तो इतनी बड़ी हानि होगई कि वेद के सिद्धान्त पर ही पानी फिर ? इस मंत्र में ईश्वर को सृष्टि का "अभिन्ननिमित्तोपादानकारण" होने से समस्त संसार को ईश्वर का स्वरूप बतलाया है । समझिये—

"वही ईश्वर अग्नि,वही आदित्य,वही वायु,वही चन्द्रमा,वही पराक्रम, वही ब्रह्म; वही जल और वही प्रजापति है" ।

इस मंत्र में अग्नि,सूर्य, वायु, चन्द्रमा, पराक्रम, ब्रह्म, जल, प्रजापति इन सब को ईश्वर का स्वरूप कहा है । जैसे घट, शराव, नाद, हांडी प्रभृति मिट्टी के बने हुये बर्तन मिट्टी ही होते हैं, केवल आकार मात्र उनका भिन्न होता है इसी प्रकार अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, पराक्रम, ब्रह्म, जल, प्रजापति ये सब आकार मात्र से भिन्न होने पर भी ब्रह्म हैं-यह वेद का अभिप्राय है इसको मंत्र और ब्राह्मण तथा उपनिषद्, पुराण एवं इतिहास ने बार बार दोहराया है । इसी के ऊपर पुष्पदन्त लिखते हैं कि—

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरं-
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥

भगवान् ! आप सूर्य हैं और आप ही चन्द्रमा हैं, पवन आप हैं तथा अग्नि भी आप ही हैं, जल समूह आप हैं,आकाश भी आप ही हैं, पृथ्वी आप हैं,आत्मा आप हैं, हम एक भी तत्व ब्रह्माण्ड में देखा नहीं पाते जो आप न हों ।

वेद के इस अमूल्य सिद्धान्त को संसार से उखेड़ फेंकने और 'पुरुष [illegible] दम्' इत्यादि वेद मंत्र, ब्राह्मण, उपनिषद्,वेदान्त दर्शन पुराण इतिहास का का[illegible]

मुंह कर देने के लिये स्वा० दयानन्द जी ने 'तदेवाग्नि:' इस मंत्र में अपनी तरफ से हेतु लगाये हैं। अब तुमको मानना पड़ेगा कि स्वा० दयानन्द जी वेदों के बढ़िया से बढ़िया घोर दुश्मन हैं और आर्यसमाजी मूर्ख होने के कारण दयानन्द जी की चालबाजियों को नहीं समझते। कहो आर्यसमाजियो! दयानन्द के पंजे में पड़कर तुम दीन दुनियां दोनों से गये या नहीं? और जो तुमको कहीं का भी न रहने दे, मनुष्य से पशु बना दे, तुम उसको महर्षि कहो तो तुम से अधिक मूर्ख दुनियां में कौन होगा? इसके ऊपर यदि तुम विचार कर लो तो मनुष्य बन जाओ और नास्तिकता का स्वाहा हो जाय।

## ईश्वर की मूर्खता

स्वा० दयानन्द जी चालबाजी में इतने बढ़े कि ईश्वर को भी मूर्ख सिद्ध करने लगे।

नं० (३२) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ० १२७ "मुखं किमस्यासीत्--ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्" इन दो मंत्रों के टीका में स्वामी जी ने ईश्वर में मूर्खत्व और नीचत्व गुण माना है।

धन्य है इन महर्षि को जो ईश्वर को भी मूर्ख बतलाते हैं, इन की दृष्टि में ईश्वर मुतलक जाहिल है। इस ऐसे अयोग्य लेख लिखने का प्रयोजन यही है कि आर्यसमाजी वेद तो जानते ही नहीं हमारे लेख के आधार पर ईश्वर को मूर्ख और हम को परिव्राजक--वेदज्ञाता, महर्षि मानेंगे। अपनी अनभिज्ञता के कारण आर्यसमाजियों ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया कि ईश्वर तो मूर्ख है किन्तु स्वा० दयानन्द जी विद्वान् हैं।

अविद्या संसार में मनुष्य से बड़े बड़े अनर्थ करवा देती है यदि आर्यसमाजियों में कोई एक भी वेद ज्ञाता होता तो तत्काल आवाज उठाता कि स्वा० दयानन्द जी ने जो ईश्वर में मूर्खत्वादि गुण माने हैं वे सर्वथा अयोग्य और स्वा० जी के नास्तिक भावों को सिद्ध करने वाले हैं किन्तु कोई आर्यसमाजी पढ़ा लिखा है नहीं इसलिये इन्होंने यह मान लिया कि ईश्वर मूर्ख है। जब आर्यसमाजियों की दृष्टि में ईश्वर जाहिल है तो ऐसे जाहिल ईश्वर के बनाये हुये वेद कैसे प्रामाणिक हो सकते हैं? बात तो और ही है। आर्यसमाज के गणपति प्रभृति विद्वान् यह कहा करते थे कि आर्यसमाज वेद को नहीं मानती, [illegible] प्रलोभन देकर सांसारिक मनुष्यों को नास्तिक बनाती है। बात सच है

यदि ईश्वर मूर्ख है और आर्यसमाज को ईश्वर के मूर्ख होने का विश्वास है तो फिर वह मूर्ख ईश्वर के बनाये हुये वेदों को कैसे प्रमाण मान लेगी? अतएव मानना पड़ेगा कि आर्यसमाज तो वेद नहीं मानती दूसरों को वेद वेद चिल्ला कर अपने जैसा बनाना चाहती है, क्या कोई आर्यसमाजी संसार में ऐसा है जो ईश्वर को मूर्ख सिद्ध करदे? हो तो लेखनी उठावे। यदि एक भी आर्यसमाजी ईश्वर को मूर्ख सिद्ध नहीं कर सकता तो फिर दयानन्द ने जो ईश्वर को मूर्ख माना है क्या उनकी बुद्धि का दिवाला नहीं निकल गया?

## साहित्य पर छुरा

नं०(३३) सत्यार्थप्रकाश पृ० ६८ में लिखा है कि पुराणादिक ग्रंथ "विषसंप्राक्तान्नवत् त्याज्य हैं' जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने के योग्य होता है वैसे यह ग्रन्थ हैं'।

यहां पर स्वामीजी वेद का खण्डन करके अपने लेख को वेद सिद्ध करेंगे इस कारण सब से पहिले आप पुराणों का खण्डन करते हैं। पुराणों में आप 'झूठमिला है' यह बतलाते हैं। पुराणों में क्या२ झूठ है इसका सबूत नहीं देते? इस विषय में महाभारत लिखता है कि

पुराणं मानवो धर्मः साङ्गोवेदश्चिकित्सितम्।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः॥

पुराण, मनु के कहे धर्म, अंगों सहित वेद और वैद्यक ये चारों ग्रन्थ आज्ञा सिद्ध हैं, इन को दलीलों से नहीं काटना चाहिये।

मनुजी लिखते हैं कि

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥
मनु० २। १२

वेद, धर्मशास्त्र, सदाचार और आत्मप्रेम इन चार प्रकार से धर्म जाना जाता है।

सदाचार के ऊपर मनुजी लिखते हैं कि

तस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥
२। १८

जिस देश में जो आचार समस्त जातियों में परंपरा से चला आया हो यह सदाचार ही धर्म होजाता है।

सदाचार का ज्ञान पुराणों से होता है, मनु ने सदाचार को लेकर पुराणों की सत्यता सिद्ध की है। पुराण सत्य और माननीय हैं इसके ऊपर शतपथ लिखता है

स यथार्द्रैन्धनाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वारेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनु व्याख्यानानिव्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ।

शत० १४ प्र० ब्रा० ४ कं० १०

जिस प्रकार से गीले ईंधन के संयोग से अग्नि में नानाविधि के धूम प्रकट होते हैं इसी प्रकार उस परमात्मा के ऋग् यजु--साम-अथर्व-इतिहास-पुराण -विद्या - उपनिषद् - श्लोक-सूत्र- व्याख्यान - अनुव्याख्यान ये सब श्वास भूत हैं।

और देखिये ——

सहोवाच, ऋग्वेदं भगवोध्येमि यजुर्वेद ॐ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्य ॐ राशिंदैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देव विद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्या ॐ सर्पदेवयजनविद्यामेतद्भगवोध्येम

छां० प्र० ७ खण्ड १

नारद बोले कि ऋग्-यजु-साम—अथर्व--को जानता हूँ एवं इतिहास पुराण पंचम वेद भी मैंने पढ़ा है, श्राद्धकल्प' गणित' उत्पातज्ञान,महाकालादिनिधि, तर्क,नीति, निरुक्त, ब्रह्म सम्बंधी उपनिषद् विद्या, भूत तंत्र,धनुर्वेद,ज्योतिष्, सर्प-विद्या गरुड़ि' गन्धयुक्त नृत्य--गीतादि वाद्य,शिल्प ज्ञान को जानता हू।

आगे पढ़िये

अरेस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेवैतद्यदृग्वेदो यजुर्वेद

सामवेदोथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोका सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टᳫं हुतमाशितं पायितमयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ।

बृह० अ० ४ कं० ११ ब्रा० ५

उस परमेश्वर के निश्वसित ऋग्-यजु-साम-अथर्व-इतिहास-पुराण-विद्या—उपनिषद्-श्लोक-सूत्र-व्याख्यान-अनुव्याख्यान हैं।

और देखिये

सबृहतीं दिशमनुव्यचलत् तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशᳫं सीश्चानुव्यचलन् इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशᳫं सीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।

अथर्व० कां० १५ प्र० ६ अनु० १ म० १२

वह वेद दिशाओं में फैला, उसी के साथ २ इतिहास, पुराण, गाथा, नाराशंसी चली ।

आगे देखिये—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिविदेवा दिविश्रिताः ॥

अथर्व० ११।७।१।२३

सब के अन्त में शेष रहने वाले परमात्मा से ऋक्-साम अथर्व और पुराण यजु के साथ उत्पन्न हुये।

वेदादि सच्छास्त्र पुराणों के महत्व को गा रहा है किन्तु दयानन्द जी वेद साहित्य को कुवल पुराण को त्याज्य बतलाते हैं क्या इसीका नाम वेद प्रमाण मानना है ? महर्षि की बात २ में चालाकी भरी है, इस चालाकी को किसी आर्यसमाजी ने समझा है ?

चालाक आर्यसमाजी यह कह बैठते हैं कि वेदों में जो पुराणों का महत्व बतलाया है वह ब्राह्मयादि अठारह पुराणों का नहीं है किन्तु शतपथादि ब्राह्मण-ग्रन्थों का है-यह आर्यसमाजियों की चालाकी है ? इसके उत्तर में हम यह जोर देंगे कि ( १ ) शतपथादि ब्राह्मणग्रन्थ कभी पुराण हो ही नहीं सकते, जिसको

हम आगे लिखेंगे ( २ ) दयानन्द के मत में वेद पहिले बने और ब्राह्मणग्रन्थ बाद में, फिर बाद में बने हुये ब्राह्मणों का वेद में कैसे जिक्र आया ? ( ३ ) गोपथ ब्राह्मण ब्राह्मणग्रन्थों को पृथक् लिखता है और पुराणों को ब्राह्मणों से भिन्न मानता है इसको देखिये ।

एवमिमे सर्वे वेदा निर्मितास्सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्याताः सपुराणाः सस्वराः ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्यास्तेषां यज्ञमभिपद्यमानानाँ छ्रियते नामधेयं यज्ञमित्येवमाचक्षते ।

गोपथ पू० भा०:प्र० २

इस प्रकार कल्प,रहस्य,ब्राह्मण,उपनिषद्,इतिहास,अन्वाख्यान,पुराण,स्वर, संस्कार, निरुक्त, अनुशासन, अनुमार्जन, वाकोवाक्य सहित इन वेदों को ईश्वर ने प्रकट किया।

इस गोपथ ब्राह्मण की श्रुति ने ब्राह्मणग्रन्थों को अलाहिदा और पुराणों को उनसे भिन्न लिखा है तो फिर हम यह कैसे मानलें कि ब्राह्मण ग्रन्थों को पुराण कहते हैं ?

आर्यसमाजियो ! तुम यह भी समझते हो स्वामी जी ने यह चालबा क्यों खेली ? इस चालबाजी का मतलब यह है कि जितने भी प्रामाणिक ग्रन्थ हैं उनको तो हम प्रमाण कोटि से निकाल दें, और अपने लेख को वेद बनावें, प्रकार से आर्यसमाजियों को आंख में धूल झोंकने के लिये यह चाल है। समझो धर्मशास्त्र में लिखा है कि—

पुराणं न्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥

याज्ञवल्क्य स्मृति

पुराण, गौतम कणाद न्याय, पूर्वमीमांसा और वेदान्त, समस्त धर्मश छः अंगसहित वेद इन चौदह विद्याओं से ही धर्म का निर्णय होता है। ... फि

जिन पुराणों के महत्व का वेद गा रहा है दयानन्द जी उनकी अमान्य

तो लिख कर चुके अब श्लोक में कहे हुये आगे के ग्रन्थों का स्वामी कृत फैसला देखलें।

नं० ( ३४ ) सत्यार्थप्रकाश पृ० ६८ में लिखा है कि "ऐतरेय, शतपथ साम और गोपथ, चारों ब्राह्मण, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघंटु, निरुक्त,छन्द और ज्योतिष् छः वेदों के अंग, मीमाँसादि छः शास्त्र वेदों के उपांग, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद और अथर्ववेद ये चार वेदों के उपवेद इत्यादि,सब ऋषि मुनि के किये ग्रंथ हैं इनमें भी जो २ वेद विरुद्ध प्रतीत हो उस २ को छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वर कृत होने से निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण अर्थात् वेद का प्रमाण वेदसे ही होता है ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परतः प्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है।

इस लेख में उपवेद-ब्राह्मण और वेदों के अंग इन सब के प्रमाण का सफाया हो गया। स्वामी जी इनको विल्कुल प्रमाण नहीं मानते। जो बात वेदों में लिखी हो और वही इनमें लिखी मिल जावे तब तो प्रमाण, नहीं तो विल्कुल प्रमाण नहीं। जो बात वेदों में लिखी है उसको तो वेद ही से प्रमाण मान लिया जायगा फिर इनके प्रमाण मानने की क्या जरूरत ? ये ग्रन्थ तो विल्कुल अप्रामाणिक रहे ? यहां पर दयानन्द जी एक चाल खेल गये, आर्यसमाजी इसको नहीं समझे, वह चाल यह है कि जब इन ग्रंथों में से कोई प्रमाण स्वामी जी लेंगे तब कह देंगे कि यह वेदानुकूल है इस कारण प्रमाण है। जब कोई दूसरा मनुष्य [illegible]का प्रमाण देगा तब कह देंगे कि यह प्रमाण अमान्य है क्योंकि वेद से नहीं [illegible]लता। ये महर्षि की चालबाजियां आर्यसमाज को गारत करके छोड़ेंगी।

सत्यार्थप्रकाश पृ० ६८ में लिखा है कि "स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति अमान्य हैं"।

ठीक है,मन का फैसला है,जो जी में आवे सो लिखें। हम आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि ऊपर लिखे ग्रन्थ वेदानुकूल होने से प्रमाण और सब स्मृतियां अप्रमाण, क्षेपक को छोड़ कर मनु प्रमाण यह जो फैसला स्वा० दयानन्द जी ने [illegible] दिया है इसकी सचाई सिद्ध करने के लिये किसी ग्रंथ में लिखा है कि पुराणों [illegible]को मत मानो, स्मृतियों को मत मानो, वेद के अंग और दर्शनों को तभी प्रमाण [illegible]नो जब इनकी लिखी बात वेद में लिखी मिल जाय, और मनु में क्षेपक हैं, [illegible]न को छोड़ कर तुम मनु को मानियो ? ऐसा लेख किसी भी ग्रन्थ में नहीं [illegible]लता। स्वा० दयानन्दजी का यह लेख चण्डूखाने की गप्प है, धर्म शास्त्र [illegible]रुद्ध है ,यह कोई मान नहीं सकता कि सृष्टि के आरंभ से लेकर अब तक

दयानन्द ने होश नहीं संभाला तब तक हिन्दुओं को यह खबर नहीं पड़ी कि हमारे ग्रन्थों में से कितने ग्रंथ प्रमाण हैं और कितने अप्रमाण ? जब महर्षि याज्ञवल्क्य यह फैसला दे चुके कि अठारह पुराण, महाभारत, वैशेषिक तथा गौतम सूत्र,पूर्वमीमांसा एवं वेदान्त,समस्त धर्मशास्त्र और छः अंगों सहित वेद ये प्रमाण हैं तब इसके विरुद्ध दयानन्द के फर्जी फैसले को वही मानेगा कि जिसने अपनी अक्ल का कचूमर निकाला हो। आर्यसमाजियो ! जब शास्त्रार्थ में यह घण्ट तुम्हारे गले में उलझता है तब मुर्दे और तुम्हारे चेहरे में कोई फर्क नहीं रहता, इतनी दुर्दशा को सह कर भी तुम दयानन्द की इस चालबाजी में फंसते हो तो तुम अवश्य निरक्षर हो।

## वेद का सफाया।

स्वा० दयानन्द जी चालबाजी में इतने बढ़े कि इन्होंने छुरा लेकर वेदों के टुकड़े कर उनको अमान्य बना डाला। इस अयोग्य कार्य के करने से स्वा० जी का अभिप्राय इतना है कि आर्यसमाजी वेद को अप्रामाणिक मान दूर फेंक दें और हमारे लेख को वेद मानने लगें। स्वामी दयानन्द जी की इस चाल को चार लाख आर्यसमाजियों में से एक ने भी नहीं जाना, जानें वे जो पढ़ें, मूर्ख आर्यसमाजी स्वा० दयानन्द जी की गहरी चाल को कैसे समझ लें ? इन्होंने नहीं समझा तो न सही किन्तु दाई के आगे पेट नहीं छिपता, वेद ज्ञाताओं के आगे जो स्वा० दयानन्द जी किसी नई चाल को खड़ा करेंगे तो क्या वेद के लिखे पढ़े इसको न जान सकेंगे ? आज हम आर्यसमाजियों को दयानन्द जी की चालबाजी दिखला कर सचेत करते हैं कि संभलो, नहीं तो बड़ी २ ठोकरें खाओगे ? इतने पर भी आर्यसमाजी हमारी बात को न मानें तो न सही, विचारशील मनुष्य तो मानेंगे ?

वेद दो भागों में विभक्त है एक मंत्र भाग है और दूसरा ब्राह्मण भाग। शुक्ल यजुर्वेद के मंत्र भाग की माध्यन्दिनी शाखा है तथा इसका ब्राह्मण शतपथ है किन्तु कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता प्रभृति कई एक संहिताओं में वेद और ब्राह्मण मिलकर चलते हैं,भाव यह है कि मंत्र और ब्राह्मण इन दो भागों के मिलने पर वेद कहलाता है या यों समझो कि वेद के दो हिस्से हैं, पहिला हिस्सा मंत्र-भाग है, और दूसरा हिस्सा ब्राह्मण भाग, स्वामी जी ने इन दोनों के गले पर छुरी चलाने का उद्योग उठाया।

नं० ( ३५ ) आप ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के वेदसंज्ञाविचार में लिखते हैं कि—

( १ ) ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण हैं, वे ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते क्योंकि उनके नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी हैं ( २ ) ब्राह्मण ग्रन्थ ईश्वरोक्त नहीं हैं किन्तु महर्षि लोगों ने बनाये हैं ( ३ ) वे वेद नहीं हैं क्योंकि वेदों का व्याख्यान हैं ( ४ ) एक कात्यायनि ऋषि को छोड़कर अन्य किसी ऋषि ने इनके वेद होने की साक्षी नहीं दी ( ५ ) ब्राह्मणों में इतिहास हैं इस कारण भी वे वेद नहीं हो सकते अतएव पुराण हैं।

इस लेख पर गूढ़ विचार करना और विचार द्वारा फल निकालना यह प्रत्येक वैदिक धर्मी मनुष्य का कर्तव्य है। इस कर्तव्य को आगे रखकर अपनी बुद्धि के अनुसार हम भी कुछ विचाररूप में यहां लिखते हैं,आशा है कि जिज्ञासुजन समुदाय इससे यथेच्छ लाभ उठावेगा। प्रथम पुष्टि में यह दिखलाया है कि ब्राह्मण ग्रन्थों की पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी संज्ञा है इस कारण इनकी वेद संज्ञा नहीं हो सकती। इस पुष्टि में प्रमाण कुछ भी नहीं दिया केवल लेख लिखकर आज्ञामात्र दी है। क्या लेखक यह तो नहीं समझा कि जब एक वस्तु की एक संज्ञा हो गई तो फिर द्वितीय संज्ञा कैसे होगी। यदि यही बात है तब तो निश्चय दयानन्द भ्रम में पड़ गया। कोई भी संज्ञा अन्य संज्ञा का निषेध नहीं कर सकती। यदि हम निषेध करना मान लें तो क्षति यह होगी कि ब्राह्मणों की पुराण संज्ञा ही कल्प संज्ञा का विरोध कर बैठेगी। यदि एक संज्ञा द्वितीय संज्ञा का विरोध करती है तो इसी नियम के अनुसार प्रथम प्राप्त पुराण संज्ञा किसी प्रकार भी कल्पसंज्ञा न होने देगी। दुर्जनतोष न्याय से यदि हम यह भी मान लें कि किसी प्रकार बलात्कार हम कल्प संज्ञा कर ही लेंगे तो फिर पुराण और कल्प ये दोनों संज्ञा तृतीय गाथा संज्ञा का निश्चय निषेध कर देंगी। इसमें कोई 'ननु' 'नच' 'किंतु' 'किम्बा' कर नहीं सकता क्योंकि सर्वतंत्र सिद्धान्त होगया कि एक संज्ञा द्वितीय संज्ञा की बाधा करती है। सिद्धान्त विपरीत कभी नहीं हो सकेगा। हम यह भी मान लें कि पुराण, कल्प, संज्ञा रहते हुये भी किसी रीति से गाथा संज्ञा कर लेंगे तो फिर पुराण, कल्प, गाथा ये तीन संज्ञा नाराशंसी संज्ञा न होने देंगी। किन्तु यहां पर इन तीन संज्ञाओं के रहते हुये भी चतुर्थ नाराशंसी संज्ञा होजाती है तो फिर हम किस प्रकार मान लें कि पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी इन चार संज्ञाओं के रहते हुये वेद संज्ञा नहीं हो सकती स्वामी ने जो संज्ञा रहते हुये द्वितीय

संज्ञा के निषेध का नियम स्थापित किया था वह तो इन्हीं परस्पर चार संज्ञाओं के होने में कपूर की भांति उड़ गया, फिर इन चार संज्ञाओं के रहते हुये पंचम संज्ञा का अवरोध किस नियम से कर सकते हैं, वह नियम स्वामी के लेख में आया नहीं,अतएव यह सुतरां सिद्ध है कि ब्राह्मणों की पुराण,गाथा,कल्प नाराशंसी संज्ञा रहते हुये भी वेद संज्ञा अवश्य है।

एक संज्ञा दूसरी संज्ञा को बाधक नहीं होती,इस विषय में हम एक उदाहरण व्याकरण का देते हैं।'हरि'इसकी प्रथम शब्द संज्ञा है,शब्द संज्ञा रहने पर भी वैयाकरण मनुष्य इसकी प्रातिपदिक संज्ञा करते हैं। प्रातिपदिक संज्ञा होने में शब्द संज्ञा किंचिन्मात्र भी छेड़ नहीं करती किन्तु द्वितीय संज्ञा को स्वीकार कर लेती है। विद्वान् लोगों को तो दो संज्ञा होने हर भी तो सन्तोष नहीं होता, वे लोग तृतीय "भ" संज्ञा कर बैठते हैं। यहां पर भी शब्द संज्ञा और प्रातिपदिक संज्ञा "भ" संज्ञा से शत्रुता नहीं करती। फिर चतुर्थी के एक वचन में इसी "हरि" की कि जिसकी शब्द संज्ञा,प्रातिपदिक संज्ञा, भ संज्ञा हो चुकी है 'घि' संज्ञा करते हैं। यहां पर भी शब्द संज्ञा, प्रातिपदिक संज्ञा, भ संज्ञा ने घि संज्ञा का निषेध नहीं किया फिर हम कैसे मानलें कि पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी वेद संज्ञा का निषेध कर देंगी।

अब एक लौकिक उदाहरण ले लीजिये। कल्पना कीजिये कि कानपुर में कोई रघुनन्दन शुक्ल नामक व्यक्ति है। वह पाठशाला में संस्कृत पढ़ने लगा परिश्रम के फल से वह कुछ दिन में शास्त्री परीक्षा दे आया और उत्तीर्ण भी हो गया। अब उसकी तीन संज्ञा होगईं, रघुनन्दन,शुक्ल,शास्त्री। यहां पर रघुनन्दन और शुक्ल इन दो संज्ञाओं ने शास्त्री संज्ञा के आने पर उसकी कुछ भी रोक टोक नहीं की। अब यह सज्जन अंग्रेजी भाषा में परिश्रम करने लगा कुछ दिन के पश्चात् बी० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ। अब यह अपने को रघुनन्दन-शुक्ल-शास्त्री बी० ए० लिखने लगा रघुनन्दन-शुक्ल-शास्त्री इन तीन संज्ञाओं ने बी० ए० संज्ञा का कुछ भी विरोध नहीं किया। यही पुरुष राज्याधिकार में प्रवेश कर गया और शनैः शनैः जज हो गया, अब एक संज्ञा और आगई। प्रथम की संज्ञाओं ने जज संज्ञा से महाभारत नहीं मचाया फिर हम कैसे मानलें कि पुराण,कल्प, गाथा नाराशंसी संज्ञा ब्राह्मणों की वेद संज्ञा होने में घोर युद्ध मचावेंगी।

अब हम यह सिद्ध करेंगे कि मंत्र भाग में जिस मंत्र की पुराण इतिहास संज्ञा है उसी मंत्र की वेद संज्ञा भी है। मंत्र नीचे देखिये—

यस्या वै मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम् । वैन्यो धोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक् । सोदाक्रमत्सा सुराना-द्यगच्छत्तामसुरा उपाह्वयन्त एहीति तस्या विरोचनः । प्राह्लादिर्वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम् ।

अ० कां० ८ अ० ५ सू० १३

उस गोरूप पृथ्वी का वैवस्वत मनु वत्स ( बछड़ा ) हुआ, पृथ्वी का पात्र बनाया, वेन के पुत्र महाराज पृथु ने उस गो से कृषि और सस्य (तृण) को दुहा, फिर वह गोरूप पृथ्वी असुरों के पास पहुँची, असुरों ने उसका आह्वान किया । आह्वान के पश्चात् जब वह गो असुरों के पास ठहर गई तब प्रह्लाद के पौत्र विरोचन को वत्स बना कर पृथ्वीपात्र में अपने भोजन को दुहा ।

इस मंत्र की पुराण,इतिहास संज्ञा रहने पर भी वेद संज्ञा सिद्ध है अतएव इसके वेद होने में कोई भी पुरुष मस्तक नहीं हिलाता । इसी उदाहरण को सन्मुख रखलें तो फिर वह कौन न्याय है जिसका आश्रय लेकर हम यह कहने को उद्यत हों कि ब्राह्मणों की वेद संज्ञा नहीं होती । स्वामी ने किंचित् भी विचार नहीं किया,हास्यास्पद लेख लिखने का ही उद्योग किया है । अब हम यह सिद्ध करेंगे कि कल्प की वेद संज्ञा होती है "चत्वारि श्रृंगा" इस वेद मंत्र में कल्प की वेद संज्ञा वेद ने ही मानी है और इसके ऊपर यास्क मुनि ने निरुक्त भी किया है । जब कि कल्प की वेद संज्ञा स्वतः प्रमाण भगवान् वेद ही कह रहा है और उसके साक्षी वेद ज्ञाता मुनि यास्क हैं फिर हम किसी के कहने से किस प्रकार मानलें कि कल्प संज्ञा होने पर वेद संज्ञा नहीं होती । विचारशील सज्जनों की दृष्टि में स्वामी का भाषण बाल भाषण की तुल्यता से अधिक विन्दुमात्र भी गौरव नहीं रखता । 'चत्वारिश्रृंगा' यह मंत्र इसी लेख में निरुक्त सहित हम आगे लिखेंगे अतएव हमने यहाँ नहीं लिखा । आगे यह भी दृष्टिगोचर कराने का उद्योग करते हैं कि नाराशंसी की भी वेद संज्ञा होती है । अधोलिखित मंत्र के अवलोकन मात्र से निरंतर सिद्ध हो जावेगा ।

इदं जना उपश्रुत नराः शंसस्तविष्यते ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आरुशमेषु दद्महे ॥

अथर्व० कां० २०

हे मनुष्यो ! इस बात को सुनो, मनुष्य स्तुत किये जाते हैं साठ सहस्र

और नब्बे कौरव्य राजा ने दान दिये हैं ।

इस मंत्र को नाराशंसी संज्ञा रहने पर भी वेद संज्ञा में किसी प्रकार की
त्रुटि नहीं आती । फिर हम किस आधार का अवलम्बन कर कह सकते हैं कि
नाराशंसी संज्ञा होने पर वेद संज्ञा नहीं होती । ब्राह्मणों के वेद न होने में जो
प्रथम हेतु लिखा गया था उसका सारांश पाठक अवलोकन कर चुके । अब
द्वितीय हेतु पर बिचार का आरम्भ करते हैं । द्वितीय हेतु में यह दिखलाया गया है
कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते क्योंकि वे ईश्वरोक्त नहीं किन्तु महर्षि लोगों
के बनाये हैं ।

स्वामी के मत में वेद और ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव एक जैसा है । इनका
मन्तव्य है कि अग्नि, वायु, रवि, अंगिरा इन चार ऋषियों द्वारा वेद संसार में
आया अर्थात् ये चार ऋषि समाधि में बैठे और उस समाधि समय में ईश्वर
ने अपना अलौकिक वेद ज्ञान इनके अन्तः करण में प्रकाशित किया उसी को
इन्होंने संसार में फैलाया, इसी ज्ञान का नाम वेद ज्ञान है । ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव
होने में इनका मत है कि अनेक ऋषि समाधिस्थ हुये और उसी में परमात्मा
ने उनके अन्तः करण में वेदार्थज्ञान प्रकाशित किया उस ज्ञान का नाम "ब्राह्मण
ग्रन्थ" है ।

इस मत में वेद और ब्राह्मणों के प्रादुर्भाव में किंचिन्मात्र भी अन्तर नहीं,
ऋषि समाधि में एक दशा में बैठे, ज्ञान की उपलब्धि एक ही प्रकार से और
एक ही ईश्वर से हुई, फिर हमको यह ज्ञान नहीं होता है कि वेदों को ईश्वर
प्रणीत और ब्राह्मणों को ऋषि प्रणीत किस हेतु से माना । यदि वास्तव में दोनों
में हो ज्ञान ईश्वर का है तब तो दोनों ही ईश्वर के ज्ञान हैं । ईश्वरज्ञान रहने
पर भी एक ईश्वर प्रणीत और द्वितीय ऋषि प्रणीत लिखना प्रमाद है. अतएव
सिद्ध हुआ कि वेद और ब्राह्मण इन दोनों का प्रादुर्भाव इनके मत में एक जैसा
है फिर ब्राह्मणों को ऋषि प्रणीत लिखना बड़ी भारी भूल है ।

इस प्रकार से जो वेद और ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव बादी ने माना है,
वह कल्पित है । न कोई अग्नि, न कोई वायु और न कोई रवि ऋषि था ।
अंगिरा ऋषि अवश्य थे किंतु उनके द्वारा वेद का प्रादुर्भाव होना यह वैदिक
साहित्य में कहीं पर भी सिद्ध नहीं है अतएव ये समस्त मानसिक कल्पनायें हैं
'मानसिक कल्पना रहने पर भी ये सत्य मानी जाती हैं ,जब इस के मत में मंत्र

और ब्राह्मण दोनों ईश्वरीयज्ञान हैं फिर ब्राह्मण भाग ऋषि प्रणीत किस प्रकार हुआ इस पर पाठक वर्ग विचार करें।

वैदिक सिद्धान्त से भी मंत्र और ब्राह्मण दोनों का प्रादुर्भाव तुल्य है। शतपथ ने लिखा है।

**स यथार्द्रैन्धनाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वारेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदोऽथयर्वेजुदःसामवेदोऽथ र्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकःसूत्राण्यनु व्याख्यानानि।**

शत० १४ प्र०ब्र० ४ कं० १०

जैसे अग्नि में गीली लकड़ी लगाने से धूम्र उठता है और वह धूम्र चारों दिशाओं में फैलता है इसी प्रकार सृष्टि के आरंभ में ईश्वरीय ज्ञान जो कि ईश्वर का स्वास भूत है वह ऋग्वेद,यजुर्वेद,सामवेद,अथर्ववेद,इतिहास,पुराण,उपननिषद् श्लोक,सूत्र और व्याख्यान रूप होकर चारों तरफ फैला।

इस वैदिक सिद्धान्त को जब हम आगे रखते हैं तब मंत्र ,ब्राह्मण,पुराण आदि समस्त ईश्वरीय ज्ञान का प्रादुर्भाव एक जैसा है फिर हम एक को ईश्वर प्रणीत और द्वितीय को ऋषि प्रणीत किस न्याय को आगे रख कहने का साहस कर सकते हैं। इस से सिद्ध हुआ कि ब्राह्मण ग्रंथ ऋषि प्रणीत नहीं किंतु ईश्वर प्रणीत हैं अतएव द्वितीय हेतु निःसन्देह सार शून्य व्याधि ग्रस्त पुरुष के कथन की तुल्यता को छोड़ कर शेष कुछ भी फल नहीं रखता।

तृतीय हेतु यह है कि ब्राह्मण ग्रंथ वेद नहीं हैं क्यों कि वे वेद का व्याख्यान हैं अतएव पुराण हैं। क्या आनन्द का लेख है'अवलोकन मात्र से चित्त आनन्दाब्धि में निमग्न होजाता है'जो पुस्तक जिस विषय का व्याख्यान हो वह पुस्तक उस विषय का तो न रहे किन्तु अन्य विषय का होजावे—यह लेख हमारी बुद्धि में समावेश नहीं करता। हमने तो आज तक यही पढ़ा और यही सुना है कि जिस पुस्तक में जिस विषय का व्याख्यान हो वह पुस्तक उसी विषय का रहता है,उदाहरण अवलोकन कीजिये। महर्षि पाणिनि ने व्याकरण के नियम रूप सूत्रों का निर्माण करके अष्टाध्यायी रची। उस अष्टाध्यायी के सूत्रों पर महर्षि पतंजलि ने विस्तृत व्याख्यान किया ,उस विस्तृत व्याख्यान का नाम "महाभाष्य" है। आज तक भारत के गौरव रखने वाले "महाभाष्य" को

सभी विद्वान् व्याकरण का सर्वोपरि आदरणीय पुस्तक मानते हैं, फिर वह कौन नियम है जिस नियम से पुस्तक अपने विषय को छोड़ कर अन्य विषय का होजाता है। यदि पुस्तक का अन्य विषयक होना सिद्ध है तब तो अनर्थ हो जावेगा ,आगे को इसी नियम के अनुकूल महाभाष्य भी व्याकरण का ग्रन्थ नहीं रहेगा। कल्पना करो किसी मनुष्य से पूछा कि महाभाष्य किस विषय का पुस्तक है ? उस ने उत्तर दिया कि "महाभाष्य" तो ज्योतिष् का ग्रंथ है। प्रश्न कर्ता ने कहा हम तो आज तक व्याकरण का सुनते थे ? उत्तर दाता कहेगा कि महाभाष्य व्याकरण का ग्रंथ नहीं क्यौ कि उस में व्याकरण का व्याख्यान है अतएव वह ज्योतिष का ग्रंथ है।

द्वितीय उदाहरण देखिये ,महर्षि गौतम ने "न्यायदर्शन,, का निर्माण किया,उस न्याय दर्शन के ऊपर महर्षि वात्स्यायन ने भाष्य किया, आज तक सभी विद्वान् वात्स्यायन भाष्य को न्याय का ग्रन्थ बतलाते हैं। तथा न्यायदर्शन के व्याख्यान रूप "रामरुद्री"दिनकरी,,आदि२ बड़े २ पुस्तक न्याय के ग्रंथ कहलाते हैं किन्तु अब वे न्याय के ग्रन्थ न रहेंगे। कल्पना करो एक मनुष्य ने किसी से पूछा कि "वात्स्यायन भाष्य ,,और राम रुद्री,, तथा 'दिनकरी' किस विषय के ग्रंथ हैं ? उत्तर मिला वैद्यक के। प्रश्न कर्ता ने कहा हम तो आजतक उनको न्याय के पुस्तक ही सुनते आये हैं ? उत्तर दाता बोला कि यह कहने वालौ की भूल है' वात्स्यायन भाष्य और 'राम रुद्री, तथा 'दिनकरी, में न्याय का व्याख्यान है इस कारण वे वैद्यक के ग्रन्थ हैं।

इस सिद्धान्त को आगे रखल तब तो कुछ का कुछ हो जावेगा। वादी का यह हेतु शास्त्र विरुद्ध, बुद्धि विरुद्ध और प्रत्यक्ष विरुद्ध है। जब व्याकरण का व्याख्यान रूप महाभाष्य व्याकरण है और न्यायके व्याख्यान रूप'वात्स्यायन भाष्य' तथा 'रामरुद्री' 'दिनकरी'न्याय के ग्रन्थ हैं तो फिर वेदों के व्याख्यान रूप ब्राह्मण ग्रन्थ वेद कैसे न होंगे और वे पुराण किस प्रकार हो जावेंगे। इसके ऊपर पाठक ही विचार करलें,कि इस तृतीय हेतु में कितना गौरव है।

चतुर्थ हेतु में यह दिखलाया गया है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते क्योंकि एक कात्यायनि ऋषि को छोड़कर अन्य किसी ऋषि ने भी उनके वेद होने में साक्षी नहीं दी अतएव वे पुराण हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं इसको एक नहीं समस्त ऋषियौ ने माना है। उन समस्त ऋषियौ में से कुछ ऋषियौ के लेख नीचे लिखे जाते हैं।

## महर्षि जैमिनि।

तच्चोदकेषु मंत्राख्या।

मीमांसा० अ० २ सू० ३२

शेषे ब्राह्मणशब्दः।

मीमांसा० अ० २ सू० ३३

ऊपर के सूत्र का अर्थ है कि प्रेरणा लक्षण श्रुति ही मंत्र है। मंत्र से जो शेष वेद है वह ब्राह्मण शब्द से कहा जाता है।

कहिये, महर्षि जैमिनि ने दो सूत्रों में मंत्र और ब्राह्मण दोनों को ही वेद माना या नहीं? पहिले सूत्र में मंत्र भाग को वेद बतलाया और दूसरे में शेष वेद को ब्राह्मण शब्द से याद किया। आप कहते थे कि केवल कात्यायनि ऋषि ने ही ब्राह्मणों को वेद माना है, यदि ऐसा है तो फिर ये दूसरे महर्षि जैमिनि कहां से कूद बैठे जो ब्राह्मणों को वेद कह रहे हैं। और देखिये—

## महर्षि गौतम।

तदप्रामण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः।

न्यायद० अ० २ आ० १ सू० ५७

( तदप्रामाण्यम् ) उस वेद का प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि ( अनृत-व्याघात पुनरुक्तदोषेभ्य उसके वाक्यों में असत्, पूर्वापर विरोध, दो बार कहना इत्यादि दोष हैं। असत्य का उदहरण यथा 'पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेत' जिसे पुत्र की इच्छा हो पुत्रेष्टी यज्ञ करे परन्तु कहीं पुत्रेष्टि करने से भी पुत्र नहीं होता, जब कि इस प्रत्यक्ष वाक्य का प्रमाण नहीं तो 'अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः' स्वर्ग की कामना से अग्निहोत्र करे, ऐसा जो वेद में अदृष्टार्थ वाक्य है उसको ( प्रामाण्यम् ) सत्यता में कैसे विश्वास होवे? यहां ( तदप्रामाण्यम् ) इस सूत्र में 'तद्' पद से 'वेद' ही का ग्रहण है, इस रीति से वेद के अप्रमाण की आशंका करके ( अग्नि होत्रं ) इस ब्राह्मण वाक्य को अप्रमाण दिखलाते हैं।

यज्ञ का करना ब्राह्मणों में लिखा है। और पुत्रेष्टि करने से पुत्र नहीं होता' इस बात को लेकर वेद पर मिथ्या कलंक लगाया गया है। यदि ब्राह्मणों को वेद न माना जाता तो मिथ्या बोलने का कलंक केवल ब्राह्मणों पर ही लगता क्योंकि मंत्र भाग में कहीं पर पुत्रेष्टि, आदि यज्ञों की विधि नहीं लिखी। यहां वेद पर कलंक लगाया गया है इससे सिद्ध है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं। महर्षि

गौतम कृत न्याय दर्शन से ब्राह्मणों का वेद होना सिद्ध हो गया। अब आगे चलिये—

## महर्षि कणाद ।

**दृष्टानां दृष्टप्रयोजनानां,दृष्टाऽभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय ।**

वैशे० द० अ० १० आ० २ सू० ८

( दृष्टानाम् ) [ वेद में ] देखे हुये दृष्टप्रयोजनानां जिनका प्रयोजन इस लोक में ही दीखता है उनका तथा ( दृष्टाभावे ) जब दृष्ट ऐहिक फल न मिले तब भी ( प्रयोगः ) अनुष्ठान करना ( अभ्युदयाय ) पार लौकिक फल के लिये [ माननीय है ]

दृष्ट और अदृष्ट फल दोनों का ही विधान ब्राह्मण ग्रन्थों में है और इस सूत्र में दृष्टादृष्ट फल वेद में बतलाया गया है। अब मानना पड़ेगा कि महर्षि कणाद ब्राह्मणों को वेद मानते हैं।

## महर्षि वात्स्यायन ।

**वात्स्यायन भाष्यम्–पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेतेति नेष्टौ संस्थितायां पुत्रजन्म दृष्यते । दृष्टार्थस्य वाक्यस्य अनृतत्वाददृष्टार्थमपि वाक्यं अग्निहोत्रंजुहुयात्स्वर्गकाम इत्याद्यनृतमिति ज्ञायते ।**

वेद में लिखा है कि जिसको पुत्र की इच्छा हो वह पुत्रेष्टि नामक यज्ञ करे परन्तु उक्त यज्ञ करने पर भी बहुत मनुष्यों के पुत्र नहीं होता अतः सिद्ध हुआ कि जब प्रत्यक्ष फल में मिथ्यात्व है तो अदृष्ट फल जैसा कि 'अग्निहोत्र करने से स्वर्ग होता है' यह भी मिथ्या है।

जिस प्रकार न्याय दर्शन के कर्ता महर्षि गौतम ने न्याय सूत्र में ब्राह्मणों को वेद माना है उसी प्रकार न्याय दर्शन के भाष्यकार महर्षि वात्स्यायन ब्राह्मणों को वेद स्वीकार करते हैं।

## महर्षि व्यास ।

**श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् ।**

वेदान्त० द० अ० २ पा० १ सू० २७

ब्रह्म प्रत्यक्ष व अनुमान का विषय नहीं है, केवल शब्द मूल है अर्थात् शब्द ही प्रमाणक ( प्रमाणवान् ) है, मूल शब्द यहां प्रमाण वाचक है, शब्द ही प्रमाण

में साध्य होने से श्रुति से ब्रह्म का निरवयव होना व कारण होना सिद्ध है। जब श्रुति ( शब्द प्रमाण ) से सिद्ध है तो अन्य प्रत्यक्ष आदि के विरुद्ध होने से उसके कारण व कर्ता होने में शंका व दोष आरोपण करना युक्त नहीं है।

ब्रह्म सूत्र के आरम्भ से अन्त तक उपनिषदों की व्याख्या है। यहां पर उपनिषद् जो ब्राह्मणों का भाग है उसको वेद मान कर भगवान् व्यास जी ने इस सूत्र को रचा है इससे सिद्ध है कि उपनिषद् जो ब्राह्मण ग्रन्थों का भाग है वह वेद है ? वेदान्त के भाष्यकार भगवान् रामानुजाचार्य भगवान् बल्लभ, प्रभु निम्बार्क तथा माध्व और जगद्गुरु शंकराचार्य हैं, इन सभी आचार्यों ने उपनिषदों को वेद माना है।

अब कौन विवेकी पुरुष कह सकता है कि ब्राह्मण भाग वेद नहीं है और न मानने का कोई यत्न नहीं "मेरे घोड़े के तीन टांग" इसका कोई उपाय भी नहीं।

और देखिये—

## महर्षि बौधायन ।

**मंत्र ब्राह्मणमित्याहुः ।**

बौधायन० सूत्र

मंत्र और ब्राह्मण दोनों ही वेद है। हमको नहीं मालूम, बादी ने कात्यायनि सूत्र ब्राह्मणों को वेद कहता है ऐसा क्यों लिखा और इस बौधायन सूत्र को क्यों छिपाया।

## महर्षि आपस्तम्ब

**मंत्रब्राह्मणयोर्वेद नाम धेयम् ।**

मंत्र और ब्राह्मण दोनों का ही नाम वेद है।

ऊपर लिखे थोड़े से ऋषि हमने गिनवा दिये। इतने ही ऋषि ब्राह्मणों को वेद नहीं मानते किन्तु जितने ऋषि आज तक हुये हैं वे सब ही ब्राह्मणों को वेद मानते हैं। एक ऋषि का प्रमाण और देकर हम इस लेख को बन्द करेंगे।

## महर्षि मनु

**उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ।**
**सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥**

मनु जी का कथन है वेद में वचन मिलता है कि सूर्य के उदय और अनुदय काल में तथा सूर्य और नक्षत्रों के अदृश्य काल में भी हवन करना चाहिये ।

**'उदिते जुहोति' - 'अनुदिते जुहोति'**

ये सब श्रुतियां ब्राह्मण भाग की हैं और मनुजी ने इनको वैदिकी श्रुति कहा है अब पाठक ही बतलावें कि मनु ने ब्राह्मणों को वेद माना या नहीं ? क्या आनन्द की बात है कि समस्त ऋषियों ने ब्राह्मणों को जो वेद माना है वह तो तुम मानो मत किन्तु किसी एक भी ऋषि ने जिन ब्राह्मणों को पुराण नहीं माना वह तुम मान लो । धन्य है इस उपदेश को ?

ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं इस में पांचवां कारण यह बतलाया गया है कि ब्राह्मणों में इतिहास है इस कारण वे वेद नहीं ? इसके ऊपर हमारा कथन यह है कि मंत्रभाग में भी इतिहास है , तब तो मंत्र भाग भी इनकी दृष्टि में वेद न ठहरेगा ।

मंत्र भाग का इतिहास देखिये

**संमात पत्न्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।**
**मूषो न शिश्ना व्यदयन्ति माध्यः स्तोतारं**
**ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ।**

ऋ० अ० १ अ० ७ सू० १०५ मं०

**त्रितं कूपेऽवहितमेतत्सूक्तं प्रतिबभौ तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्र मृङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति त्रितस्तीर्णतमो मेधया बभूवापिवा संख्यानामेवाभिप्रैतं स्यादेकतो द्वितस्त्रित इति त्रयो बभूवुः ।**

यह निरुक्तकार का लेख है अर्थात् मुझको सौतों की समान चारों ओर से कुयें की ईंटें दुःख देती हैं और जैसे मूसे अन्नलिपित सूत्रों को काटते व खाते हैं तैसे ही हे इन्द्र ! तेरी स्तुति करने वाली मुझको कामनायें भक्षण कर रही हैं अर्थात् दुःख दे रही हैं । हे पृथ्वी आकाशाभिमानी देवताओ ! मेरे इस बचन का प्रयोजन जानो अर्थात् जिस कारण से मैं रो रहा हूँ इस अतिभयानक कूप से मेरा उद्धार करो । यह सूक्त कुयें में गिरे हुये त्रित को प्रकाशित हुआ । इस सूक्त में जो वाक्य है वह इतिहास मिश्र है जैसे "त्रितःकूपेऽवहितो देवा-

त्ववत् ऊचये इत्येवमादि" अर्थात् जैसे कुयें में पड़ा हुआ त्रित देवताओं की स्तुतियां करके आह्वान करता हुआ फिर वह इतिहास और गाथाबद्ध होता है। उस का नाम त्रित क्यों हुआ ? बुद्धि करके तीर्णतम अर्थात् अत्यंत तरने वाला हुआ, अथवा ये तीन भाई थे एकत, द्वित, त्रित, तीसरा होने से इसको त्रित कहते हैं।

मंत्र संहिता का एक इतिहास हमने पाठकों के आगे रख दिया, जो लोग इस के पक्ष पाती हैं ब्राह्मण ग्रंथ इस कारण वेद नहीं कि उनमें इतिहास है। अब वे क्या कहते होंगे ? क्या इतिहास बीच में पड़ने से पुस्तक वेद नहीं रहता ? यदि ऐसा है तब तो मंत्र भाग भी वेद नहीं रहेगा क्योंकि मंत्र भाग में इतिहास विद्यमान है और उसके ऊपर निरुक्त है, फिर पूर्व न्याय से मंत्र भाग वेद कैसे हो सकता है ? हमने यहां पर एक इतिहास दिखला दिया, किंतु मंत्र भाग में सैकड़ों इतिहास हैं। यदि इतिहास होने से ब्राह्मण वेद नहीं तो मंत्र भाग भी वेद नहीं। ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण नहीं हो सकते, पुराण तो ब्रह्मपुराण आदि अठारह ही पुस्तक रहेंगे। ब्राह्मण पुराण नहीं हैं इस के कारण नीचे दिखलाये जाते हैं।

(१) किसी भी ब्राह्मण के आरंभ या अन्त में पुराण शब्द नहीं है और न किसी काण्ड की समाप्ति पर ही पुराण शब्द है। जब उनमें पुराण का प्रयोग ही नहीं फिर उनको पुराण कैसे माना जावे ? इसके विरुद्ध अठारह पुराणों के प्रति स्कंध पर "इति श्री महापुराणे" लिखा है, आरंभ में पुराण, अन्त में पुराण, प्रत्येक अध्याय में पुराण।

( २ ) ब्राह्मणों में प्रायः याज्ञिक कर्मों का वर्णन है और याज्ञिक कर्म वेद का प्रधान अंग है। वेद का प्रधान अंग ब्राह्मणों में वर्णित है इस कारण ब्राह्मण-ग्रन्थ वेद हैं।

ब्राह्मणों का सम्बन्ध यज्ञ से है इसका प्रमाण नीचे देखिये—

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधाबद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यां आविवेश ॥

चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत उक्तास्त्रयोऽस्य पादा इति सवनानि त्रीणि द्वे शीर्षे प्रायणीयोदयनीये सप्त हस्तासः सप्त छन्दांसि त्रिधा बद्धस्त्रेधाबद्धो मंत्रब्राह्मणकल्पैर्वृषभो रोरवीति। रोरवण-

मस्य सवनक्रमेण ऋग्भिर्यजुर्भिः सामभिर्यदेनमृग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति । महोदेव इत्येष हि महान्देवो यद्यज्ञो मर्त्यां आविवेशेत्येषहि मनुष्यानाविशति यजनाय । तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनाय ।

चार वेद चार सींग हैं, तीन सवन ही तीन पाद हैं, प्रायणीय और उदयणीय ये दो शिर हैं, सात छन्द हाथ हैं, मंत्र—ब्राह्मण-कल्प इन तीन से बंधा, शब्द करता हुआ बैल महादेव नाम यज्ञ यजमान के लिये मनुष्यों में प्रवेश करता है।

उपरोक्त मंत्र और निरुक्त से यह सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों में यज्ञ कर्म का वर्णन है अतएव वे पुराण नहीं किन्तु वेद हैं क्योंकि यज्ञ को विधि वेदों में ही है।

( ३ ) वैदिक लोगों के यहां श्रौत और स्मार्त दो प्रकार के कर्म होते हैं, जिसमें वेद के मंत्र बोले जावें और वेद ही में जिसकी विधि मिले उस कर्म का नाम श्रौत कर्म है। मंत्र 'मंत्रसंहिता' से लिये जाते हैं और विधि 'ब्राह्मण' तथा 'श्रौतसूत्रों' से ली जाती है ऐसे कर्म का नाम श्रौतकर्म है। श्रौत का अर्थ है श्रुति नाम वेद का बतलाया कर्म। जब इनका बतलाया हुआ कर्म वैदिक कर्म कहलाता है तब ये पुराण नहीं किन्तु वेद हैं।

( ४ ) जितने ब्राह्मण हैं वे सब किसी न किसी वेद की शाखा के ब्राह्मण हैं। जैसे यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा का ब्राह्मण शतपथ है। जब ये शाखाओं के ब्राह्मण हैं तो फिर पुराण कैसे हो जावेंगे ? तब तो वेद ही रहेंगे।

( ५ ) ब्राह्मण ग्रन्थ ब्राह्मण भाग कहलाते हैं,भाग नाम एक हिस्से का है। जहां पर हिस्सा अर्थात् जुज होता है वहां पर हिस्से वाला भी होता है। तो वह ग्रन्थ कौन है कि ब्राह्मण ग्रन्थ जिसके भाग हैं ? ब्राह्मण समुदाय पुराण का भाग नहीं किन्तु वेद का भाग है अतएव ये पुराण नहीं है, वेद हैं।

( ६ ) जहां जहां पर पुराण का पाठ उद्धृत किया गया है वहां पर 'अमुक पुराण में है' ऐसा लिखा है और जिस ग्रन्थ में ब्राह्मणों का पाठ उद्धृत किया वहां श्रुति के नाम से याद किया गया है। यदि ये पुराण होते तो लिखा जाता कि यह शतपथ पुराण का वचन है किन्तु ऐसा कहीं नहीं मिलता अतएव ये पुराण नहीं।

( ७ ) किसी भी ऋषि ने इनके विषय में पुराण होने की सम्मति नहीं दी अतएव ये पुराण नहीं।

( ८ ) वेद के प्रादुर्भाव के साथ इनका प्रादुर्भाव हुआ है और प्रादुर्भाव विधायक प्रमाणों में ब्राह्मण पृथक् और पुराण पृथक् हैं अतएव ये पुराण नहीं। ब्राह्मण और पुराणों की पृथक्ता में हम गोपथ ब्राह्मण की श्रुति ऊपर दे आये हैं।

( ९ ) ब्राह्मण ग्रन्थ और पुराण इन दोनों के विषय में बड़ा अन्तर है। महर्षि वात्स्यायन ने 'समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः' न्याय दर्शन के इस सूत्र पर भाष्य करते हुये लिखा है कि 'यज्ञो मंत्रब्राह्मणस्य लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य' अर्थात् मंत्र ब्राह्मण का विषय यज्ञ है और पुराण इतिहास का विषय लोकवृत्त है। जो बात महर्षि वात्स्यायन ने लिखी है वास्तव में पुराणों में लोकवृत्त अधिक होता है जो ब्राह्मणों में बिल्कुल नहीं है, पुराणों का लक्षण लिखते हुये महर्षि व्यास जी ने वायु पुराण में एक श्लोक लिखा है वह यह है।

**सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।**
**वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम् ॥**

सर्ग ( तत्वों की रचना ) विसर्ग ( प्राणियों की रचना ) वंशों का वर्णन, मन्वन्तरों की कथा, वंशों के चरित्र ( कैरेक्टर ) ये पांच बातें जिसमें हों उसको पुराण कहते हैं।

वंश और मन्वन्तर तथा वंशानुचरित जो पुराणों का वर्णनीय विषय है ब्राह्मण ग्रन्थों में उसका सर्वथा अभाव है, फिर हम उनको पुराण कैसे मानलें। प्रोफेसर विलसन तथा वेबर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने जो पुराणों पर विचार किया है वह पांच लक्षणों को लेकर किया है, ये दोनों ही उस ग्रन्थ को पुराण मानते हैं कि जिसमें पांच लक्षण हों और सभी शास्त्र इस बात को कह रहे हैं कि पांच लक्षण जिसमें हों वह पुराण है फिर हम ब्राह्मणों को पुराण कैसे मानें ?

हमने अनेक प्रमाण इसके दिये हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं इस विषय में और भी सहस्रों प्रमाण इसकी पुष्टि में पाये जाते हैं किन्तु दयानन्द इन सैकड़ों प्रमाणों को छिपा ब्राह्मणों को पुराण बतलाते हैं क्या यह दयानन्द की चालबाजी नहीं है ?

आर्यसमाजियो ! तुम सच कहो स्वा० दयानन्द जी वेदों के रक्षक हैं या

भक्षक जो मार कूट-कचूमर निकाल वेदों को पुराण बतला रहे हैं ? संसार के आरम्भ दिन से सम्वत् १६२५ तक एक भी ऋषि-महर्षि-आचार्य-पण्डित संसार में ऐसा न हुआ जो ब्राह्मणों को पुराण लिखता। क्या ये सब मूर्ख थे ? एक दयानन्द जी ही ऐसे विद्वान् हुये जिन्होंने ब्राह्मण ग्रंथों को पुराण समझा ? जिस समय इस विषय पर शास्त्रार्थ होता है आर्यसमाजी स्पष्ट कहते हैं कि हम दयानन्द के लेख को बिल्कुल नहीं मानते। हम भी घुटे हुये हैं, उस समय प्रश्न कर बैठते हैं तो क्या तुम ईशामसीह के लेख को मानते हो ? स्वामी जी का यह अन्याय तुम्हारी इज्जतों को धूल में मिलाता रहेगा। तुम अब भी समझ जाओ, जिस दिन संसार को दयानन्द की इस चालाकी का पता लगेगा उस दिन आर्यसमाजी कुत्ते की भांति दुदकारे जावेंगे। तुम जानते हो यह लेख स्वामी जी ने क्यों लिखा ? इसके लिखने का अभिप्राय यह है कि हमारे आर्यसमाजी शिष्य वेद-शास्त्र की तरफ से तो कोरे मूर्ख रहते हैं वे हमारे जाल में फंस जावेंगे, वेदों को पुराण कह कर दूर फेंक देंगे और हमारे मनगढ़न्त,कपोल कल्पित सिद्धान्तों को वेद मानने लगेंगे। तुमको इस जाल में फांसने के लिये स्वा० दयानन्द जी ने अनोखी चालाकी की कबड्डी खेली है। तुम सच कहो वेद को पुराण बतलाना क्या यह स्वा० दयानन्द की चालाकी नहीं है ?

## मंत्रभाग का कतल

दयानन्द जी केवल ब्राह्मणों को ही अमान्य,अप्रामाणिक नहीं लिखते किंतु ये महात्मा तो मंत्रभाग को भी वेद नहीं मानते।

नं० (३६) आप ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में लिखते हैं कि "वेदों की ११२७ शाखा वेदों के व्याख्यान होने से परतः प्रमाण हैं"।

स्वामी जी की यह सफाई बड़े मजे की है इस को वेद के जानने वाले ही समझ सकते हैं। वर्तमान आर्यसमाजी जो वेद वेद रटते हैं ,जिन्होंने कभी भी वेद नहीं देखा वे स्वा० दयानन्द जी की इस चालबाजी को समझ नहीं सकते । चारों वेदों की ११३१ पुस्तकें हैं,इन से भिन्न एक अक्षर भी मंत्र भाग का नहीं है,इन ११३१ ग्रंथों को शाखा कहते हैं। इस के ऊपर महाभाष्य लिखता है कि

"बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः एक विंशतिधा बह्वृच्यं नवधाथर्वणो वेदः"।

वेद बहुत भागों में विभक्त है, यजुर्वेद की एक सौ एक और सामवेद की एक सहस्र एवं ऋग्वेद की इक्कीस और अथर्व वेद की नौ शाखा हैं।

स्वा० दयानन्द जी की चालबाजी का मजा यहां आता है (१) ११३१ शाखाओं में से आपने चार शाखाओं को तो असली वेद माना और ११२७ को शाखा (२) ये समस्त शाखायें ईश्वर के अवतार ब्रह्मा के द्वारा संसार में प्रकट हुई हैं इन में से स्वा० दयानन्द जी चार को तो ईश्वर कृत और ११२७ को ब्रह्मादि ऋषियों को बनाई लिखते हैं स्वामी की दोनों बातें सर्वथा असत्य हैं निराकार ने वेद का एक अक्षर भी नहीं बनाया, सभी वेद निराकार ईश्वर ने साकार ब्रह्मावतार बन कर कहे हैं फिर 'चार शाखा निराकार ने बनाईं, इस वेद नाशक चालबाजी को कोई कैसे सच्ची साबित करेगा (३) ब्रह्मा ऋषि आज तक कोई हुआ ही नहीं, जब ब्रह्मा ऋषि ही नहीं हुआ फिर उस के द्वारा शाखाओं का निर्माण मान लेना चालबाजी बना कर आर्यसमाजियों की आंखों में धूल झोंकना है (४) शाखाओं में वेद का व्याख्यान बतलाना सिद्ध करता है कि दयानन्द ने कभी शाखा आंख से नहीं देखी, यह चण्डूखाने की गप्प है कि शाखाओं में व्याख्यान है, कोई आर्यसमाजी किसी शाखा में वेद का व्याख्यान सिद्ध नहीं कर सकता।

जिन चार ग्रन्थों को दयानन्द असली वेद मानते हैं वे असली वेद नहीं हैं वरन् वे भी क्रम से शाकल, माध्यन्दिनी, कौथुमी, शौनकी शाखायें हैं। जिस को स्वा० दयानन्द जी यजुर्वेद कहते हैं वह यजुर्वेद की माध्यंदिनी शाखा और जिसको ऋग्वेद मानते हैं वह ऋग्वेद की शाकल शाखा तथा जिसको सामवेद लिखते हैं वह सामवेद की कौथुमी शाखा, इसी प्रकार जिसको अथर्व-वेद समझा दिया जाता है वह अथर्ववेद की शौनकी शाखा है। बहुत चालबाजी करी किन्तु चार शाखाओं को तो वेद मानना ही पड़ा। आर्यसमाजी यह कहदिया करते हैं कि ये शाखा तो अवश्य हैं किन्तु साथ ही साथ ये चारों संहिता भी हैं। हाय आर्यसमाजियो ? तुम्हारी तकदीर फूट गई, तुमको बार बार मूर्ख बनाकर चालाकियों में फांस लिया जाता है, तुम्हारे साथ में यह अन्याय हो रहा है इतने पर भी तुम कुछ नहीं समझते। जिस प्रकार ये चारो शाखायें शाखा रहने पर भी संहितायें हैं उसी प्रकार ११२७ शाखायें शाखा रहने पर भी संहितायें हैं। क्या तुम लोगों ने कभी यह भी नहीं सुना कि कृष्ण यजुर्वेद की शाखा तैत्तिरीय संहिता है। इसी प्रकार सब संहितायें और सब शाखायें हैं फिर क्या कारण है

कि ११२७ शाखाओं को दयानन्द जी प्रमाण नहीं मानते और चार को मानते हैं इसका कारण यही है कि स्वामी दयानन्द जी आगे चलकर घोर पाप, कठोर अन्याय करने वाले हैं वह यह कि वे कुछ नकली वेदमंत्र बनावेंगे। स्वामीजी की इच्छा यह है कि इस ईश्वरीय वेद में तो दियासलाई लग जाय और मेरे बनाये हुये वेद मंत्र कहलाने लगें इसलिये ये सब चालबाजियां हो रही हैं। इन चालबाजियों में फंसकर आर्यसमाजी अपनी इज्जत को दो कौड़ी में नीलाम कर रहे हैं।

एक दिन बालकृष्ण जी भट्ट और हमसे बंबई में 'ईश्वर स्वरूप' पर शास्त्रार्थ होने लगा। भट्ट जी ने सबसे प्रथम "अपाणिपादः" यह उपनिषद् की श्रुति पेश की और बतलाया कि ईश्वर निराकार है। हमने इसके उत्तर में कहा कि आर्यसमाज उपनिषद् को स्वतः प्रमाण नहीं मानती, आपने अपने पक्ष की पुष्टि में जो उपनिषद् का प्रमाण दिया है यह गलती खाई है, इस प्रमाण को वापिस लो और अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिये वेद का प्रमाण दो? भट्ट जी हंसे और हंसकर उन्होंने अपने पक्ष की पुष्टि में "सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्" यह मंत्र दिया। इसके उत्तर में हमने कहा कि यह प्रमाण यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा का है, शाखाओं को दयानन्द प्रमाण नहीं मानते इस कारण शाखाओं को छोड़ कर वेद का प्रमाण दो? इसके ऊपर बालकृष्ण जी ने कहा कि शाखाओं से भिन्न तो कहीं एक भी मंत्र नहीं मिलता, क्या शाखा और हैं और वेद और हैं? हमने कहा जी हां, देखो सत्यार्थप्रकाश उठाकर स्वामी जी शाखाओं को स्वतः प्रमाण वेद नहीं मानते? अन्त में भट्ट जी को कहना पड़ा कि यह दयानन्द जी की भूल है। इसके उत्तर में हमने कहा कि आप शास्त्रार्थ हार गये। चालीस वर्ष से यह झगड़ा चला हुआ है, आर्यसमाज कहती है कि दयानन्द जी ने जो लिखा वह वेदानुकूल और सत्य है, इसके उत्तर में हम कहते हैं कि दयानन्द का सब लेख वेद विरुद्ध और मिथ्या है। आज आपने दयानन्द के लेख को मिथ्या मान लिया बस आपका पराजय और हमारा विजय हो गया।

जब तक आर्यसमाज दयानन्द की चालबाजियों में फंसी रहेगी, ठोकरें खाती रहेगी और शास्त्रार्थ में हारती रहेगी इस कारण दयानन्द की चालबाजी एवं घोर पाप तथा अन्याय से आर्यसमाज को दूर होजाना चाहिये।

## चार शाखा

नं० (३७) दयानन्द और आर्यसमाजी इन चार शाखाओं को भी प्रमाण

नहीं मानते, इनके मंत्र आगे रख कर अर्थ मन माने करते हैं, न देवता का ख्याल करें, न प्रकरण को देखें जैसे जूते का अर्थ जलेबी और लकड़ी का अर्थ लड्डू हो ऐसे मनमाने फर्जी झूठे अर्थ करके चारों शाखाओं से ईसाई धर्म का मंडन करना यह दयानन्द का लक्ष्य है। यही लक्ष्य आर्यसमाजियों का है दयानन्द ने यजुर्वेद का भाष्य किया है, यजुर्वेद में जो कुछ भी वर्णन है उसको छिपा कर स्वामी जी ने समस्त यजुर्वेद से ईसाई पन सिद्ध किया है इस को देखने की कृपा करें।

'यजनाद्यजुः' यजुर्वेद में यजन यज्ञों का वर्णन है इसी से इसका नाम यजुर्वेद रक्खा गया है। शतपथ और कात्यायनि श्रौत सूत्र के क्रमानुसार यजुर्वेद के वर्णनीय विषय ये हैं (१) दर्श पूर्णमास इष्टि के मंत्र (२) दर्शपूर्णमास के मंत्र(३) आधान, अग्न्युपस्थान, चातुर्मास्य आदि के मंत्र (४) अग्निष्टोम में ऋत्विक् सहित यजमान के शालाप्रवेश से आरम्भ होकर क्रीत सोम, शाला प्रवेश के अन्त तक के मंत्र ( ५ ) सौमिक वेदि प्रधान में आतिथ्य से लेकर यूपनिर्माण तक के मंत्र ( ५ ) अग्नीषोमीयपशु प्रधान में यूप संस्कार से लेकर सोमाभिषव के अन्त तक के मंत्र ( ७ ) उपांशुग्रहादिसवनद्वय प्राप्त दक्षिणा दान तक के मंत्र ( ८ ) तृतीय सवन में प्राप्त सूर्यादि ग्रहों के मंत्र ( ९ ) बाजपेय और राजसूय यज्ञ के अंग के मंत्र ( १० ) अभिषेक के लिये जल ग्रहणादि राजसूय शेष चरक सौत्रामणी के मंत्र ( ११ ) अग्निचयन में उखा से लेकर समिदाधानान्त मंत्र ( १२ ) उखाधारणादि मंत्र ( १३ ) चितिपुष्कर पर्णाद्युपधान मंत्र ( १४ ) द्वितीय तृतीय चतुर्थ चिति मंत्र ( १५ ) पंचम चितिमंत्र और चयन मंत्र ( १६ ) रुद्रों का वर्णन और शतरुद्रियाख्य होम मंत्र (१७) चित्यपरिषेकादि जप पर्यन्त मंत्र ( १८ ) वसोर्धारादि मंत्र (१९) सौत्रामणी सम्बन्धी सुराग्रहीन्द्राभिषेकान्त और पितृयज्ञ मंत्र (२०) सैकायासन्दीद्यौत्रान्त मंत्र (२१) याज्यादि प्रैषण मंत्र (२२) आश्वमेधिक मंत्र ( २३ ) आश्वमेधिक आहुति के मंत्र ( २४ ) आश्वमेधिक पशुओं के देवता सम्बन्ध विधायक मंत्र ( २५ ) होम के मंत्र ( २६ ) खिलसंज्ञक मंत्र ( २७ ) पंचचितिक अग्नि के मंत्र ( २८ ) सौत्रामण्यंगभूत मंत्र ( २९ ) आश्वमेधिक अध्याय और शिष्टाश्वमेध मंत्र ( ३० ) पुरुषमेध के मंत्र ( ३१ ) पुरुष महत्व दर्शक औ सृष्टि विषयक मंत्र ( ३२ ) सर्वमेध के मंत्र ( ३३ ) सर्वमेध में सप्तदश पुरोरुग्गण मंत्र (३४) ब्रह्मयज्ञार्थक एवं शिवसंकल्पादि मंत्र ( ३५ ) पितृमेध सम्बन्धी मंत्र ( ३६ ) अश्वमेध

शान्तिपाठार्थ मन्त्र ( ३७ ) महावीर सम्बन्धी मन्त्र ( ३८ ) महावीर के उपक्रम में दुग्धादि समर्पण मन्त्र ( ३९ ) प्रायश्चित्तात्मक मन्त्र ( ४० ) ज्ञानकाण्ड के मन्त्र हैं।

ऊपर लिखी विषय सूची में यजुर्वेद के चालीस अध्याय का वर्णनीय विषय है। स्वामी जी ने अपने भाष्य में वेद के इन दर्श-पूर्णमास-इष्टि-रुद्रवर्णन-शत-रुद्रि--सौत्रामणी-बाजपेय-राजसूय-पुरुषमेध-सर्वमेध-अश्वमेध प्रभृति समस्त यज्ञों को यजुर्वेद से निकाल डाला। ऐसे विलक्षण अर्थ किये कि जैसे हाथी का अर्थ चूहा और शेर का अर्थ मच्छर। स्वा० दयानन्द के फर्जी अर्थ वाले गपोड़े वेद भाष्य को देख कर कोई भी विद्वान् आंसू बहाये बिना नहीं रहता। कहो आर्यसमाजियो! स्वामी ने चालबाजी से तुमको कैसा बेवकूफ बनाया? दिलीप, दशरथ, युधिष्ठिर, राम आदि राजाओं ने जो अश्वमेध और राजसूय यज्ञ की हैं वे कौन ग्रन्थ से कीं बाइबिल से या कुरान से? दयानन्द जी का भाष्य तो यह कह रहा है कि वेद में इन यज्ञों का नाम भी नहीं? फिर यज्ञ किन ग्रंथों से की गई? तुमको बतलाना पड़ेगा? शतपथ और कातीय-श्रौतसूत्र एवं निरुक्त जो वेदों में यज्ञ बतला रहे हैं क्या ये झूठे हैं और स्वा० दयानन्द जी सच्चे?

स्वामी जी के भाष्य में तो बिजली से मशीनें तैयार करनीं, तार और रेल, फौज तथा सेनापति, अध्यापक-अध्यापिका, उपदेशक-उपदेशिका, स्त्रियों की फौज, उल्लुओं का पालना ये विषय हैं, इस भाष्य को देख कर वेदतीर्थ पं० नरदेव जी शास्त्री आर्य इतिहास में लिखते हैं कि जो दयानन्द के भाष्य को देख लेगा उस मनुष्य को वेदों से घृणा हो जावेगी।

इन अनेक चालाकियों से स्वामी जी ने वेदों का सफाया किया है अब आप ही बतलावें कि वेद के शत्रु वेन, कालयवन, औरंगजेब हैं या स्वामी दयानन्द? दयानन्द जी वेद के जितने प्रबल शत्रु हैं उतना बड़ा सृष्टि के आरम्भ से आजतक कोई नहीं हुआ, कैसी युक्ति से वेद का सफाया किया है कि तुम वेद २ चिल्लाते ही रहो और वेद के दुश्मन बन ही जाओ। क्या कोई आर्यसमाजी दयानन्द की इन चालबाजियों को नेकनीति सिद्ध कर सकता है? आर्यसमाज ने लाखों रुपये गुरुकुल में बहा के यदि कोई पंडित तैयार किया हो तो लेखनी उठावे? आशा नहीं कि कोई लेखनी उठावेगा।

# धोखा

स्वामी जी धोखा देने में बड़े निपुण हैं, इनके लेखों में यदि कुछ निपुणता पाई जाती है तो वह धोखेबाजी की निपुणता है, धोखा देने में स्वामी जी इतने निपुण हैं कि आनन::फानन में रात का दिन और दिन की रात बनाते हैं। इनका कोई प्रधान सिद्धान्त है तो धोखा देना है। स्वामी जी चार प्रकार से धोखा देते हैं (१) अन्यथासिद्ध ( २ ) वेदानुकूलता ( ३ ) वेद निर्माण ( ४ ) आग्रह

( १ ) जब स्वामी जी को कुछ नहीं सूझता तब ये पहिले एक लेख लिख देते हैं कि "हमारा धर्म वेद है, वेद ने जिस कार्य के करने को कहा है उसको हम करते हैं और वेद ने जिसके छोड़ने को कहा है उसको हम छोड़ देते हैं" वेद का लोभ देकर स्वामी जी ऐसे कृत्य बतलाते हैं कि जिनका वेद से कोई सम्बन्ध ही नहीं-इसी का नाम "अन्यथा सिद्ध" है। (२) जब इससे भी कार्य नहीं चलता तब स्वामी जी वेदानुकूलता का झगड़ा लगा बैठते हैं, जिस प्रमाण को लेना हो उसको वेदानुकूल कह कर ग्रहण कर लेते हैं और जिस प्रमाण से आर्यसमाज मत की कुछ हानि हो उसको वेद विरुद्ध कह कर छोड़ देते हैं-यह इनकी "वेदानुकूलता" है। ( ३ ) दयानन्द जी अपना मत चलाने के लिये कुछ नवीन मन्त्र बना उनको इस प्रकार से लिखते हैं कि जिस लेख में पढ़नेवाले को यह ज्ञान हो कि ये मन्त्र वेद के हैं-इसका नाम 'वेदनिर्माण' है। ( ४ ) जब स्वामी जी हार जाते हैं तब हार को स्वीकार नहीं करते, यह कहने लगते हैं कि तुम्हारा कथन असम्भव है, जैसा तुम कहते हो ऐसा कभी हो ही नहीं सकता।

## अन्यथासिद्ध—ताजा वेद

सत्यार्थप्रकाश पृ० ७२ पं० १४ से स्वा० दयानन्द जी लिखते हैं कि (प्रश्न) क्या तुम्हारा मत है? (उत्तर) वेद अर्थात् जो जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा है उस उसका हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं जिसलिये वेद हमको मान्य है इसलिये हमारा मत वेद है ऐसा ही मान कर सब मनुष्यों को विशेष

कर आर्यों को ऐकमत्य होकर करना चाहिये'।

पाठकवृन्द ! स्वामी जी का लेख आपने देख लिया, इस लेख से सिद्ध है कि स्वामी जी जो कृत्य बतलावेंगे वे वैदिक होंगे किन्तु नीचे लिखे विषयों का जो स्वामी जी ने उपदेश किया है यह सर्वथा वेद विरोधी है,आप क्रम से देख कर विचार करें।

नं० (३८) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ६५ पं० ६ में लिखा है कि 'बच्चे को छः दिन तक माता और इसके बाद धायी दूध पिलावे'।

यह रिवाज योरुप के धनिक लोगों में प्रचलित है, वेद में इसका कहीं पता नहीं। यहां पर वेद का बहाना लेकर वैदिक लोगों को ईसाई बनाने का उद्योग किया है यदि ऐसी वेद विरुद्ध अनर्गल चालबाजियां स्वामी जी न करें तो फिर ये आर्यसमाजी ईसाई कैसे बनें ? इस प्रश्न पर नीमच, सोनकच्छ, गीदड़बाहा, बुढ़ानपुर प्रभृति सैकड़ों स्थानों में आर्यसमाजियों ने मुंह की खाई है। कहीं पर भी धायी के दूध पिलाने को वैदिक सिद्ध नहीं करसके तो भी स्वा० दयानन्द जी का लेख असत्य सिद्ध न हो जावे, कोई यह न जाने जावे कि वेद का बहाना लेकर स्वामी जी वैदिक लोगों को ईसाई बना रहे हैं। इस भय से धायी के दूध पिलाने को आज भी आर्यसमाजी वैदिक मानते हैं, ऐसे झूठे आर्यसमाजी नहीं मालूम किस तरीके से दूसरे मजहब वालों के सामने मुंह दिखलाने को तैयार हो जाते हैं। एक बार बोलिये आर्यसमाज की बेहयायी की जय।

स्वामी जी.महाराज हिन्दुओं के जाति बन्धन को तोड़ ईसाई बनाने के लिये एक नई बात लिखते हैं पढ़िये—

नं० (३९) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ८९ पं० ११ में लिखा है कि (प्रश्न) जो किसी के एक ही पुत्र वा पुत्री हो वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जाय तो उसके मां बाप की सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जायगा। इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये ? ( उत्तर ) न किसी की सेवा का भंग और न वंशच्छेदन होगा क्योंकि उनको अपने लड़के लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्या सभा और राज सभा की व्यवस्था से मिलेंगे।

इस लेख से स्वामी जी का अभिप्राय यह है कि यदि भंगी का लड़का

वेद का विद्वान् होकर उत्तम कर्म करे तो वह किसी ब्राह्मण को और ब्राह्मण का लड़का न पढ़ सके एवं श्रेष्ठ कर्म भी न करे तो वह राज सभा के द्वारा भंगी को दे दिया जावे। इससे लाभ यह होगा कि हिन्दुओं में जो जाति बन्धन है उसका नाश होजावेगा और हिन्दुओं में ईसाइयत सभ्यता का प्रचार होगा।

स्वामी जी इसको वेदाज्ञा बतलाते हैं, यद्यपि फरह, हरौली जुआरदार, कांगड़ा आदि स्थानों में इस विषय पर शास्त्रार्थ करके आर्यसमाजी हार चुके हैं और यह समझ गये हैं कि यह लड़कों का तबादला वेद के किसी मन्त्र में नहीं है, यह तो स्वा० दयानन्द जी को पी हुई भंग की तरंग की सूझ है तो भी आर्य-समाजी लोग इसको अभी तक जबर्दस्ती से वेदाज्ञा ही सिद्ध करने को तैयार बैठे हैं। एक दिन पं० बसन्तलाल जी ने कहा यह तो हम भी जानते हैं कि यह बात वेद के किसी मंत्र में नहीं है तो भी स्वामी जी का पक्ष लेना ही पड़ता है, यदि हम ऐसा न करें तो फिर स्वा० दयानन्द जी का लिखना गपोड़ा और 'सत्यार्थकाश' 'मिथ्यार्थप्रकाश' तथा हमारे सिद्धान्त वेद विरोधी सिद्ध हो जाते हैं उनकी रक्षा के लिये कुछ कहना ही पड़ता है।

इस बात को सभी आर्यसमाजी जानते हैं कि लड़कों का यह तबादला बिल्कुल वेद विरुद्ध है और वेद विरुद्ध होने के कारण आज तक किसी भी आर्य-समाजी ने कभी भी अपने किसी लड़के का तबादला नहीं किया तो भी नीमच के शास्त्रार्थ में बुद्धदेव धर्म-कर्म, दीन-ईमान को तिलांजलि दे इसको वेदाज्ञा सिद्ध करने के लिये तैयार हो गये।

पं० बुद्धदेव ने कहा कि 'अहं राष्ट्री संगमनी अथर्व ४। ६। ३०' के मंत्र में राजसभा खुद कहती है कि मैं जिसको चाहती हूँ उसको वैसा बना देती हूँ।

यहां पर बुद्धदेव ने शास्त्रार्थकर्ता और शास्त्रार्थ श्रोताओं को धोखा दिया है। आर्यसमाज वेद शास्त्र को लेकर कभी विजय नहीं कर सकती केवल चालाकी और धोखादेही से काम लेती है इसी नियम से बुद्धदेव ने भी यहां पर धोखा-देही से ही काम लिया है। अब हम उन समस्त मंत्रों को पाठकों के आगे रखते हैं जो वागाम्भृणी सूक्त के मंत्र ऋग्वेद और अथर्ववेद में हैं।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यह-
मादित्यैरुत विश्वदेवैः।

अहं मित्रावरुणोभा विभर्म्यहं-
मिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥
अहं सोममाहनसं विभर्म्यहं-
त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते-
सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥ २ ॥
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां-
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा-
भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ ३ ॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि-
जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि-
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥४॥
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति-
यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मान्त उपक्षियन्ति-
श्रुधि श्रुतं श्रद्धिवं ते वदामि ॥ ५ ॥
अहं रुद्राय धनुरातनोमि-
ब्रह्मद्विषे शरवे हन्त वा ऊं।
अहं जनाय समदं कृणो-
म्यहं द्यावी पृथिवी आविवेश ॥ ६ ॥

ऋ० अष्ट० ८ मं० १० अ० १० सू० १२५

इन मंत्रों का वागाम्भृणी ऋषि और वागाम्भृणी शक्ति ही देवता है। जब इन मंत्रों का देवता वागाम्भृणी-ईश्वर शक्ति 'दुर्गा' देवता है तब फिर इनमें

राज सभा का वर्णन कैसे कूद बैठेगा ? जो देवता होता है वही तो मंत्र का वर्णनीय विषय होता है ? इन छः मंत्रों का देवता 'दुर्गा' है अतएव मंत्रों में दुर्गा का ही वर्णन रहेगा। अर्थ यह है।

मैं रुद्रदेव और आठ वसुओं के साथ विचरती हूँ, मैं बारह आदित्यों के साथ विचरती हूँ और विश्वे देवताओं के साथ भी विचरती हूँ, मैं मित्र देवता और वरुण देवता को धारण करती हूँ,मैं इन्द्र और अग्नि देवता को मैं ही दोनों अश्विनी कुमारों को धारण करती हूँ।१। मैं सब तरफ से मारने वाले सोम देवता का पोषण करती हूँ मैं ही त्वष्टा और पूषा एवं भग देवता को धारण करती हूँ, धन को हविषवाले सुन्दर प्राप्त करते हुये यजमान को सोम निकालते हुये को।२। मैं ईश्वरी मिलने वाली ज्ञान वाली पहिली अर्थात् मुख्य यजनीय देवताओं में अनेक तरह से स्थिर होने वाली अनेक तरह से सब ओर से प्रवेश कराती हुई हूँ तिस मुझको देवलो अनेक जगह विधान करते हैं।३। मैं ही आप यह कहती हूँ सेवित है देवता और मनुष्यों से, जिसको मैं चाहती हूँ उस उसको उत्तम बढ़िया बना उसको ब्रह्मा, उसको ऋषि, उसको मेधावी बनाती हूँ।४। मेरी सहायता से वह अन्न को खाता है, जो देखता है, जो स्वास लेता है और सुनता है कहे हुये को नहीं मानते हुये मुझको वे नष्ट हो जाते हैं या मेरी दी हुई शक्तियों से रहित हो जाते हैं। सुन सखे श्रद्धा और यत्न से प्राप्त होने वाले बचन को तुझसे कहती हूँ।५। मैं रुद्र के धनुष को विस्तृत करती हूँ, ब्राह्मण के बैरी के लिये,हिंसक के मारने के लिये और मैं ही जन के लिये मदयुक्त करती हूँ मैं ही आकाश पाताल में व्याप्त हो रही हूँ।६।

पं० बुद्धदेव ने वेद मन्त्रों के असली अभिप्राय को दबाकर जनता को धोखा देना चाहा किन्तु जब यह सवाल किया गया कि इस मन्त्रका देवता कौन है ? तब बुद्धदेव गिर गये और शास्त्रार्थ में उनका पराजय हो गया। भाव यह है कि वेद में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं जिसमें लड़के बदलने की आज्ञा हो तो भी स्वामी जी की इज्जत बचाने के लिये आर्यसमाजी संसार को धोखा दे झूठ बात को सत्य सिद्ध करने को तैयार हो जाते हैं किन्तु आज तक एक भी आर्यसमाजी ऐसा पैदा नहीं हुआ और न आगे को हो सकता है जो लड़कों का बदलना वेदाज्ञा सिद्ध कर दे ? ऐसी दशा में यह मानना पड़ेगा कि

स्वा० दयानन्द जी वेद का धोखा देकर हिन्दुओं को ईसाई बनाने का काम कर रहे हैं ।

नं० ( ४० ) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ६० पं० ३ में लिखा है कि "जब एक वर्ष वा छः महीने ब्रह्मचर्याश्रम और विद्यापूरी होने में शेष रहें तब उन कन्या और कुमारों का प्रतिबिम्ब अर्थात् जिसको फोटोग्राफ कहते हैं अथवा प्रतिकृति उतार के कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों की, कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं की प्रतिकृति भेज देवें, जिस जिस का रूप मिल जाय उस उसके इतिहास अर्थात् जो जन्म से लेके उस दिन पर्यन्त जन्म चरित्र का पुस्तक हो उनको अध्यापक लोग मंगवा के देखें जब दोनों के गुण;कर्म;स्वभाव सदृश हों तब जिस जिसके साथ जिस जिस का विवाह होना योग्य समझें उस उस पुरुष और कन्या का प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वरके हाथ में देवें"।

यह प्रणाली ईसाई जाति की है किन्तु स्वामी जी इसको हिन्दुओं में चलाना चाहते हैं इस कारण से इसको वेद की आज्ञा मानते हैं चारों वेदों में से एक भी मन्त्र ऐसा नहीं कि जिसमें फोटू और जीवन चरित्र से विवाह होना लिखा हो । वेद में न होने पर भी आर्यसमाजी संसार को धोखा देने के लिये यही कहते रहते हैं कि यह सब वेद में है, इस प्रकार जबर्दस्ती से किसी मिथ्या कल्पना को वेद के मत्थे मढ़ना पाप है किन्तु पाप, पुण्य वह समझा करता है जो किसी धर्म को मानता हो ? जब आर्यसमाजियों का कोई धर्म ही नहीं फिर धोखा क्यों न दें ? संसार को धोखा देकर नास्तिक बनाने वाले आर्यसमाजियों के इस कर्तव्य को वेदज्ञ समुदाय अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखता है ।

नं० (४१) सत्यार्थप्रकाश समु० १० पृ० २६३ पं० ६ में लिखा है कि "इस विधि के पश्चात् केवल शिखा को रख के अन्य दाढ़ी मूछ और शिर के बाल सदा मुंड़वाते रहना चाहिये अर्थात् पुनः कभी न रखना शीतप्रधान देश हो तो कामचार है चाहे जितने केश रक्खे और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है"।

यवन साम्राज्य में सहस्रों हिन्दुओं ने जान दे दी किन्तु चुटिया न दी,

इतिहास इसका साक्षी है। कवियों ने तो यहाँ तक लिख डाला कि "हिन्दुओं की रोटी बेटी चोटी को बचाय लीन्हों शिवा जी न होते तो सुन्नत होत सबकी" किन्तु स्वामी जी हिन्दुओं को ईसाई बनाने के प्रयोजन से गर्म देश में शिखा का कटवाना भी लिखते हैं और फिर उसको वैदिक धर्म बतलाते हैं यह स्वामी जी की चोरी और सीनाजोरी है। दयानन्द जी के लेख की पोल न खुल जावे इस कारण आर्यसमाजी धर्म को तिलांजलि देकर शिखा कटवाने को वेदाज्ञा मानते हैं किन्तु जब शास्त्रार्थ में शिखा कटवाने का वेद मन्त्र मांगा जाता है तब आर्यसमाजियों की नानी मरजाती है। हमको नहीं मालूम स्वा० दयानन्द जी के मिथ्या गपोड़ों को वैदिक सिद्ध करने के लिये आर्यसमाज क्यों बेहयायी का जामा पहिनती है।

नं० ( ४२ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ७७ पं० १० में लिखा है कि 'सोलहवें वर्ष से लेके चौबीसवें वर्षतक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से ले के अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है"।

ईसाई लोगों के यहां विवाह बड़ी उम्र में होता है इस कारण से स्वा० दयानन्द जी को भी वेद में विवाह मिला-क्या मजा है, ईसाइयों का समस्त व्यवहार वेद के मन्त्रों में लिखा है। स्वा० दयानन्द जी की इन वेदाज्ञाओं को पढ़ कर प्रत्येक मनुष्य यह समझ जाता है कि स्वामी जी वेद के बहाने से वैदिकों को ईसाई बनाते हैं किन्तु आर्यसमाजी इतने मिथ्यावादी और दुराग्रही हैं कि ये अब भी इस बड़ी उम्र के विवाह को वेदाज्ञा ही कहते जाते हैं। वास्तव में जो मनुष्य धर्म को एक दम तिलांजलि दे देता है फिर वह कुकर्म, अकर्म सभी कर सकता है। आर्यसमाजियों का संसार में कोई धर्म नहीं रहा इस कारण ये लोग मिथ्या बोलने, चालाकी करने, संसार को धोखे में फांसने को ही अपना कर्तव्य समझ बैठे किन्तु आर्यसमाज ने कोई ऐसा मनुष्य आज तक पैदा नही किया जो स्वा०दयानन्द के इन गपोड़ों को वैदिक सिद्ध कर देता तो भी इनकी दृष्टि में स्वा० दयानन्द जी का सब लेख वेद मन्त्रों का अनुवाद है इस हठ का किसी के भी पास जवाब नहीं।

नं० ( ४३ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ६७ पं० ७ में लिखा है कि 'पितृयज्ञ के दो भेद हैं एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् श्रत् सत्य का नाम 'श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा-श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्' जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उसकोश्राद्ध और जो श्रद्धा से कर्म किया

जाय उसका नाम श्राद्ध है और 'तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत्तर्पणम्' जिस जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यामान माता पितादि::पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायं उसका नाम तर्पण है परन्तु यह जीवितों के लिये है मृतकों के लिये नहीं'।

ईसाइयों के यहां मृतक पितरों का श्राद्ध नहीं होता इस कारण स्वामी दयानन्द जी वेद के पांच सौ मंत्रों में कहे हुये मृतक पितृ श्राद्ध का निषेध लिख जीवित माता पिता की सेवा करने को श्राद्ध बतलाते हैं। यदि वेद टटोला जावे तो उस में कहीं पर भी जीवित माता पिता का श्राद्ध करना नहीं लिखा तो भी आर्यसमाजी जीवित माता पिता के श्राद्ध को वैदिक मानते हैं, सच पूछिये तो आर्यसमाजी कहने और लिखने पढ़ने में स्वा० दयानन्द जी के जितने अन्ध भक्त हैं इतना अंध भक्त संसार के किसी मजहब में कोई मनुष्य पाया नहीं जाता । यदि स्वामी जी यह लिख देते कि खड़े होकर लघुशंका करना वेद की आज्ञा है,तो इस लेख को देख कर आर्यसमाजी वेद को न टटोल उस को वेदाज्ञा मान ही लेते ? यह बात दूसरी है कि आर्यसमाज का प्रत्येक मनुष्य झूठ के जोर पर संसार को धोखे में डालता है किंतु जिस समय आर्यसमाजियों के आगे यह प्रश्न रख दिया जाता है कि जीवित माता पिता के श्राद्ध की आज्ञा देने वाला वेद मंत्र बतलाओ, ? इस को सुनते ही आर्यसमाजी घुड़दौड़ का अवलम्बन लेते हैं। सच बात तो यह है कि दयानन्द के बनाये हुये मिथ्या जाल को कोई कैसे बचावेगा ? इसका तो भंडाफोड़ होना ही है।

नं० (४४) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ०८० पं० ४ में लिखा है कि "लड़का लड़की के आधीन विवाह होना उत्तम है"।

ईसाई संसार में वर कन्या अपने आप विवाह करते हैं अर्थात् योरुप आदि देशों में विवाह वर कन्या के आधीन है इसी कारण से स्वा० दयानन्द जी को वेद में मिल गया कि वर कन्या के आधीन विवाह उत्तम है। समस्त आर्यसमाजी इस बात को जानते हैं कि स्वामी जी हिन्दू व्यवहारों को हटा कर हिन्दुओं में ईसाई व्यवहार लाना चाहते हैं तो भी लज्जा जाने के भय से वर कन्या के स्वाधीन विवाह को वैदिक मानते हैं। खुशी की बात है कि नीमच के शास्त्रार्थ होने के समय से बुद्धदेव और रामचन्द्र सुनार देहलवी यह

साफ कहने और लिखने लग गये कि हम सत्यार्थप्रकाश को बिल्कुल ही नहीं मानते। है यह उनकी चालबाजी, नित्य तो, सत्यार्थप्रकाश और स्वा० दयानन्द जी की प्रशंसा के पुल बांधते हैं किन्तु जब शास्त्रार्थ का समय आता है तब कहते हैं कि न तो हम स्वामी जी को मानें और न ही 'सत्यार्थप्रकाश' को मानें-इस चाल-बाजी का भी कहीं ठिकाना है कि जो घंटा घंटा पर गिरगिट कैसा रंग बदल देते हैं। इन दोनों को अनुभव हो गया कि स्वा० दयानन्द जी के गपोड़ों का जवाब देने वाला मनुष्य न कोई पैदा हुआ और न आगे को हो सकता है इसको लक्ष्य रखकर दोनों उपदेशक दयानन्द के लेखको अप्रामाणिक और अनर्गल समझ उसके मानने से इन्कार करते हैं।

चालीस वर्ष से यह झगड़ा चल रहा था, आर्यसमाज कहती थी कि स्वा० दयानन्द जी वेदज्ञाता, परिब्राजक, महर्षि और आप्त हैं अतएव उनका समस्त लेख वेदानुकूल और प्रामाणिक है। सनातन धर्म कहता था कि स्वा० दयानन्द जी न वेदज्ञाता थे और न ही अप्त तथा महर्षि थे, उन्होंने जितने भी लेख लिखे हैं वे सब अज्ञान से भरे हुये, सर्वथा वेद विरुद्ध, प्रमत्त, उन्मत्त मनुष्यों के लेख की भांति हैं अतएव वे अमान्य हैं। बड़ी खुशी की बात है कि यह झगड़ा चालीस वर्ष चल कर ३० जून सन् २६ को समाप्त हो गया। ३० जून सन् २६ से पं० बुद्धदेव तथा महाशय रामचन्द्र जी दयानन्द के लेख मानने से इन्कार कर गये तो भी कोयरी चौधरी 'नीचे पड़े की ऊंची टांग' रखना चाहते हैं, वे आज भी तैयार हैं कि हम वेद से दिखला देंगे कि विवाह कन्या वर के आधीन ही वेद ने कहा है। हमारी समझ में ये मूर्ख महाशय प्रलय के बाद इस बात को दिखलावेंगे, प्रलय तक तो दिखला ही नहीं सकते। कहो आर्यसमाजियो! स्वा० दयानन्द जी ने जो तुमको कर्तव्य बतलाये वे वैदिक हैं या अवैदिक?

नं० (४५) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ६३ पं० २५ में लिखा है कि 'दिन रात में जब जब प्रथम मिलें वा पृथक् हों तब तब प्रीतिपूर्वक नमस्ते एक दूसरे से करें।

ईसाई जाति में एकसा व्यवहार है छोटा बड़े को और बड़ा छोटे को दिन में गुड-मौर्निंग और रात को गुडनाइट करता है। स्वा० दयानन्द जी की दृष्टि इस पर पहुँची कि हिन्दुओं के यहां तो ऐसा नहीं, उनके यहां तो मनु ने गजब कर डाला, लिख दिया कि छोटा बड़े को अभिवादन और बड़ा छोटे को प्रत्यभिवादन करे अर्थात्

छोटा प्रणाम करे और बड़ा आशीर्वाद दे। मनु ने इसको साधारण प्रणाली से नहीं लिखा वरन् सात श्लोकों में समाप्त किया ऐसा करने से हिन्दू-ईसाइयों का ऐक्य न हो सकेगा, इस ऐक्यता के लिये स्वा० जी ने परस्पर में नमस्ते करना लिखा। क्या कोई आर्यसमाजी संसार में ऐसा पैदा हुआ है जो वेद से परस्पर में नमस्ते करना सिद्ध कर दे ? आज तक न कोई हुआ है और न हो सकता है फिर दयानन्द के झूठे गपोड़े को कोई कहां तक वैदिक बनावे ?

जब नमस्ते पर शास्त्रार्थ आरम्भ होता है तब आर्यसमाजी 'नमस्ते रुद्र मन्यव' इत्यादि उन मंत्रों को प्रमाण में रखते हैं जिनमें 'नमस्ते' पद आया है। जब सनातनधर्मी इसके उत्तर में यह सिद्ध कर देते हैं कि नमस्ते करना केवल ईश्वर के लिये है और ईश्वर भी नमस्ते के उत्तर में नमस्ते नहीं करता, ईश्वर को छोड़ परस्पर में नमस्ते करना किसी वेद मंत्र में नहीं लिखा इतना सुनते ही आर्यसमाजियों के चेहरे पर मुर्दनी छा जाती है लाचार होकर एक दौड़ 'नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च १६ । ३२' पर लगाते हैं, और सिद्ध करते हैं कि इस मंत्र में परस्पर में नमस्ते करना लिखा है। प्रथम तो इस मंत्र में समष्टि व्यष्टि रूप परमात्मा को नमस्कार किया है और दुर्जन तोष न्याय से थोड़ी देर के लिये स्वा० दयानन्द का ही अर्थ मान लें तो भी परस्पर में नमस्ते करना सिद्ध नहीं होता क्योंकि स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ यह किया है कि बड़ों को अन्न दो और उनका सत्कार करो और छोटों को अन्न दो और उनका सत्कार करो फिर नमस्ते करना कहां से आगया ? दूसरे इस मंत्र में तो केवल 'नमः' है नमस्ते तो नहीं। 'नमः' पद को लेकर नमस्ते का धोखा देना यह आर्यसमाजियों का धर्म विवेचन है। तीसरे जहां कहीं नमस्ते किया है करने वाले को ईश्वर समझ किया गया है जिसको नमस्ते किया गया है उसने लौटकर नमस्ते नहीं कहा फिर परस्पर में नमस्ते करना क्या वेदों का गला घोटना नहीं है ? शास्त्रार्थ में इस विवेचना को सुन आर्यसमाजियों का मुंह खेल करने वाली बन्दरिया के समान हो जाता है इतने पर भी आर्यसमाजी लोग यही कहते रहते हैं कि नमस्ते करना वेद में लिखा है, इस झूठे धोखा देने का अभिप्राय इतना ही है कि किसी प्रकार हिन्दुओं में प्रचलित छुटाई बड़ाई की प्रणाली का नाश होकर ईसाई पद्धति का प्रचार हो।

नं० (४६) सत्यार्थप्रकाश समु०८ पृ० २२५ पं०२६ में लिखा है कि मनुष्यों की प्रथम सृष्टि तिब्बत में हुई'।

ठीक है, नहीं मालूम वेद हिन्दुओं का धर्म पुस्तक है या ईसाइयों का ? हम तो यही सुनते थे कि वेद हिन्दुओं का धर्म पुस्तक है किन्तु आज स्वा० दयानन्दजी के लेख से यह जाना गया कि वेद में हिन्दुओं का एक भी सिद्धान्त नहीं लिखा वरन् ईसाइयों के समस्त सिद्धान्तों को वेद ने अच्छी तरह वर्णन किया है। ईसाई कहते हैं कि प्रथम सृष्टि तिब्बत में उत्पन्न हुई, स्वा० दयानन्द जी इसको वेद से सिद्ध करते हैं इस प्रकार का चक्कर देकर स्वा० दयानन्द जी वैदिक धर्मियों को ईसाई बनाना चाहते हैं।

क्या इस बात को आर्यसमाजी नहीं जानते ? आर्यसमाजी खूब जानते हैं कि 'त्रिविष्टप' नाम तिब्बत का नहीं वरन् स्वर्ग का है इतना जानकर भी 'त्रिविष्टप' का अर्थ तिब्बत मान लेते हैं इसका कारण यह है कि ऐसा जो न मानोगे तो फिर हिन्दू लोग वेद को तिलांजलि देकर ईसाई न बन सकेंगे। हिन्दू ईसाई बन जायं इस लोभ से स्वा० दयानन्द जी की अनर्गल बातों को आर्यसमाजी वैदिक धर्म मानते हैं।

यदि ऐसा नहीं तो वह कौन आर्यसमाजी है जिसने अपनी जननी का [illegible]या हो और वह यह सिद्ध करके दिखलावे कि 'त्रिविष्टप' का अर्थ तिब्बत अ[illegible]कोश-पुराण-धर्मशास्त्र-वेद-ब्राह्मण में लिखा है ? इसके लिये तो सभी आर्य-समाजियों के मुंह बन्द हो जाते हैं, जबान नहीं खुलती, लेखनी नहीं उठती तो भी त्रिविष्टप को तिब्बत बतला संसार की आंख से धूल झोकना आर्यसमाजियों का परमधर्म है।

अमरकोश में।

**स्वर्लोको द्यौदिवौ द्वे स्त्रियां क्लीवे त्रिविष्टपम्।**

त्रिविष्टप नाम स्वर्ग का है। इसी प्रकार वाचस्पत्याभिधान-शब्द कल्पद्रुम प्रभृति जितने कोशों में त्रिविष्टप शब्द आया है उन सबने इसका अर्थ स्वर्ग किया है किन्तु स्वा० दयानन्द जी ने गाड़ी का अर्थ गन्ना जितना असंभव है उतना ही असंभव त्रिविष्टप का अर्थ तिब्बत इस लिये किया कि ईसाइयों का बतलाया प्रथम सृष्ट्युत्पत्ति का देश तिब्बत सिद्ध हो जावे। आर्यसमाजियो! तुम स्वा० दयानन्द के गपोड़ों को वैदिक सिद्ध तो करते हो किन्तु किसी दिन शिर पकड़ कर रोओगे अतएव अब भी संभल जाओ ? आप समझाने पर भी नहीं समझें तो फिर हमारा क्या दोष ?

नं० ( ४७ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ८ पृ० २३१ पं० ४ में लिखा है कि पृथ्वी घूमती है।

अब तो स्वामी जी वेदों के पीछे पड़ गये। जब तक ईसाइयों के समस्त सिद्धान्त वैदिक न बना देंगे तब तक दम न लेंगे ? कहो आर्यसमाजियो! कैसी रही, वेद धर्म पुस्तक तुम्हारा और उसमें सिद्धान्त ईसाइयों के ? अब बतलाओ कि तुम वैदिक हो या ईसाई ? अथवा ईसाई धर्म ही वैदिक धर्म है, इसमें तुम्हारी क्या राय है ? क्या कोई आर्यसमाजी पृथ्वी का घूमना वेद से सिद्ध कर सकता है ? इस विषय पर जब शास्त्रार्थ आजावे तब तो आर्यसमाजियों का मुंह काला हो जाता है और वैसे कोई पूछे तो फौरन कह देतेहैं कि हां वेद में पृथ्वी का घूमना लिखा है।

स्वामी जी एक वेद मंत्र का गला घोट, देवता मिटा, मंत्र के दो टुकड़े कर लिखते हैं कि—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुनः।

पितरं च प्रयन्त्स्वः।

यजु० ३। ६

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है इस लिये भूमि घूमा करती है।

स्वामी जी वेद का कचूमर निकाल कर ईसाई सिद्धान्तों को वैदिक सिद्धांत बनाते हैं।

( १ ) इस मंत्र का सर्पराज्ञी, कद्रु ऋषि, गायत्री छन्द, अग्नि देवता है। वेदों का यह नियम है कि जो जिस मन्त्र का देवता होता है उस मन्त्र में उसी विषय का वर्णन होता है। जब इसकाअग्नि देवता है तो पृथ्वी परक अर्थ किस प्रकार हो जावेगा,ऐसा कभी हो ही नहीं सकता किन्तु इस वेदज्ञ महाशय ने यह समझा कि मन्त्र में उसके देवता का वर्णन होता है इसको तो संस्कृत ज्ञाता ही समझेंगे, संस्कृत से जो अनभिज्ञ हैं वे इस बात को न समझ कर हमारी बात को सत्य-मान लेंगे। सच है, पक्षपात बड़े २ अनर्थ करवा देता है, शोक इस बात का है कि ईसाइयों के सिद्धान्त की पुष्टि करने के लिये हिन्दू ही वेद का गला घोटते हैं।

( २ ) इस मन्त्र के अर्थ में "मातरम्-पितरम्-पुनः" आदि कई एक शब्द

बिल्कुल हो छोड़ दिये उनका अर्थ ही नहीं किया। जिस अर्थ में मन्त्र के शब्द ही छूट जांय क्या कभी वह अर्थ भी सत्य हो सकता है? हमको नहीं मालूम ऐसे अर्थ को कोई कैसे सच मान लेगा।

( ३ ) यदि हम इस मन्त्र के अर्थ को किसी विद्वान् के सामने रखदें तो कोई भी विद्वान् यह नहीं कहेगा कि इस मंत्र का यही अर्थ है जो इसके भाषा-टीका में लिखा है। हम इस बात की बहस नहीं करते कि इस मन्त्र में पृथ्वी का वर्णन है या अग्नि का। हमको तो इतना विचार करना है कि मन्त्र के नीचे टीका-रूप जो भाषा लिखी है वह इस मन्त्र का अर्थ है या नहीं। इस निर्णय में लाचार होकर सभी मनुष्यों को कहना पड़ेगा कि भाषा में वेदमन्त्र का अर्थ ही नहीं आया। यह तो वही बात हुई कि किसी मनुष्य ने पूछा 'लोटे' का क्या अर्थ, जिससे पूछा गया उसने उत्तर दिया कि लोटे के माने 'जूता' है। शोक के साथ लिखना पड़ता है कि ऐसे अर्थ करने वाले को भी हिन्दू वेद भाष्यकार मान लेते हैं।

वेद मन्त्र का ठीक अर्थ देखिये ( आयम् ) इस ( गौः ) यज्ञ सिद्धि के अर्थ यजमान के घर आने जाने वाले ( पृश्नि ) श्वेतरक्त आदि बहु प्रकार की ज्वालाओं से युक्त अग्नि ने ( आ ) सब ओर से आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणाग्नि के स्थानों में ( अक्रमीत् ) अतिक्रमण किया ( पुरः ) पूर्व दिशा में ( मातरम् ) पृथ्वी को ( असदत् ) प्राप्त किया ( च ) और ( स्वः ) सूर्यरूप होकर ( प्रयन् ) स्वर्ग में चलते अग्नि ने ( पितरम् ) स्वर्गलोक को ( असदत् ) प्राप्त किया। सिद्ध हो गया कि इस मन्त्र में भूभ्रमण † नहीं है किन्तु मन्त्र का धोखा देकर बलात्कार भूभ्रमण बतलाया जाता है।

निघंटु ने पृथ्वी को 'निर्ऋति' लिखा है। निर्ऋति का अर्थ है गमन-रहित ( चालशून्य ) यदि पृथ्वी चलती होती तो निघंटु इसको निर्ऋति कैसे लिखता।

इन बातों को लिखे पढ़े ही मनुष्य जानते हैं। आर्यसमाज में कोई भी मनुष्य वेद नहीं पढ़ा अतएव इनकी दृष्टि में तो स्वामी जी जिसको वैदिक धर्म लिखदेंगे उसी को वैदिक धर्म मानना होगा। यदि आगे को भी आर्यसमाजी इसी प्रकार वेद-ज्ञान से वंचित रहे तो फिर वर्तमान समय की भांति हठ-झूठ-धोखा देना यही

† पुराणवर्म का भूभ्रमण विचार देखो।

इनका वेद होगा और इनको स्वा०दयानन्द के पंजे में पड़ ईसाई होजाना होगा। हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि प्रभो ! आप आर्यसमाजियों को विद्वान् बनाकर दयानन्द के पंजे से बचावें।

## निष्कर्ष

पहिले स्वा० दयानन्द जी ने संसार को यह लोभ दिया कि हमारा मत वेद है। जब वेदविज्ञानशून्य कुछ मूर्ख हिन्दु दयानन्द के इस जाल में फंस आर्य-समाजी बन गये तब स्वामी जी ने वेद विज्ञान में ईसाई धर्म के सिद्धान्त आर्य-समाजियों के आगे रख दिये और यह समझा दिया कि ये सिद्धान्त वेद के हैं इनको करो और मानो। आर्यसमाजी वेद को जानते नहीं थे इस कारण दयानन्द के लेख को सत्यमान वे समझ बैठे कि ( १ ) बच्चे को धायी से दूध पिलाना (२) ब्राह्मण-भंगी का परस्पर में पुत्र बदलना (३) फोटू और जीवन चरित्र के ऊपर से लड़का लड़कियों का विवाह करना ( ४ ) गर्म देश में चुटिया कटवाना ( ५ ) सोलहवें वर्ष से लेकर चौबीसवें वर्ष तक कन्या का और पच्चीस वर्ष से लेकर अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह काल बतलाना ( ६ ) जीवित पितरों का श्राद्ध करना ( ७ ) विवाह लड़का लड़की के आधीन रखना ( ८ ) परस्पर में नमस्ते करना ( ९ ) मनुष्यों की प्रथम सृष्टि तिब्बत में होना और ( १० ) पृथ्वी का घूमना मानना ये दश सिद्धान्त वैदिक वेद प्रतिपाद्य हैं और इनके करने एवं मानने से हम वैदिक-धर्मी कहलावेंगे इस प्रेम तथा धोखे में आकर आर्यसमाजियों ने स्वामी जी के लिखे इन सिद्धांतों पर विश्वास किया किंतु मामला झूठा था अधिक दिन तक छिपा न रहा सनातनधर्मी स्वा० दयानन्द के इन लेखों को लेकर शास्त्रार्थ करने लगे, प्रत्येक शास्त्रार्थ में आर्यसमाज की हार होने लगी। यद्यपि आर्यसमाज में प्रेंसिपल-प्रोफेसर-पंडित-उपदेशक प्रभृति अनेक अच्छे २ अंग्रेजी के विद्वान् पुरुष मौजूद हैं, इतना ही नहीं भारत वर्ष के प्रत्येक विभाग में आर्यसमाज नामक संस्थायें और प्रतिनिधि सभायें भी विद्यमान हैं एवं आर्यसमाज के समाचार पत्र सम्पादक-लेखक सब मौजूद हैं, यह मामला सब के आगे रक्खा गया किंतु सभी ने टकासा जवाब देते हुये कह दिया कि दयानन्द के इन गपोड़ों को हम वैदिक सिद्ध नहीं कर सकते।

इस कथन से आर्यसमाजियों को ज्ञान हुआ कि जिस प्रकार रोटी के टुकड़े का लोभ देकर कुत्ते को मारा जाता है इसी प्रकार स्वा० दयानन्द जी वेद मत का लोभ देकर हमको ईसाई बना रहे हैं इतना जानने पर भी आर्यसमाजियों ने आर्यसमाज से स्तीफे नहीं दिये इस के कारण दो हैं। प्रथम कारण तो यह है कि आर्यसमाज में प्रायः समस्त मनुष्य ऐसे हैं जो धर्म कर्म को निष्प्रयोजन झगड़ा समझते हैं। दूसरे जो धर्म कर्म को कुछ मानते हैं वे इस लिये घबड़ाये कि जो हम आर्यसमाज को छोड़ देंगे तो हमारी संसार के सामने बड़ी बेइज्जती होगी, संसार कहेगा कि जब तक तुमने आर्यसमाज के दोष गुण नहीं जाने थे तो तुम आर्यसमाज में गये क्यों? इस दूसरे गिरोह में कुछ मनुष्य ऐसे भी थे जो धर्म को मनुष्य कर्तव्य मानते थे, जब उन को पता लगा कि स्वामी दयानन्द जी ने एक झूठा जाल रचा है और बुद्धि की कमजोरी से हम उसमें आ फंसे हैं तो वे तत्काल दयानन्द के जाल से बाहर निकल गये और उन्होंने अनेक पुस्तकें लिख कर स्वामी जी के बनावटी जाल का भंडा-फोड़कर दिया। इस के राजा फतेसिंह पुवायां नरेश सभापति संयुक्तप्रांत आर्यप्रतिनिधि सभा एवं मुंशी जगन्नाथप्रसाद मंत्री आर्यप्रतिनिधि सभा संयुक्तप्रांत चमकते हुये उदाहरण हैं, पढ़ने लिखने पर जब इनको स्वा० दयानन्द जी के गोरख धंधे का ज्ञान हुआ तब ये दोनों स्तीफे देकर आर्यसमाज से बाहर निकले एवं इन दोनों ने ही आठ आठ-दश-दश किताबें लिख कर अनेक मनुष्यों को दयानन्द के जाल में फंसने से बचाया।

कहो आर्यसमाजियो! ऊपर लिखे हुये स्वा० दयानन्द जी के दश सिद्धान्तों को तुम कभी वैदिक सिद्ध करोगे या सर्वदा झूठ बोल, चालबाजियां फेंक संसार को धोखा दे इन दश सिद्धान्तों को जबर्दस्ती वैदिक कहते रहोगे? आज तो क्या जब तक संसार में आर्यसमाज रहेगी तब तक इन सिद्धान्तों को वैदिक सिद्ध नहीं कर सकती, बस ये दश ही सिद्धान्त ऐसे हैं जो आर्यसमाज के आधे शरीर को निकम्मा करके आर्यसमाज के लिये लकवा बन गये हैं। संसार में कोई पंडित, कोई ज्ञानी, कोई वेदज्ञ ऐसा कभी भी नहीं हो सकता जो इन सिद्धान्तों को वैदिक सिद्ध करदे और आर्यसमाजी सत्य झूठ को जानते हुये भी कभी यह नहीं कहेंगे कि वास्तव में स्वामी जी के ऊपर लिखे दश सिद्धान्त अवैदिक हैं, ये तो झूठ बोल-झूठ लिख दश सिद्धान्तों को वैदिक ही कहते रहेंगे

ऐसी दशा में ये दश सिद्धान्त लकवा बन कर आर्यसमाज के आधे शरीर को तब तक निकम्मा रक्खेंगे जब तक कि आर्यसमाज का शरीर संसार में रहेगा, ऐसे भयंकर रोग में फंसी हुई आर्यसमाज को बचाने के लिये आज एक भी आर्यसमाजी तैयार नहीं ? आर्यसमाजियों का तो स्वा० दयानन्द जी की प्रशंसा करना एवं धर्म को बिल्कुल छोड़ देना, झूठ बोलना, धोखा देना, जाल बनाना, प्रतिष्ठा पाना, आर्यसमाज के बहाने से कुछ रुपया कमा कर पेट भरना कर्तव्य हो गया है। आर्यसमाज से गन्दे सिद्धान्त निकाल कर इसको पवित्र बनाना यह काम इनका नहीं है। आर्यसमाजियो ! संभलो, आर्य-समाज को धार्मिक और पवित्र सोसाइटी बनाओ नहीं तो किसी दिन इस समाज का अवश्य ही जनाजा निकल जावेगा फिर तुमको केवल ईसाई सोसा-इटी को छोड़ कर अन्यत्र कहीं भी स्थान न मिलेगा किंतु आर्यसमाजी भी ऐसे नहीं रहे जो हमारी प्रार्थना को सुन कर कुछ विचार करें इन को तो आर्य--समाज का जनाजा निकल जाने पर ही हर्ष है। अच्छा

**हुइ है वही जो राम रच राखा ।**

**को कर तर्क बढ़ावै साखा ॥**

स्वा० दयानन्द जी ने अपने लिखे ग्रन्थों में सैकड़ों ऐसे गपोड़े हांके हैं कि जिनको हम चण्डूखाने की गप्पों की डिगरी दे सकते हैं किंतु स्वामी जी इन गप्पों को गप्प या मिथ्या लेख नहीं मानते वरन् वैदिक आज्ञायें मानते हैं। फिर याद करिये स्वामी जी के उस लेख को जिसको हम पाठकों के लिये दुबारा लिखते हैं वह यह है कि—

सत्यार्थप्रकाश पृ० ७२ पं० १४ से स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि (प्रश्न) क्या तुम्हारा मत है ? (उत्तर) वेद अर्थात् जो जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा है उस उस का हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं जिस लिये वेद हमको मान्य है इसलिये हमारा मत वेद है ऐसा ही मान कर सब मनुष्यों को विशेष कर आर्यों को ऐकमत्य होकर करना चाहिये, ।

स्वामी जी ने स्पष्ट कर दिया कि हमारा मत वेद है और वेद में जो करना लिखा है उस को हम करते हैं,इतना लिख कर स्वामी जी आर्यसमाजियों को कर्तव्य बतलाने लगे। स्वामी जी के बतलाये हुये कर्तव्यों में से एक भी दिक नहीं है,सब वेद विरुद्ध मन माने अनर्गल लेख हैं,पाठक उन के अवलोकन

का कष्ट उठावें ।

नं० (४८)　　सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ९१ पं० ६ में लिखा है कि भोग के अन्त में सौंठ-केशर-असगंध-छोटी इलायची और सालम मिश्री दूध में डालके और गर्म जल से स्नान करके जो प्रथम ही रक्खा हुआ ठंडा दूध है उस को यथारुचि दोनों पीकर अलग अलग अपनी अपनी शय्या में शयन करें ।

स्वा० दयानन्द जी लिखते हैं कि वेदों में जिन कामों का करना लिखा है उनको हम करते हैं । अब पूछना यह है कि यह नुसखा कौन वेद में लिखा है ? कई एक आर्यसमाजी यह कह दिया करते हैं कि यह वैद्यक का नुसखा है, स्वामी जी अपने मत को वेदमत मानते हैं वैद्यक मत नहीं मानते । वैद्यक में रहे तुम से क्या प्रयोजन ? आर्यसमाज वैद्यक को स्वतः प्रमाण नहीं मानता, वेदानुकूल होने पर प्रमाण मानता है ? वेद में इस नुसखे का कहीं जिक्र नहीं इस कारण वैद्यक में कहीं हो भी तो वेदानुकूलता का अभाव होजायगा, फिर आर्यसमाज वेदानुकूलता के अभाव में वैद्यक को प्रमाण कैसे मानेगा ? हमने कई एक वे आर्ष वैद्यक ग्रंथ देखे कि जिनको वेदानुकूल होने पर आर्यसमाज प्रमाण मानता है किंतु उन आर्ष ग्रन्थों में यह नुसखा नहीं- फिर यह नुसखा वैदिक कैसे हुआ ? क्या यह नुसखा स्वा० दयानन्द जी का स्वकीय अनुभूत तो नहीं है ? जो लोग इस को वैदिक मानते हैं वे इसका वेद मंत्र दिखलावें नहीं तो साफ २ लिखदें कि नित्य भंग पीने वाले दयानन्द जी ने भंग की तरंग में लिखा है ।

नं० (४९)　　सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पं० २९ में लिखा है कि जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्न चित्त रहें डिगें नहीं । पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य प्राप्ति समय अपानवायु को ऊपर खींचे । योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थित करे । पश्चात् दोनों शुद्ध जल से स्नान करें ।

कहिये, स्वामी जी वेदों से कैसी २ मजे की बातें निकाल रहे हैं, वेद से क्या निकाल रहे हैं वेद का धोखा देकर अपने अनुभूत सांसारिक भाव अपने

शिष्यों को सिखला रहे हैं। क्या कोई जीता जागता आर्यसमाजी ऐसा संसार में बाकी है जो इस को वैदिक सिद्ध करदे ? यदि नहीं कर सकते तो फिर दयानन्द के इन लेखों को गपोड़े क्यों नहीं लिखते ? क्या करें विचारे 'भईगति सांप छछूंदर केरी''इधर कुआ उधर खाई' गिरें तो कहां गिरें।

नं० ( ५० ) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ४० पं० १७ में लिखा है कि उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण अर्थात् चार सौ वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावें।

आज तो स्वामी जी ने वेद का खजाना खोल दिया, अब तो आर्यसमाजियों को प्लेग-इन्फ्लुएंजा और हैजे का भी भय नहीं रहा क्योंकि आर्यसमाजियों के हाथ यह एक ऐसा कीमिया लगा है कि जिससे प्रत्येक आर्यसमाजी चार सौ वर्ष की उम्र वाला बन जावेगा। यह सन्निपात की बात कौन वेद में लिखी है जरा हमको वह वेद मन्त्र तो दिखलाया जावे जिसमें मनुष्य की चार सौ वर्ष की आयु बनने का हुक्म हो ? नहीं मालूम आर्यसमाजी इस नुसखे को क्यों अमल में नहीं लाते ? सभी आर्यसमाजी कहते हैं कि दयानन्द जी मरण पर्यन्त आबालब्रह्मचारी रहे, फिर वे चार सौ वर्ष की अवस्था होकर क्यों नहीं मरे ? बीच में ही क्यों मर गये ? यहां पर तो 'खुदरा फजीहत दीगरा नसीहत' का मामला गंठ गया। क्या ब्रह्मचर्य से चार सौ वर्ष की अवस्था हो जाती है यह सच है ? कोई आर्यसमाजी ऐसा हुआ है जो चार सौ वर्ष का होकर मरा हो ? और फिर ब्रह्मचर्य में यह कैसी विलक्षण शक्ति है जो चार सौ वर्ष की उम्र बनाती है इस ब्रह्मचर्य से न तो तीन सौ वर्ष की आयु हो और न पांच सौ वर्ष की, जब हो तब चार सौ वर्ष की हो। यहां पर तो ब्रह्मचर्य अड़ियल टट्टू की भांति चार सौ वर्ष पर डट गया, इसकी फिलास्फी हमारी समझ में नहीं आई, इस अनोखी घटना पर आर्यसमाजी वेद मंत्र दिखलावें, यदि नहीं दिखला सकते तो इसको स्वामी जी के प्रमाद की डिगरी क्यों न दे दें ?

नं० ( ५१ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ७ पृ० १६३ पं० ४ में लिखा है कि ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है।

संसार के आरम्भ से आज तक जितने भी विद्वान् हुये हैं उन सब ने ईश्वर को त्रिकालदर्शी माना है किन्तु स्वा० दयानन्द जी इतने प्रबल विद्वान् हुये कि उन्होंने ईश्वर के त्रिकालदर्शीपन को ऐसा उड़ाया जैसे कि गधे के शिर से सींग।

क्या कोई आर्यसमाजी इस चण्डूखाने की गप्प को सत्य सिद्ध करने के लिये लेखनी उठा कर हमको यह बतलावेगा अमुक वेद के अमुक मन्त्र में लिखा है कि ईश्वर त्रिकालदर्शी नहीं है। लिखते समय आर्यसमाजी यह भी याद करलें स्वा० दयानन्द जी का लेख यह है कि 'हम वेद को मानते हैं और हमारा मत वेद है, कहो आर्यसमाजियो! दयानन्द जी ने तुमको कैसा बेवकूफ बनाया? यदि तुम पढ़े होते तो फिर स्वामी जी के जाल में न फंसते किन्तु अविद्या ने तुमको स्वा० दयानन्द जी के जाल में ढकेल दिया अब तुम इस जाल से निकल नहीं सकते, यदि ईश्वर को त्रिकालदर्शी मानते हो तो आपके महर्षि झूठे बनते हैं और महर्षि के लेख को सत्य सिद्ध करते हो तो वेद टका सा जवाब दे देता है, हाय अविद्या तेरा सत्यानाश हो जाय तैंने आर्यसमाजियों को इतना बदनाम करवाया कि बिचारे संसार के सामने मुंह दिखलाने योग्य नहीं रहे? हमें आशा नहीं है कि इस गोरखधंधे को सुलझाने के लिये कोई लेखनी उठावेगा?

नं० (५२) सत्यार्थप्रकाश समु० ७ पृ०१८७ पं० ११ में लिखा है कि मन को नाभिप्रदेश में वा हृदय-कंठ-नेत्र-शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर करे।

कहो कैसी रही, आर्यसमाजियो! वेद ने जो मूर्ति के द्वारा मन अवरोध करना बतलाया था उसका तो स्वामी जी ने खण्डन कर दिया और तुम्हारे जीवन को बरबाद करने के लिये नाभि-कंठ-नासिका प्रभृति स्थानों में मन का स्थिर करना लिखा एवं फिर सब के बाद कौन स्थान बतलाया, पीठ का हाड़? ठीक है, स्वामी जी ने "जैसा मुंह वैसा थप्पड़" इस कहावत को सत्य कर दिया। तुम घोर नास्तिक हो, देवप्रतिमा में मन स्थिर करने के अधिकारी नहीं हो इसकारण स्वा० दयानन्द जी ने तुम्हारे मन को हाड़ में उलझाया किंतु तुम इतने मूर्ख निकले कि उसी में मोक्ष समझ बैठे। कहिये कैसी रही, जो विना विद्या के केवल हुज्जतबाजी से धर्म के निर्णय करने का दावा करता है उसको ऐसी ही जगह उलझाया जाता है। हम आज भारत वर्ष के आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि वे कौन २ आर्यसमाजी हैं जो पीठ के हाड़ में अपने मन को रोका करते हैं? वारंट निकालने पर भी कोई आर्यसमाजी ऐसा न मिलेगा जो नित्य बैठकर घंटा दो घंटा के लिये अपने मन को पीठ के हाड़ में उलझा देता हो फिर कौन कहता है कि आर्यसमाजी धार्मिक हैं, क्या तुम स्वा०दयानन्द जी की इस आज्ञा

को चण्डूखाने की गप्प नहीं मानते ? तुम सच सच बतलाओ क्या स्वा० दयानन्द जी तुमको धर्म से नहीं गिरा रहे ?

यदि स्वा० दयानन्द जी का यह लेख वैदिक है तो फिर इसमें वैदिक प्रमाण दिखलाओ । स्वा० दयानन्द जी साफ लिखते हैं कि 'वेद में जिन कार्यों का करना लिखा है उनको हम यथावत् करते हैं' । तुम जो पीठके हाड़ में अपने मनको कबड्डी खिलाते हो तो इस कबड्डी का कोई वेद मंत्र बतलाओ, नहीं बतला सकते तो छोड़ो स्वामी जी की लिखी चण्डूखाने की गप्पें ? हमको तुम्हारी बुद्धि पर तरस आता है तुम मानते तो चण्डूखाने की गप्पों वाला धर्म हो और संसार को धोखे में फांसने के लिये इन गप्पों को वैदिक धर्म कहते हो । आर्यसमाज में एक भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो इसका वैदिक मंत्र पेश कर दे ?

नं० ( ५३ ) सत्यार्थप्रकाश समु० २ पृ० २२ पं० १० में लिखा है कि "धन्य वह माता है जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे ।

कितनी असंभव बात है कि जिस दिन गर्भाधान हो उसी दिन से गर्भ में पड़े हुये वीर्य को सुशीलता सिखला दी जावे ? आर्यसमाजी तो बड़े हुज्जतबाज होते हैं, यहां पर इनकी समस्त हुज्जतों का क्या खातमा हो गया ? वेद न पढ़े तो न सही, इतनी बात तो साधारण मनुष्य भी समझ लेता है कि चेतनता के बिना सुशीलता का उपदेश कैसा ? सब समझते हैं किन्तु स्वा० दयानन्द जी भी बड़े उस्ताद हैं, स्वामी जी ने समस्त आर्यसमाजियों पर वह बाजीगर की लकड़ी फेरी कि अब इनकी बुद्धि काम ही नहीं देती । यदि स्वामी जी यह लिख जाते कि सृष्टि के आरंभ में चार ऊंट और तीन भैंसे वेद के बड़े विद्वान् हुये, इतने पर भी आर्यसमाजी स्वामी जी के लेख को सत्य ही कहते ? अब पूछना यह है कि चार लाख आर्यसमाजियों में कितनी स्त्रियां ऐसी हैं जो गर्भाधान के दिन से वीर्य को सुशीलता का पाठ पढ़ाती हैं ? यदि किसी एक स्त्री ने भी ऐसा करके दिखलाया होता तो हमको कुछ न कुछ सन्तोष होता किन्तु न किसी स्त्री ने ऐसा किया और न आगे को कर सकती है फिर स्वामी जी के इस वैदिक कार्य को क्या हिरणियां करेंगी या भेंड़ बकरियां ? आर्यसमाजियो ! जरा तो आंख खोलो, सर्वथा ही अक्ल को बूट के नीचे मत कुचलो, तुम्हें लज्जा नहीं आती; तुम प्रत्यक्ष विरुद्ध दयानन्द के इस गपोड़े को वैदिक धर्म बतलाते हो ? यह

तुम्हारी चोरी और सीना जोरी कितने दिन चलेगी ? वाहरे आर्यसमाजियो ! धन्य है तुमको और तुम्हारी हठ को जिस हठ से तुम गपोड़ों को वैदिक बनाने का मिथ्या साहस करते हो ?

आर्यसमाजियो ! वेद का एक एक अक्षर तुम्हारी दृष्टि में भयंकर भैंसा है, जब तुम लाचार हो जाते हो और इज्जत का चकनाचूर होता देखते हो तब इस गपोड़े की हांड़ी को सनातनधर्म के शिर पर फोड़ते हो ? तुम कहते हो कि प्रह्लाद ने भी तो नारद का उपदेश गर्भ में रहते ही सुना था ? यह तुम्हारा कहना ठीक है किन्तु जिस समय नारद का उपदेश प्रह्लाद ने सुना उस समय तो प्रह्लाद में चेतनता आ गई थी, वेद का सिद्धान्त है कि सप्तम मास में चेतनता पाकर जीव गर्भ के दुःखों से घबरा जाता है और वह गर्भ से छुटकारा पाने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ अपना इकरार नामा भी पेश करता है। इस विषय में निरुक्त के लेख को हम उद्धृत करते हैं पढ़िये—

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः ।
नाना योनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै ॥
अहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः ।
मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा ॥
अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः ।
सांख्यं योगं समभ्यस्येत्पुरुषं वा पंचविंशकम् ॥

परिशिष्ट ।

मैं मरा; फिर उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होकर फिर मरा, सहस्रों योनियों में मैंने निवास किया, अनेक आहार खाये, अनेक प्रकार के स्तनों का पान किया, विविध प्रकार की मातायें देखीं, इसी प्रकार अनेक पिता और अनेक सुहृद् मिले किन्तु अब मैं नीचे को मुख कर पीड़ा से पीड़ित हो अनेक जन्तुओं से समन्वित हो लटका हूँ, इस वार जो गर्भ से छूट जाऊंगा तो सांख्य योग के अभ्यसन द्वारा पंचविंशत्यात्मक पुरुष का अभ्यसन करूंगा ।

यह चैतन्य जीव की पुकार निरुक्त ने लिखी है इस कारण चेतनावस्था में प्रह्लाद को भक्ति योग के उपदेश का ज्ञान होना निरुक्त दृष्टि से संभव है किन्तु गर्भ धारण के दिन से 'सुशीलता का उपदेश' सर्वथा शास्त्र और प्रत्यक्ष के

विरुद्ध है उस समय वीर्य में व्यापक जीव चेतनता रहित है । इस इतनी मोटी बात को स्वा० दयानन्द जी की बुद्धि ने न जाना ये कैसे महर्षि हैं, मालूम होता है कि कुछ नरपशुओं ने अपनी मूर्खता से हल्ला मचा जबर्दस्ती से महर्षि बना दिये ?

क्या कोई आर्यसमाजी इतना साहस रखता है जो इस प्रश्न के ऊपर लेखनी उठा दे ? लेखनी उठाना तो दूर रहा, हमने यह आंख से देखा है कि इस प्रश्न को सुनते ही आर्यसमाजी उठ भागते हैं और इस दौड़ से चलते हैं कि कलां घोड़े की घुड़दौड़ को भी मात कर देते हैं-जय हो इस महाराणी अविद्या की जो आर्यसमाजियों के पीछे पड़कर इनकी इज्जत का स्वाहा कर रही है,शोक इस बात का है कि इतने पर भी आर्यसमाजियों की आंखें नहीं खुलतीं । कहो आर्यसमाजियो ! दयानन्दजी ने तुम लोगों को कैसा वैदिक धर्म बतलाया ? 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा । भानमती ने कुनबा जोड़ा' "टाट की अंगिया मूज की तनी कहो मेरे बलमा कैसी बनी" आर्यसमाजियो ! संभल जाओ, दयानन्द जी के गपोड़े को छोड़ भागो नहीं तो संसार में मुंह दिखलाने के लायक नहीं रहोगे ?

नं० ( ५४ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ३५ पं०१६ में लिखा है कि आचमन से कंठस्थ कफ की निवृत्ति थोड़ी सी होती है ।

आर्यसमाजियो ! हम तुमसे पूछते हैं तुम सच २ बतलाओ कि जल से कफ की निवृत्ति होती है या स्वामी जी तुमको बेवकूफ समझ अपने जाल में फांस रहे हैं ? तुम हमारे इस प्रश्न को सुनकर चुप क्यों रह जाया करते हो, क्या तुम यह चाहते हो कि हम तो दयानन्द के ढ़केले खंदक में गिर ही गये हैं किन्तु हमारी भाँति समस्त संसार खंदक में गिर जावे । यदि तुम्हारा यह ख्याल है तो यह ख्याल बिल्कुल गलत है, तुम शास्त्रानभिज्ञ थे, तुमको वेद का प्रत्येक अक्षर काला सांप दीखता था, तुम्हारा विचार सर्वथा मारा गया था इस कारण तुम दयानन्द के जाल में फंस गये किन्तु संसार तुम्हारी भांति सफाचट-निरक्षर नहीं है जो दयानन्द जी के धोखे को न समझता हो ? संसार खूब जानता है कि स्वामी जी घोर नास्तिक हैं और चार्वाक् से भी दो कदम आगे हैं एवं ये वेद के नाम के झूठे गीत गाकर वेद का प्रलोभन दे अपने जाल में उसी तरह फांस रहे हैं जैसे कि कलंदर चने दिखला कर बन्दर को जाल में बांध लेता है ।

आर्यसमाजी कान खोल कर सुनलें,जल से कफ की निवृत्ति नहीं होती-वृद्धि होती है । जल से कफ को निवृत्ति का होना स्वा० दयानन्द जी का यह मिथ्या गपोड़ा तुमने माना कैसे ? क्या आप लोगों ने अपनी बुद्धि को नीलाम करके 'बाबा वचनं प्रमाणम्' गुरुडम को तो स्वीकार नहीं कर लिया ? हम तुमसे नम्रभाव से पूछते हैं कि मामला क्या है ? हमारे हजार बार पूछने पर भी तुम चुप क्यों हो जाते हो ? चुप रह कर संसार में आर्यसमाज की बेइज्जती क्यों करवा रहे हो ।

'बड़े मियां सो बड़े मियां-छोटे मियां सुभान अल्ला' स्वा० दयानन्द ने आचमन से कफ की निवृत्ति बतलाई है किन्तु इनके विरुद्ध एक आर्यसमाजी ही कहता था स्वामी जी का यह लिखना तो गलत है, संभव है कि उन्होंने भंग के नशे में लिखा हो ? हां अलबत्ते यह हमारा मन कहता है कि संध्या में आचमन करने से कफ निवृत्ति नहीं होती वरन् दो लड़के पैदा होते हैं, इसको सुन कर हमको हंसी आई, हमने पूछा कि आचमन से दो लड़के पैदा होते हैं इसमें कुछ प्रमाण ? तब उस आर्यसमाजी ने उत्तर दिया कि स्वामी दयानन्द जी ने आचमन से कफनिवृत्ति में क्या प्रमाण दिया था जो हमसे प्रमाण मांगते हो ? हम तो आर्यसमाजी हैं औरों से प्रमाण मांगा करते हैं ,प्रमाण हम नहीं दिया करते हमारे मुंह से जितने अक्षर निकलते हैं वे सब प्रमाण हैं क्योंकि हम वेद निर्माता ईश्वर से कुछ न कुछ विद्वान् ही हैं । हमारे यहां तो 'मुख किमस्यासीत्' इस वेद मंत्र के भाष्य में साफ २ लिख दिया है कि ईश्वर मूर्ख है देखो ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका । फिर जब संसार मूर्खराज ईश्वर के बनाये हुये वेद को स्वतः प्रमाण मानता है तो हमने तो करीब २ मिडिल तक पढ़ा है हमारा कथन प्रमाण क्यों न होगा ? मजा रहा,इस आर्यसमाजी ने आचमन से कफ निवृत्ति की उत्तम रीति से मिट्टी पीटी ।

हमारे एक मित्र एक दिन इस पर त्रैराशिक ( अर्वा ) बना लाये और हमसे बोले कि पंडित जी हमने एक हिसाब लगाया है जरा सुन लीजिये । हमने कहा क्या है ? वह सुनाने लगे कि स्वामी जी के लेखानुसार थोड़े जल से थोड़े कफ की निवृत्ति और बहुत जल से बहुत कफ की निवृत्ति, इस हिसाब से यदि ऐसे मनुष्य को कि जिसको कफ के कष्ट से नींद न आती हो यदि एक हंडा या एक मसक जल पिला दिया जावे तो वह कफ के फन्दे से छूट कर

तने घर्राटे लगाता है कि पड़ोसियों को भी नहीं सोने देता। समझ में नहीं आता क्या बात है। आर्यसमाजियो ! क्या तुम को सुनता नहीं क्या तुम गूंगे हो या तुमको नेत्र तिमिर ने घेर लिया अथवा तुम्हारे पास कलम दवात कागज नहीं रहा, तुम ऐसे २ हृदयविदारक तीरों को सहते हो किंतु चूं नहीं करते ? भागो, छोड़ो दयानन्द के मत को नहीं तो संसार बुरी तरह तुम्हारी मिट्टी कूटेगा ।

एक वैद्य हमारे पास आकर रोने लगा, हमने पूछा रोते क्यों हो ? उस ने उत्तर दिया कि पहिले चैत के महीने में कुछ मनुष्य रोग से पीड़ित हुआ करते थे और उन से कुछ हम को मिल जाया करता था किंतु पारसाल से गांव में सत्यार्थप्रकाश आगया है, उस को पढ़ कर कफ पीड़ित मनुष्य आचमन कर अच्छे होजाते हैं अब हम को कोई पूछता भी नहीं, यदि पहिले से हम को सत्यार्थ-प्रकाश के इस लेख का पता लग जाता तो हम फिर न तो बनवारीलाल पाठशाला में भरती होते और न वैद्यक शास्त्र पर परिश्रम करते। इतने में एक आर्यसमाजी आगया उसने कहा कि वैद्य जी आप कफ को क्या लिये फिरते हो, हमारे यहां तो समस्त रोगों की दवाइयां तैयार होगई सुनिये हम आप को दो चार सुनाते हैं। यदि पैर के अंगूठे पर सन्ध्या के समय पानी छिड़का जावे तो चाहे कैसा अंधा हो फौरन आंख खुल जाती है, अगर पैर की छोटी अंगुली पर सन्ध्या का पानी छिड़का जावे तब तो एक आंख वाला दोनों नेत्रों से देखने लगता है, सन्ध्या का पानी एक बूंद कान में डाल दिया जावे तो फिर नये पुराने सभी प्रकार के आतशक और सुजाक भाग जाते हैं, यदि एक बिंदु जल कमर पर डाल दिया जावे तो फिर डाक्टर वर्मन की धातुपुष्ट की गोलियों की जरूरत नहीं रहती। यह सुन कर हमने पूछा कि इस का कहीं प्रमाण है ? तब उसने उत्तर दिया कि प्रमाण का पचड़ा तो केवल सनातनधर्मी ही लगाते हैं। हमारे मजहब में तो यह बात है कि जो सम्भव असम्भव लिख दिया वह पत्थर की लकीर है यदि इतने पर भी उस लेख पर कोई चीं चपड़ करे तो फिर उसको मुंहतोड़ उत्तर देने के लिये ब्राह्मण बनने के भूत के जकड़े हुये चौधरी साहब बनारस में रहते हैं वे न लेखनी उठावें और न जवान खोलें किंतु उत्तर ऐसा बिकट देते हैं कि उस उत्तर के मारे उनको रोटी अच्छी नहीं लगती।

हमको एक सिविल सर्जन मिले वह कुछ और ही कहते थे, वह हम से पूछते

थे कि आप हमको ऐसे मनुष्यों के नाम लिखवाओ कि जिन्होंने कफ रोग पर केवल जल ( औषधि ) दिया हो,हम ऐसे मनुष्यों की लिस्ट तैयार करके जिला-मजिस्ट्रेट को भेजेंगे ताकि जिलाधीश उनके ऊपर मुकदमा कायम करके पुलिस द्वारा गिरफ्तार करवा अदालत भेजे,अदालत में हम उनको सजा करवावेंगे,कफ में जल देना अच्छा करना नहीं बल्कि इरादतन मार डालना है।

आर्यसमाजियो! हम तुम्हारा कल्याण चाहते हैं तुम्हारी बाबत ईश्वर से प्रार्थना करते हैं ताकि वह ईश्वर तुम्हें बुद्धि दे और तुम घोर नास्तिक दयानन्द के जाल से निकल आओ किंतु तुम्हारी बुद्धियों को हो क्या गया? तुम्हारे मन ने सोलह आने यह फैसला भी दे दिया कि दयानन्द जी वेद का उपदेश नहीं करते किंतु वेद का बहाना लेकर अपने मन के लवेद में फांस संसार को मूर्ख समझ अपनी सम्प्रदाय बढ़ा रहे हैं,तुम इतना जानबूझ कर भी उन के सिद्धांत को वैदिक और उनको महर्षि कहते हो तुम से अधिक अज्ञानी संसार में कौन होगा ?

क्या सच ही वेद में आचमन करने की आज्ञा लिखी है और आचमन से कफ की निवृत्ति होना वैदिक धर्म है ? यदि है तो श्रुति पेश कीजिये। हमें आशा है कि प्रलय तक भी किसी आर्यसमाजी की लेखनी न उठेगी, सच तो यह है कि झूठे को सच्चा और सच्चे को झूठा करना,मीठी मीठी बातें बना कर साधारण मनुष्यों को धोखे में फांसना यह तुम्हारी ठग्गीबाजी कितने दिन चलेगी। धन्य है अविद्या देवी तुम को तैने अपने प्रताप से ठगों को भी पंडित, सम्पादक और धार्मिक बना दिया ? किंतु जिस समय वेद विज्ञान का प्रकाश होगा उस समय आर्यसमाजी ऐसे भाग कर छिपेंगे कि जैसे सूर्य भगवान् के निकलने पर पक्षी विशेष छिपा करता है। उल्लू

नं० (५५) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ३५ पं० २० में लिखा है कि मार्जन अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अंगों पर जल छिड़के उससे आलस्य दूर होता है।

स्वामी जी भी अजब किस्म के मनुष्य हैं प्रत्येक बात को वेद के मत्थे मढ़ देते हैं। स्वामी जी पहिले लिख आये हैं कि 'हम वेद में कहे हुये कार्यों को करते हैं,हम सच कहते हैं सौवार नहीं हजारबार कहते हैं वेद के किसी मंत्र में मार्जन करना और उस से आलस्य दूर होना नहीं लिखा।

स्वामी जी मार्जन से आलस्य की निवृत्ति लिखते हैं इसके ऊपर हमारा कथन है कि अभी तो वह स्नान करके आया है स्नान से भी जिसका आलस्य न गया तो फिर जरा से जल के छींटों से कैसे चला जावेगा ? और हमने मान भी लिया कि स्नान कर के भी जिसका आलस्य दूर न हुआ तो फिर उसको हुलास क्यों न सुंघा दी जावे या चाय व काफी क्यों न पिला दी जावे ? सबसे उत्तम उपाय तो यह है कि एमोनियां की शीशी सूंघ ले जिससे मूर्छा तक भी दूर हो जावे ? जिस मनुष्य का आलस्य स्नान से दूर न हुआ उस कुंभकर्ण का आलस्य अढ़ाई रत्ती जल के छींटेबाजी से दूर हो जावेगा ? भला क्या कोई मनुष्य इस बात को मान सकता है कि स्नान करने पर भी आलस्य रह जावे । हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि कृपाकर ऐसे आलसियों का जन्म या इन दूसरे कुंभकर्णों की उत्पत्ति भारतवर्ष में न कीजिये । सबसे अच्छा तो यह है कि ऐसे मनुष्य नौकर रख लें जो स्नान के समय में आंखों पर इतने छींटे मारें कि जब तक आलस्य दूर न हो जावे इन कुंभकर्ण आर्यसमाजियों को दम न लेने दें जिससे वहीं आलस्य उतर जावे । जब आलस्य के लिये ही मार्जन है तो जिसको आलस्य न हो वह मार्जन भी न करे । स्वामी जी ने कैसी बाजीगर की सफाई से मार्जन को उड़ाया है ।

क्या आर्यसमाज में कोई मनुष्य ऐसा है जो वेद में मार्जन अथवा मार्जन से आलस्य दूर होना सिद्ध कर दे ? इस प्रश्न को सुनकर आर्यसमाजियों को घर में धंसने के सिवाय और कुछ नहीं सूझता । क्या मजे की बात है जो आर्यसमाजी रात दिन अपने मजहब को सत्य बतलाने का धोखा दें, जब उन पर कोई प्रश्न हो जाय तो प्रश्न को देखकर घर में ऐसे धंसें जैसे बिल्ली को देखकर चूहा बिल में धंस जाता है । सच पूछिये तो आज कल मनुष्य आर्यसमाजी बन कर संसार के सामने अपनी इज्जत को नीलाम करके दिखलाते हैं । अविद्या जो चाहे सो करदे, यदि स्वामी जी यह लिख देते कि संध्या गधे पर चढ़कर करनी चाहिये या ऊंटनी का दूध पीते जाओ और संध्या करते जाओ अथवा सं[illegible] के समय दोनों जूते दोनों कानों में बांधो क्योंकि वेदमें इसी प्रकार संध्या [illegible] है । स्वामी जी के इस अयोग्य लेख पर अन्य धर्मियों को चाहे [illegible] किन्तु आर्यसमाजी तो इन बातों को खास वेद की आज्ञा [illegible] है कि अविद्या ने आर्यसमाजियों की गर्दन ऐसी जकड़

कर पकड़ी है कि अब ये लोग दयानन्द की बतलाई बातों को वैदिक ही मानते रहेंगे, अब इनके पास ऐसा कोई उपाय नहीं कि जिसका अवलम्बन करके दयानन्द जी के गोरख धंधे से छुट्टी पा जावें। ईश्वर इनकी अविद्या का नाश करे और इनके अन्तः करण में वेद तत्व का प्रकाश हो जिससे वे पाप कर्म को छोड़ धार्मिक मार्ग पर आवें।

कई एक आर्यसमाजी लोगों के सामने चालबाजी करके अपनी सत्यता सिद्ध किया करते हैं इनको कुछ और तो सूझता नहीं यह कह बैठते हैं कि आचमन और मार्जन तो सनातनधर्मी भी करते हैं, यदि वेद में दोनों चीजें नहीं हैं तो फिर सनातनधर्मी आचमन और मार्जन क्यों करते हैं ?

वाहरे अक्ल के दुश्मनो ! जब तुमको कुछ नहीं सूझता, दयानन्द के लेख में चारों तरफ अंधकार ही अंधकार दीखता है तब तुम स्वामी जी के मनगढ़न्त अनर्गल कार्यों का भंडाफोड़ सनातनधर्मियों के शिर पर करते हो ? याद रक्खो ऐसी चालबाजियों से कोई भी मनुष्य धर्म निर्णायक बनकर प्रतिष्ठा नहीं पा सकता किन्तु संसार ऐसे मनुष्य को धोखेबाज आदि उपाधियां देकर अन्त में धर्म का दुश्मन समझ बैठता है अतएव चालबाजी से मनुष्य की प्रतिष्ठा न होकर हानि ही होती है क्या हम आर्यसमाजियों से यह आशा कर सकते हैं कि आर्यसमाजी चालबाजी रूप कबड्डी को छोड़ देंगे। रही बात सनातनधर्मियों की, सनातनधर्म के गृह्यादि ग्रन्थों में तो मार्जन करना लिखा है किन्तु वेद में न मार्जन है और न मार्जन से आलस्य का दूर होना।

नं० ( ५६ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ३७ पं० १३ में लिखा है कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गंध की निवृत्ति करता है।

बिल्कुल गप्प, सोलह आने गप्प। वेद में कोई भी मंत्र ऐसा नहीं है कि जिसमें हवन की वायु से दुर्गंधि का नाश होना लिखा हो ? यह कैसा वैदिक धर्म है कि वेद का नाम लेकर स्वा० दयानन्द जी अपने मस्तिष्क की बातों का उपदेश कर रहे हैं। वास्तव में स्वामीजी वेद के कहे हुये धर्म को वैदिक धर्म नहीं मानते वरन् अपने मन में भरे हुये योग्य अयोग्य भावों को वैदिक धर्म मानते हैं उन्होंने किसी से सुन लिया है कि हवन की वायु से [illegible] नाश होता है बस उसी को सत्यार्थप्रकाश में लिख दि[illegible] छाप जमादी।

आर्यसमाजी भी स्वामी जी के इतने भक्त हैं कि स्वामी जी जिस बात को वेद के नाम से लिखदें बुद्धि की चटनी पीस, आंखें बन्द कर फौरन वैदिक धर्म मान लेते हैं। एक आर्यसमाजी ने कहा कि अग्निहोत्र का फल वायु शुद्धि नहीं है किन्तु जिसके घर में अग्निहोत्र होता रहेगा उसके घर में नित्य एक भैंस एक बच्चा देती रहेगी, मोटर उसके दरवाजे पर खड़ी रहेगी, उसको कभी पाखाना नहीं जाना पड़ेगा, अग्निहोत्र का धुआं पेट में धंस के म्युनिस्पेलटी के माल को वहां ही सुखा देगा, अग्निहोत्र करने वाले को नाई के पैसे बचते रहेंगे क्योंकि अग्निहोत्र का धुआं जब शरीर में लगेगा तब एक भी बाल शरीर के बाहर न निकलेगा। हमने कहा तुम क्यों गपोड़े हांकते हो ऐसा नहीं हो सकता, यदि होता है तो इसकी पुष्टि में प्रमाण दीजिये ? इसको सुन कर इस आर्यसमाजी ने कहा कि हम आपसे बात नहीं करते, अपने आर्यसमाजी भाइयों को समझाते हैं आर्यसमाजी हुज्जतबाज नहीं होते। आर्यसमाजियों ने वेद विरुद्ध, युक्ति विरुद्ध, प्रत्यक्ष विरुद्ध स्वा० दयानन्द के लिखे सहस्रों मिथ्या गपोड़ों को सत्य मान लिया तो क्या वे श्रद्धालु हमारे मिथ्या चार गपोड़ों को न मान लेंगे ?

वास्तव में दयानन्दीय मत में गपोड़ों के सिवाय और कुछ नहीं, अग्निहोत्र के वायु से दुर्गंधि का नाश होता है यह स्वामी जी का बनाया हुआ ताजा गपोड़ा है। हम हजार बार चेलैंज देने, वारंट निकालने पर एक भी आर्यसमाजी ऐसा न पावेंगे जो हवन की वायु से दुर्गंधि का मिटना वेद से सिद्ध करदे। दौड़ियो आर्यसमाजियो ! दयानन्द के गपोड़े को वेद से सिद्ध करियो नहीं तो आज तुम्हारा आंख के नीचे का हिस्सा नाक कटा जाता है। कुछ भी हो, मूर्खसमाज की हिम्मत नहीं है कि कोई ऐसा मन्त्र टटोल ले जिसमें हवन की वायु से दुर्गंधि का नाश लिखा हो। हमको शोक इस बात का है कि जिस धर्म में वेद के नाम से ऐसे गपोड़े लिखे हों वे आर्यसमाजी अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ और सच्चा बतलावें। हाय निर्लज्जता तेरा सत्यानाश हो तैने अपने पंजे में डाल इन गरीब आर्यासमाजियों को नग्न नाच नचा कर छोड़ा।

नं० ( ५७ ). सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ३६ पं० ६ में लिखा है किसी धातु वा मिट्टी के ऊपर १२ वा १६ अंगुल चौकोन उतनी ही गहिरी और नीचे ३ वा ४ अंगुल परिमाण से वेदी इस प्रकार बनावे।

यह वेदी एक अजब ही क़िस्म की है, स्वा० दयानन्दजी के मन में ऐसी वेदी भरी होगी उसको यहां पर लिख दिया, यह बात याद न रही कि चतुर्थ समुल्लास में हमने लिख दिया है कि जिन कार्यों का वेदों में करना लिखा है उन्हीं को हम करते हैं। वेद में ऐसी वेदी बनाने की कहीं पर भी आज्ञा नहीं क्या किसी आर्यसमाजी ने ऐसी वेदी बनाना वेद में पाया है? नहीं पाया तो वेद-विरुद्ध वेदी परिमाण दयानन्द के गपोड़े को कैसे वैदिक माना? यह मजा है स्वा० दयानन्द जो जो लिखदें वही वैदिक बन जावे। अंधेर के गढ़े में गोता लगाने वाले आर्यसमाजी भाइयो जरा पढ़ो और स्वामी जी की चालबाजी से छुटकारा पाओ। क्या तुमको इतना नहीं सूझता कि वेद का बहाना लेकर स्वा० दयानन्द जी अपने बनावटी जाल में हमको ऐसे फांस रहे हैं कि जैसे कांटे में आटा लगा कर मछली फांसी जाती है।

वर्तमान आर्यसमाजी वैदिक साहित्य के लिखने पढ़ने को तो तिलांजलि दे चुके, विचार की अन्त्येष्टि कर चुके फिर वे कैसे जानें कि कौन बात सत्य है? जब उनको कुछ नहीं सूझता तब वे अपने नये नये हथियारों से काम लेते हैं (१) कालूराम मूर्ख है बका ही करता है (२) कालूराम आर्यसमाज से जलता है (३) कालूराम हसन निज़ामी का नौकर है इस कारण आर्यसमाज का खण्डन करता है (४) कालूराम क्या सनातनधर्म का वकील या ठेकेदार है? ऐसे २ नये २ हथियारों से तुमने बहुत दिन पबलिक को धोखे में डाला अब तुम्हारी यह नीचता संसार जान गया है, संसार को यह मालुम हो गया है कि झूठ बोलना, धोखा देना, साधारण मनुष्यों को चालबाजी में फांसना इन तीन कामों के अतिरिक्त आर्यसमाज के पास और कुछ नहीं रहा, क्या कोई आर्यसमाजी भारत-जननी ने ऐसा पैदा किया है जो दयानन्द के मन से गढ़ी हुई फर्जी वेदी को वैदिक सिद्ध करदे? याद रक्खो, आर्यसमाजियो! लिखते समय कलम टूट जावेगी, बोलते समय जीभ में दो इंची लोहे की कील ठुक जावेगी। तुम्हारा कैसा मजहब है तुम अपने मजहब की एक बात को भी वैदिक सिद्ध नहीं कर सकते? कहां गये वे आर्यसमाजी जो सनातनधर्म को झूठा बतलाया करते थे? क्या आज उनका अस्तित्व संसार में नहीं है? क्या उनकी उछल कूद मारी गई? यदि तुममें जरा भी लज्जा हो तो कूदो मैदान में और वेदी वैदिक सिद्ध करो। हमारे हजारबार पुकारने पर भी यदि तुम मैदान में न आओगे तो फिर तुम्हारी इज्जत की कौड़ियां हो जावेंगी इससे अधिक हम कुछ न कहेंगे।

नं० (५८) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ०३६ पं० २१ में लिखा है कि मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जायं और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कंठस्थ रहें।

यह विलक्षण सूझ स्वा० दयानन्द जी को किसी वेद मन्त्र में से सूझी या अपने ही दिमाग से निकली ? स्वामी जी 'सत्यार्थप्रकाश' लिख रहे हैं या 'गपोड़ार्थप्रकाश' ? स्वामी जी आप हमें क्षमा करें, हम निरक्षर भट्टाचार्य आर्य-समाजी नहीं हैं कि जो वेद के नाम पर आपके पैदा किये बड़े २ गपोड़ों को सत्य मान लेंगे ? हमने कुछ पढ़ा है इसलिये हम कहते हैं कि यह आपका गपोड़ा है 'जिन मन्त्रों से हवन किया जाता है उनमें हवन के गुण लिखे हैं' प्रथम तो आपके यहां हवन के कुछ गुण ही नहीं केवल एक गुण है कि 'हवन के वायु से दुर्गंधि का नाश होता है' फिर क्या हवन के समस्त मन्त्रों में यही लिखा है कि हवन के वायु से दुर्गंधि नष्ट हो जावेगी ? यदि ऐसा है तब तो वेद में पुनरुक्त दोष आ जावेगा। वेद को एक मन्त्र में कहना चाहिये कि हवन के वायु से दुर्गंधि नष्ट हो जाती है परन्तु आपके कथनानुसार वेद ने इस बात को एक मन्त्र में न कह कर हवन के समस्त मन्त्रों में कहा यह पुनरुक्त दोष है। ओहो, मालूम हो गया कि आपने 'मुखं किमस्यासीत्' इस मंत्र का अर्थ करते हुये ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में ईश्वर को मूर्ख बतलाया है उसकी पुष्टि तुम यहां कर रहे हो कि ईश्वर ने हवन के समस्त मंत्रो में यही कहा है कि 'हवन के वायु से दुर्गंधि नष्ट होती है-हवन के वायु से मिट जाती है दुर्गंधि-हवन मिटाता है दुर्गंधि को-इन्हीं शब्दों को ईश्वर हवन के समस्त मंत्रों में कहता है तब तो वास्तव में ईश्वर मूर्ख है। स्वामीजी महाराज ! ईश्वर मूर्ख नहीं है आप नास्तिक हैं अतएव ईश्वर से डरते नहीं, गपोड़े हांकने आप वैदिक समझते हैं इस कारण सर्वथा मिथ्या गपोड़े हांक कर मूर्ख आर्यसमाजियों को अपने जाल में फांसते हैं। आज हम तुम्हीं से पूछते हैं कि आ[illegible] गायत्री मंत्र से भी हवन करना लिखा है अब आप ही बतलावें कि गायत्री [illegible] में हवन के कितने गुण हैं ? आपने जो गायत्री मंत्र का भाषा टीका लिखा उ[illegible] तो हवन का एक भी गुण नहीं लिखा। क्या गायत्री का अर्थ करते हुये [illegible] यह बात भूल गये थे कि 'इसमें हवन के गुण हैं' आप भी खूब राग रच[illegible] अपने सिद्धान्त को अपने ही लेख से गपोड़ा बना देते हैं।

अब हम अग्निहोत्र के उन मंत्रों को पाठकों के आगे रखते हैं जिनसे स्वा० दयानन्द जी ने हवन करना लिखा है। मंत्र ये हैं "ओ अग्नये स्वाहा-सोमाय स्वाहा-अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा-विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा-धन्वन्तरये स्वाहा-कुह्वै स्वाहा-अनुमत्यै स्वाहा--प्रजापतये स्वाहा--सहद्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा-स्विष्टकृते स्वाहा।

दौड़ियो आर्यसमाजियो! बतलाइयो कौन मंत्र में से हवन के गुणों का वर्णन टपकता है, क्या आर्यप्रतिनिधि सभाओं में इतना दम है कि हवन के मंत्रों में से हवन के गुण निकाल दें ताकि स्वा० दयानन्द का लिखा यह गपोड़ा सत्य सिद्ध हो जावे कि हवन के मंत्रों में हवन के गुण लिखे हैं। हमें तो मालूम है कि आर्यप्रतिनिधि सभायें और समस्त आर्यसमाजें वेद विज्ञानशून्य सर्वथा मूर्ख अंग्रेजी पढ़े लिखे आदमियों की सोसाइटियां हैं इनमें क्या हिम्मत है कि वेद पर लेखनी उठा जायं। आर्यसमाज की समस्त सोसाइटियां यदि इकट्ठी होकर विवेचन करें कि क्या हवन के मंत्रों में हवन के गुण लिखे हैं तो स्वामी दयानन्द जी की बुद्धि का दिवाला साक्षात्सामने आकर खड़ा हो जाता है। ऐ आर्यसमाजियो! तुमने अपनी लज्जा को बूट से कुचल दयानन्दीय गपोड़ों को वैदिक धर्म बतला कर जो मूर्ख चिड़ियाओं को अपने जाल में फांसने का काम आरम्भ किया है तुम्हारे इस कार्य को संसार घृणा की दृष्टि से देख रहा है। क्या किसी आर्यसमाजी में इतनी हिम्मत है जो हवन के मन्त्रों में से हवन के गुण बतलावे। याद रक्खो यह तुम्हारा झूठा धोखा अब न चलेगा, तुमने कालूराम और अखिलानन्द को छेड़ा है ये दोनों ही साधारण पुरुष नहीं हैं, अखिलानन्द तो अपने घर बैठे रहें केवल कालूराम ने आर्यसमाज की प्रत्येक बात को झूठ, चालबाजी, धोखा, चिड़िया फांसने का जाल सिद्ध न कर दिया तो फिर हमारा नाम कालूराम ही न ठहरा। इसी एक प्रश्न पर लीजिये, है कोई दुनियां में ऐसा आर्यसमाजी जो हवन के मंत्रों में से हवन के गुण निकाल दे? यदि तुम नहीं निकाल सकोगे तो तुम्हें साफ साफ कहना होगा कि स्वा०दयानन्द जी का लेख सर्वथा असत्य और वेद विरुद्ध है। यह कैसी भई बोलो आर्यसमाजियो यह कैसी भई, जैसी भई, यह वैसी भई, दुनियां में इज्जत की ख्वारी अविद्या से कैसी भई।

नं० ( ५६ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ३६ पं० १७ में लिखा है कि इसमें राज-नियम और जाति नियम होना चाहिये कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सकें।

इस लिखने का प्रयोजन केवल इतना है कि मनु जी ने जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों में भिन्न २ वर्ष की व्यवस्था की है वह दुनियां से उड़ कर समस्त वर्णों की एक व्यवस्था हो, इस प्रकार के फैसले को देख कर हम यही कह सकते हैं कि स्वामी जी भारतवर्ष में सब को एक लाठी से हांक कर क्रिश्चियन धर्म के नियमों में बांधना चाहते हैं। इस प्रकार की चाल से भारतवर्ष को ईसाई बनाना इस चालाकी को विद्याहीन आर्यसमाजी भले ही न समझें किन्तु लिखे पढ़े लोगों के चित्त में यह भली भांति समा जाता है कि भिन्न भिन्न वर्णों में पृथक पृथक् वर्षों की व्यवस्था को तोड़ने का अभिप्राय क्रिश्चियन् धर्म में लेजाना है।

स्वामी जी ने लिखा है कि हम जो काम करते हैं वह वेदानुकूल करते हैं। क्या आर्यसमाजी यह बतलावेंगे कि पांचवर्ष से आठ वर्ष तक सब लड़कों को पाठशाला में भेजना किस वेद मन्त्र में लिखा है? साथ ही साथ यह भी बत-लाना पड़ेगा कि वह कौन वेद मन्त्र है जिसमें इस विषय के लिये राजनियम का होना लिखा हो? आज जितने भी आर्यसमाजी संसार में मिलते हैं वे तीन काम करते हैं ( १ ) दूसरे धर्मों को मिथ्या सिद्ध करना ( २ ) स्वामी दयानन्द जी की अत्यन्त प्रशंसा गाकर उनको जबर्दस्ती से महर्षि बनाना ( ३ ) आर्यसमाज को वैदिक धर्म सिद्ध करना किन्तु ऐसा मनुष्य हमको एक न मिला जो स्वा० दयानन्द जी के इस गपोड़े पर जबान खोलता? हम आर्यप्रतिनिधि सभाओं से प्रार्थना करते हैं कि वे ऐसे मनुष्य की खोज करें जो स्वा० दयानन्द जी की इस गप्प का जबाब दे? यदि वैसा न मिले तो वारंट निकाल कर तलाशें। यदि आर्यसमाजी स्वा० दयानन्द के वेद विरुद्ध, मन गढ़न्त गपोड़े का तीन काल में भी जवाब नहीं दे सकते तो ऐसे झूठे जाल को तोड़ कर बाहर आजावें। हमें इस बात का बड़ा आश्चर्य है आर्यसमाजी यह समझते हैं कि स्वा० दयानन्द जी के समस्त लेख चंडूखाने की गप्पें हैं इतना समझ कर भी स्वामी जी के जाल में फंसे ही रहते हैं इसका कारण केवल स्वार्थ है, क्या कोई स्वार्थी आर्य-समाजी लेखनी उठा सकेगा? हमें आशा नहीं है। लेखनी उठाना पढ़े लिखे मनुष्यों का काम है, जब आर्यसमाज में एक भी वेद ज्ञाता नहीं तो क्या गोभी

बेचने वाला लेखनी उठावेगा ?

नं० (६०) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ३७ पं० १ में लिखा है कि ओ३म् भूः और प्राण आदि ये सब नाम परमेश्वर के हैं।

नहीं मालूम स्वामी जी ने आर्यसमाजियों को क्या समझा है। संसार में यदि कोई मनुष्य भैंस का अर्थ हिरण करे तो मूर्ख से मूर्ख मनुष्य उसकी हँसी कर कह उठेगा कि हिरण की जाति और है, ये प्रायः जंगलों में रहते हैं और भैंस को मनुष्य पालते हैं, यह दूध देती है एवं इसके दूध से घी खूब निकलता है। भैंस-हिरण कभी एक हो नहीं सकते, जैसा भैंस का अर्थ हिरण है स्वा० दयानन्द जी ने हूबहू वैसा ही भूः और प्राण का अर्थ करके इनको ईश्वर के नाम बतलाये हैं किन्तु आर्यसमाजी वेद की तरफ से चौपटानन्द हैं इस कारण इस गपोड़े को सत्य मान बैठे कि हां भूः नाम ईश्वर का है और प्राण नाम भी ईश्वर का है। यदि आर्यसमाज में एक भी मनुष्य ऐसा होता जो किंचित् भी वेद जानता होता तो वह फौरन कह देता कि भूः और प्राण त्रिकाल में भी ईश्वर के नाम नहीं हो सकते,क्या करें विचारे ये लोग मूर्ख होने के कारण स्वामी जी के चंगुल में जा पड़े। इनका कोई दोष तो है नहीं, हां मूर्ख लोगों को अनेक ठग ठगलेते हैं उसी भांति ये लोग स्वामी जी के चंगुल में जापड़े तो इसमें आश्चर्य क्या है ?

क्या भारत जननी ने किसी ऐसे आर्यसमाजी को पैदा किया है जो भूः और प्राण को ईश्वर के नाम सिद्ध करदे ? कोई चूं तक न करेगा, स्वांस या डकार न लेगा ? सच तो यह है कि बिना लिखा पढ़ा मनुष्य अर्ध पशु होता है। आर्यसमाजी अपने ऊपर आये हुये प्रश्नों के द्वारा अपने और स्वामी जी के अपमान को सहने को तैयार हैं किन्तु लेखनी उठाने के लिये इनकी नाक कट जाती है। जिस आर्यसमाज में समस्त आर्यसमाजी मिलकर अपने ऊपर हुये एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते वे आर्यसमाज को कितने दिन बचा सकेंगे ?

नं० ( ६१ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ३७ पं० २ में लिखा है कि स्वाहा शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीभ से बोले।

अर्थ बड़ा अच्छा है, जैसे कोई बाबू का अर्थ कंजर और कीकर का अर्थ

भेड़िया, पीपल का अर्थ मुसलमान और तुर्क का अर्थ ब्राह्मण करे ऐसा ही अनोखा अर्थ स्वामी जी ने स्वाहा शब्द का किया है ? अतएव हम स्वामी जी को धन्यवाद देते हैं और सब से अधिक धन्यवाद देते हैं उन आर्यसमाजियों को कि जिन्होंने यह अयोग्य अर्थ आंखों में पट्टी बांध और अक्ल को नीलाम कर सच मान लिया है । मंत्रभाग तथा ब्राह्मणभाग-वेद-निरुक्त-निघंटु-कल्प-गृह्य-पुराण-कोष काव्य-चम्पू प्रभृति संस्कृत साहित्य के किसी भी ग्रंथ ने यह अनोखा अर्थ नहीं लिखा,संभव है स्वामी जी ने अपने स्वतः प्रमाण ग्रंथ गयासुलुगत या किसी अंग्रेजी की डिक्सनरी से लिखा हो, ऐसे अण्ड बण्ड सर्वथा अयोग्य, असम्भव अर्थ करने वाले को जो आर्यसमाजियों ने महर्षि की पदवी दी है यह आर्यसमाजियों की अविद्या का फल है,क्या किसी आर्यसमाजी में इतना साहस है कि स्वाहा शब्द के अर्थ को सत्य सिद्ध करके दिखला दे ? किसी आर्यसमाजी में दम नहीं है जो लेखनी उठाजाय ? मुझे नहीं मालूम आर्यप्रतिनिधि सभायें क्या करती रहती हैं जो स्वा० दयानन्द जी के खण्डन पर लेखनी नहीं उठातीं ? एक दिन वह आवेगा कि आर्यप्रतिधि सभाओं को यह कहना पड़ेगा कि हम स्वा० दयानन्द जी के अर्थ को नहीं मानते ? कहां तक स्वामी जी के गपोड़ों को सत्य सिद्ध किया जावेगा ? यदि कोई संसार में लिखा पढ़ा मनुष्य हो तो उठावे लेखनी और करे स्वा० दयानन्द के स्वाहा शब्द के अर्थ को सत्य सिद्ध ? सिद्ध क्या करेगा यह प्रत्येक आर्यसमाजी समझता है कि स्वा० दयानन्द जी को वेद शास्त्र कुछ नहीं आता था जो उन के मन में लहर उठती थी वे उसी लहर को वेद के नाम से लिख देते थे ,फिर कोई आर्यसमाजी लेखनी उठावे तो किस हिम्मत पर उठावे ।

नं० (६२) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ३८ पं० ४ में लिखा है कि प्रत्येक मनुष्य को सोलह२ आहुति और छै: २ माशे घृतादि एक २ आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिये ।

धन्य है स्वामी जी को जो वेद के नाम से नये २ गपोड़े तैयार कर रहे हैं और शाबास है उन आर्यसमाजियों को जो आंख में पट्टी बांध कर दयानन्द जी के झूठे गपोड़ों को वेद का हुक्म मानते हैं । वाहरे आर्यसमाजियो ! तुमने लुटिया डुबोदी ,संसार का कोई भी मनुष्य वेद की छाप लगा कर चाहे तुम्हें कुछ भी बतलावे किंतु तुम सच मान लेते हो, यदि तुम्हारी यही दशा रही तो

कोई दिन में उस्ताद लोग वेद की छाप लगा कर तुम को खड़े होकर मूतना सिखला देंगे। प्रत्येक धर्म में मूर्ख अवश्य होते हैं किंतु उसी धर्म में कुछ संख्या विद्वानों की भी होती है,यदि भूतल पर कोई ऐसा धर्म मिलता है तो वह आर्य-समाज ही है कि जिस में एक भी धार्मिक विद्वान न हो,गिरोह का गिरोह सब मूर्ख। मूर्ख होने के कारण स्वामी जी के लिखे गपोड़े आर्यसमाज की दृष्टि में वेद धर्म हैं। हाय मूर्खता तेरा सत्यानाश होजाय तैंने आर्यसमाजियों की वह वेइज्जती की कि जिस पर आज संसार ताली देकर हंसता है।

क्या कोई आर्यसमाजी ऐसा पैदा हुआ है कि जो दयानन्द की आहुतियों के प्रमाण और संख्या को वैदिक सिद्ध करदे ? हाय हाय इस के ऊपर लेखनी उठाते समय आर्यसमाजियों के शिर में आधे शिर का दर्द शुरू होजाता है। क्या करें मूर्खलोग वेद क्या जाने,कोई भी आर्यसमाजी हमारे प्रश्नों पर लेखनी न उठावेगा ? हम को संतोष कर घर में ही बैठना पड़ेगा।

नं० (६३) सत्यार्थप्रकाश समु० ६ पृ० ३८ पं० ११ में लिखा है कि अग्नि-होत्र से लेके अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ।

हाय हाय स्वा० दयानन्द जी ने आर्यसमाजियों को पशुओं से भी बदतर समझा, जो जी में आया लिख दिया और आर्यसमाजी भी इतने बहादुर निकले कि जो दयानन्द लिखदे उसी को वेद मान लेते हैं। इस स्थल पर स्वा० दया-नन्द जी ने चालाकी की है उस चालाकी को जो आदमी समझ लेता है उसको स्वामी दयानन्द जी से घृणा हो जाती है और स्वा०दयानन्द जी को वेदों का परमशत्रु समझ लेता है इस मार्के की बात को पाठक ध्यान से समझें। यहां पर स्वा० दयानन्द जी ने अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध तक यज्ञ बतलाई किन्तु अग्निहोत्र की कथा तो यह है कि जिस प्रकार का अग्निहोत्र गृह्य और स्मृतियों ने लिखा था उसको तो स्वा० दयानन्द जी ने उड़ा दिया और मनगढ़न्त वेद विरुद्ध एक नया अग्निहोत्र बना कर तैयार किया। आर्यसमाजी सर्वथा मूर्ख हैं इस कारण इनको यह ज्ञान न हुआ कि यह अग्निहोत्र बनावटी मनगढ़न्त है या वैदिक यदि किसी आर्यसमाजी का दावा हो कि दयानन्द लिखित अग्निहोत्र वैदिक है तो वह कलम उठावे। कलम कौन उठावे,कोई संस्कृत ज्ञाता हो तब तो कलम उठावे, ऐसे भोले भाले आर्यसमाजियों को बनावटी अग्निहोत्र में फांस स्वा० दयानन्द जी ने वेद का भी गला घोट डाला और आर्यसमाजियों को भी नरक

में ढ़केल दिया । क्यों न हो कलियुगी महर्षि ही तो ठहरे ?

रही बात यज्ञों की, यहां तो स्वामी जी यज्ञों को मानते हैं किन्तु यर्वेजुर भाष्य में यज्ञों का सफाया कर देते हैं । स्वा० दयानन्द जी ने वेद के ईसाइयत भरे वे अर्थ किये कि इन बनावटी अर्थों से वेद में एक भी यज्ञ न रहा । अब इसको समझिये "यजनाद्यजुः" यजुर्वेद में यजन यज्ञें हैं इसी से इसका नाम 'यजुः' है । यजुर्वेद के प्रथमाध्याय में दर्शपूर्णमासेष्टि,चतुर्थाध्याय में अग्निष्टोम, नवमाध्याय में बाजपेय तथा राजसूय यज्ञें, दशमाध्याय में सौत्रामणि, सोलहवें अध्याय में शतरुद्रियाग, बाईस तेईस के अध्याय में अश्वमेध, अध्याय तीस में पुरुषमेध, अध्याय बत्तीस में सर्वमेध, यज्ञों का वर्णन है किन्तु स्वा० दयानन्द जी वेद के असली अर्थ को सुनकर घबरा जाया करते थे, प्रसन्न उससे होते थे जो वेद मंत्रों में से ऐसा बनावटी अर्थ निकाले कि जिस अर्थ से ईसाई धर्म की पुष्टि हो ? ईसाई धर्म के प्रेम ने स्वा० दयानन्द जी को बाध्य कर दिया इसी कारण उन्होंने कुत्ते का अर्थ हाथी, चूहे का अर्थ बिल्ली, चन्द्रमा का अर्थ दो जोड़े जूते और सूर्य का अर्थ ऊंट इस भांति वेद के पदों के असंभव अर्थ करके यजुर्वेद से समस्त यज्ञें उड़ा दीं किन्तु हिये के अन्धे गांठ के पूरे ये आर्यसमाजी दयानन्द जी की इस मोटी चालाकी को भी न समझ सके, समझें तो वे जो शतपथ पढ़कर दयानन्द का भाष्य देखें । क्या आर्यसमाजियों भारतवर्ष में कभी यज्ञें नहीं हुईं ? यदि हुई हैं तो फिर क्या वे यज्ञें कुरान या बाइबिल से हुईं क्योंकि स्वा० दयानन्द के भाष्य देखने से तो यह मालूम होता है कि वेदों में यज्ञों का वर्णन ही नहीं है । अब सत्यार्थप्रकाश में जो स्वा० दयानन्द जी ने अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यंत यज्ञें लिखी हैं,आर्यसमाज उन यज्ञों को किन ग्रन्थों से जानेगी ? इतने पर भी आर्यसमाजियों की आंखें नहीं खुलती ? इतनी चालाकी करने वाले को आर्यसमाज कब तक महर्षि लिखेगी अब तो चार लाख आर्यसमाजी सात जन्म धारण करें तब भी दयानन्द के भाष्य से यज्ञें नहीं निकाल सकते ? फिर स्वा० दयानन्द जी ने वेद बिरुद्ध इन समस्त यज्ञों का सत्यार्थप्रकाश में जिक्र कैसे किया ? क्या कोई आर्यसमाजी ऐसा पैदा हो चुका है जो स्वा० दयानन्द के इस गपोड़े को दयानन्द के मत से वैदिक सिद्ध करदे, इस प्रश्न को आगे रखते ही आर्यसमाजियों को प्लेग घेर लेता है, क्या आर्य-प्रतिनिधि सभाओं का यह कर्तव्य नहीं है कि वे सत्यासत्य का विवेचन कर चार लाख आर्यसमाजियों को दयानन्द के बनावटी जाल से निकाल कर धार्मिक

बनावें ? वे आर्यप्रतिनिधि सभायें विवेचन का क्या साहस कर सकती हैं कि जिनके यहां समस्त चार लाख मेम्बर वैदिक ज्ञान शून्य कोरे मूसलचन्द निकलें।

नं० ( ६४ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ३ पृ० ७१ पं० २४ में लिखा है कि जहां कहीं निषेध किया है उसका अभिप्राय यह है कि जिसको पढ़ने पढ़ाने से कुछ न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है।

यह लेख स्वा० दयानन्द जी ने खास आर्यसमाजियों के लिये लिखा है। आर्यसमाजियों को विद्वान् बनाने के लिये महाविद्यालय ज्वालापुर तथा कांगड़ी गुरुकुल प्रभृति अनेक संस्थायें खुलीं। इनमें आर्यसमाजी पढ़ने के लिये भी गये किन्तु इतने पर भी आर्यसमाजियों को वेद के अक्षर न आये अतएव संसार में जितने भी आर्यसमाजी हैं वे सब स्वामी जी की दृष्टि में शूद्र हैं,शाबास है आर्यसमाजियो तुमको,स्वा०दयानन्दजी ने एक बनावटी गपोड़ा तैयार करके तुमको शूद्र बनाया किन्तु तुम्हारी इतनी मोटी बुद्धि है कि तुम उसको भी न समझ सके और हम सच कहते हैं कि पढ़े तो बहुत किन्तु किसी भी आर्यसमाजी को वेद के अक्षर न आये। आर्यसमाजियो ! क्या स्वा० दयानन्द जी के इस लेख को तुम लोग सत्य समझते हो ? यदि यह लेख सच्चा है तब तो आर्यसमाजियों को अन्य पेशे छोड़ देने चाहिये और शूद्र पेशे को हाथ में लेकर अपनी आजीविका चलानी चाहिये। क्या हम यह आशा कर सकते हैं कि भारतवर्ष के आर्यसमाजी कल से शूद्रों के पेशे स्वीकार कर अपने को शूद्र और आर्यसमाज को शूद्र समाज लिखेंगे ? यदि आर्यसमाजी ऐसा न करेंगे तो दयानन्द पोप के लिखे हुये इस गपोड़े की पालना क्या ईसाई मुसलमान करेंगे ? हम आर्यसमाजियों की इस चालाकी को खूब जानते हैं कि आर्यसमाजी स्वामी जी को महर्षि कहते हैं और उनके लेख को वेद की आज्ञा मानते हैं किन्तु जब स्वा० दयानन्द के लेख पर आचरण करने का अवसर आता है तब ये बिना लिखे पढ़े आर्यसमाजी महर्षि दयानन्द को वज्र मूर्ख सिद्ध कर आप वेदज्ञ, स्वा० दयानन्द जी के गुरु, संसार में सबसे बड़े बन बैठते हैं। कहो शूद्र समाजियो ! स्वा० दयानन्द जी ने तुमको शूद्र बनाया या नहीं ? फिर तुम दयानन्द के सिद्धान्त के विरुद्ध अपने को शर्मा-वर्मा-गुप्त कैसे लिखते हो, क्या दयानन्द का यह लेख तुम्हारी दृष्टि में चण्डूखाने की गप्प नहीं है ? मजा रहा, मुसलमानों का

मोहम्मद के लेख पर विश्वास, इसी प्रकार ईसाइयों का मशीह के लेख पर ऐतकाद सनातनधर्मियों का भगवान् वेद व्यास के लेख पर विश्वास, यदि नहीं विश्वास तो दयानन्द के लेख पर आर्यसमाजियों का विश्वास नहीं है। जरा सी हानि होने पर आर्यसमाजी दयानन्द के लेख को बूट से ठुकराते देते हैं फिर नहीं मालूम परिव्राजक-वेदज्ञाता-वेदोद्धारक-महर्षि आदि पदवियां ये स्वार्थी आर्यसमाजी स्वामी जी को क्यों देते हैं? आर्यसमाजियो! यदि सच ही स्वामी जी महर्षि हैं तो तुम कल से उन के लेख में बंध कर अपने आप को शूद्र लिखो और साथ ही साथ यह भी पता दो कि जिस को पढ़ने से विद्या न आवे वह शूद्र होता है यह किस वेद के किस मंत्र का सिद्धांत है। हमें विश्वास है कि हमारा मंत्र आर्यसमाजियों को लिखा हुआ ही नहीं दीखेगा-यह है दयानन्द के जाल में फसने का फल ?

नं०(५४) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ८४ पं० २६ में लिखा है कि सब पदार्थों और सब देशों में ऊरू के बल से जो जावे आवे प्रवेश करे वह वैश्य।

यह मजा रहा, पैर से चलने वाले समस्त आर्यसमाजी वैश्य और आर्यसमाजी ही क्या वरन् भेड़ बकरी-घोड़ा-गधा-ऊंट-हाथी-भैंस-गाय-हिरण-रोज जितने भी प्राणी पैर के बल से चलते हैं वे सब दयानन्द जी और आर्यसमाजियों की दृष्टि में वैश्य हैं। आर्यसमाजी भी वैश्य और चौपाये भी वैश्य, इन दोनों वर्णों के यदि आपस में विवाहादिक सम्बन्ध होने लगें तो मेरी समझ में आर्यसमाज की दृष्टि में कुछ भी दोष न होगा। फिर ये चौपायों के साथ विवाहादिक सम्बन्ध क्यों नहीं करते? मालूम होता है कि स्वा० दयानन्द जी के इस लेख को आर्यसमाजी भी चण्डूखानेकी गप्प समझते हैं मजा तो यही है कि आर्यसमाज के महर्षि भी वे गपोड़े हांकते हैं कि जिनको सुनकर मूर्ख मनुष्य भी हंस पड़े, क्या गपोड़ों के ही महर्षि हैं, इन में इतनी भी अक्ल नहीं कि हमारे इस प्रत्यक्ष विरुद्ध असंभव लेख को कोई कैसे मान लेगा? कोई माने या न माने आर्यसमाजी तो अपनी बुद्धि की अन्त्येष्टि कर स्वा० दयानन्द के पीछे लग ही लिये हैं इस कारण आर्यसमाजियों को तो मानना ही पड़ेगा। आर्यसमाजियो! तुम हुज्जतबाज हो, इस असंभव लेख पर क्या तुम्हारी हुज्जतों को इन्फ्लुएंजा चाट गया या लकवा मार गया। सच तो कहो तुमने इस प्रत्यक्ष विरुद्ध गपोड़े को कैसे सत्य समझा और वेद में इसका मूल कहां है? वेद का वह कौन मन्त्र है जो पैर से चलने

वाले को वैश्य बतलाता हो ? आर्यसमाजियो ! दौड़ो, दयानन्द के इस असम
गपोड़े को वैदिक सिद्ध कर दो नहीं तो संसार की दृष्टि में तुम्हारी धुरी
जती होगी । कुछ भी कहो अब तो आर्यसमाजियों की वही दशा हो गई
गरयार बैल की होती है । गरयार बैल को चाहे कोई कितने भी आरे मारे
यह हजरत आगे को कदम नहीं उठाता । आर्यसमाजियों को कोई कुछ भी
चाहे संसार में इनकी बेइज्जती हो जाय किन्तु अब इनके हाथ से
उठेगी नहीं ।

नं० ( ६६ ) सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ६० पं० २५ में लिखा है
पाणिग्रहण पूर्वक विवाह की विधि को पूरा करके एकान्त सेवन करें । पु
वीर्यस्थापन और स्त्री वीर्याकर्षण की जो विधि है उसी के अनुसा
दोनों करें ।

यहां पर तो स्वामी जी मजा कर गये, चटरोटी पट दाल, इधर विवा
की विधि समाप्त हुई कि फौरन······और फिर तुरंत ही स्थापन और आकर्षण
यह खैंचा तानी । यहां पर प्रत्येक गृहस्थ को स्वामी दयानन्द जी ने कंजर बना
दिया । बरात का लिहाज नहीं लड़की वाले के आये हुये रिश्तेदार जो उसी घर में
ठहरे हैं उनकी शर्म नहीं, तत्काल जुट जाने से मतलब है । वाह स्वामीजी वाह
रंगीले, लेख तुम्हारे बड़े मजे के हैं किंतु शोक इतना है कि आर्यसमाज तुम्हारे
इन लेखों को मोटे पोप के गपोड़े समझते हैं । आज तक किसी भी
आर्यसमाजी ने तुम्हारे इस वैदिक धर्म का पालन नहीं किया; ये आपको
महर्षि, परिव्राट्--वेदोद्धारक कहते जरूर हैं किन्तु तुम्हारे बतलाये इस
वैदिक धर्म से नौ कोस दूर भाग जाते हैं । हम यहां पर आर्यसमाजियों
से केवल इतना पूछते हैं कि स्वा० दयानन्द जी के कहे इस वैदिक धर्म का
पालन आर्यसमाजी तो करेंगे नहीं, तो क्या ईसाई-मुसलमान करेंगे ? आर्यसमा
जियो ! तुम्हें लज्जा आनी चाहिये, तुम अपने मन में स्वा० दयानन्द जी के लेख
को गपोड़ा समझते हो और संसार को वैदिक धर्म बतलाते हो क्या किसी
आर्यसमाजी में ईश्वर ने यह शक्ति दी है कि स्वामी दयानन्द के ऊपर लिखे
गपोड़े का वैदिक सिद्ध करदे ? हमें तो भूतल पर ऐसा आर्यसमाजी नहीं
दीखता जो लेखनी उठाकर उत्तर लिखने का साहस करे, इतने पर भी आर्य
समाजी दयानन्द के मत को सत्य बतलाते हैं यह आश्चर्य है ।

नं० (९७) सत्यार्थप्रकाश पृ० ६७ में लिखा है कि "जो साङ्गोपाङ्ग चार वेदों के जानने वाले हों उनका नाम ब्रह्मा"।

मिल गया न वेद का असली अभिप्राय ? भला बुरा जो दयानन्द के मन में समाजाय वह आर्यसमाजियों का वेद ? सच बतलाओ आर्यमाजियो ! क्या किसी वेद, धर्मशास्त्र, दर्शन, वेदाङ्ग, पुराण,इतिहास,काव्य,कोष, चम्पू, ज्योतिष वैद्यक प्रभृति किसी ग्रन्थ में यह लिखा है कि 'जो साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों के जानने वाले हों उनका नाम ब्रह्मा'? किसी ग्रंथ में नहीं लिखा। हमको अफसोस के साथ लिखना पड़ता है कि वैदिक साहित्य का पढ़ना छोड़ कर मूर्ख बने आर्यसमाजी दयानन्द के जाल में ऐसे फंस जाते हैं जैसे कि दानों के लोभ से बन्दर फंस जाय ।

नं० (९८) सत्यार्थप्रकाश पृ० ६११ स्वमन्तव्यामन्तव्य संख्या २ में ब्रह्मा को ऋषि लिखा है।

यह लेख आर्यसमाजियों की बुद्धि पर जहालत का पर्दा डालने के लिये लिखा गया है। क्या सच ही ब्रह्मा ऋषि था ? यदि ऋषि था तो फिर ब्रह्मा के बाप का नाम क्या था ? और ब्रह्मा के कितने भाई थे ? एवं उस ब्रह्मा के कितने लड़के हुये ? सच तो यह है कि आर्यसमाजी दयानन्द की कान पकड़ी बकरी हैं जो दयानन्द लिखेंगे उसी को ये वेद मानेंगे ? किन्तु आर्यसमाज में आजतक कोई पवित्र माता ऐसी पैदा नहीं हुई कि जिसकी कोख से निकला हुआ लड़का दयानन्द के स्वार्थ से लिखे गये लेखों को वेदानुकूल सिद्ध कर देता ?

## गुरुभक्ति

नं० (९९) सत्यार्थप्रकाश पृ० ३२५ में लिखा है कि जो गुरु लोभी-क्रोधी-मोही और कामी हो तो उसको सर्वथा छोड़ देना; शिक्षा करनी; सहज शिक्षा से न माने तो अर्घ्य-पाद्य अर्थात् ताड़ना दण्ड प्राणहरण तक भी करने में कुछ दोष नहीं।

आर्यसमाजियों को जो स्वामी जी ने गुरुभक्ति सिखलाई है वह सभी मजहबों से विलक्षण है। यहां अर्घ्य पाद्य के अर्थ लात जूता हैं। हमें आशा है कि महर्षि की इस आज्ञा का पालन समस्त ही आर्यसमाजी करेंगे।

ऐसामनुष्य कोई लक्षों में एक निकलेगा कि जिसमें काम-क्रोध-लोभ-मोह

में से एक भी न हो। स्वामी जी में भी ये बातें पाई जाती हैं, स्वामी जी की कामना बड़ी प्रबल थी मरने के बाद भी उनका कई सहस्र रुपया बंक में जमा निकला, क्रोध इनमें इतना था कि इनके पास रसोइया नहीं ठहर सकता था, मुंशी इन्द्रमणि आदि जितनों से मित्रता हुई क्रोध के कारण अन्त में सब से बिगड़ी। सत्यार्थप्रकाश ही देख लीजिये 'तुम होते ही क्यों न मर गये-गर्भ क्यों नहीं गिर गया' ये शब्द स्वामी जी के क्रोध को सिद्ध कर रहे हैं। लोभ इतना था कि सीधे में मिला हुआ आटा दाल तक बेच कर दाम गांठ में बांध लेते थे जिसको देखना हो इस विषय में वेद व्याख्याता पं० भीमसेन का लिखा हुआ 'हमारा स्वामी दयानन्द जी के साथ सहवास' नामक लेख ब्राह्मणसर्वस्व' में देखले। मोह ऐसा था कि आप ही लिख कर भूल जाते थे, कहीं कुछ और कहीं कुछ। सत्यार्थप्रकाश के 'प्रामाण्याप्रामाण्य विषय' में तो लिखा कि हम वेदानुकूल मनुस्मृति को मानते हैं और नियोग में "प्रोषितो धर्मकार्यार्थं" इस श्लोक को जो वेदानुकूल नहीं है प्रमाण मान लिया। जब आप ही इन दुर्गुणों से नहीं बचे तो शेष आर्यसमाजी कैसे बचेंगे? आई कम्बख्ती उन आर्यसमाजियों की जो आर्यसमाजियों के गुरु बने बैठे हैं। ये कैसी बातें हैं, ऐसी २ बातें लिखने वाले ही महर्षि होते हैं? क्या आर्यसमाजी लोग यहां कुछ विचार करेंगे? करें या न करें? न हम कभी आर्यसमाजी रहे, न हमने आर्यसमाजियों को चेला बनाया और न हमको कोई इस आपत्ति का डर? इस लेख से भय भीत हों तो वे हों जो आर्यसमाजियों को पढ़ाते हैं। आर्यसमाजी यह भी पता लगावें कि यह गुरुभक्ति कौन वेद मन्त्र का अनुवाद है क्योंकि आर्यसमाजियों की दृष्टि में स्वामी जी ने जो कुछ भी लिखा है वह सब वेदानुकूल लिखा है तो यह गुरुभक्ति किस वेद मन्त्र के अनुकूल है यह लिख कर संसार को समझाना यह कर्तव्य आर्यसमाजियों का है।

## ❋ भोजन ❋

नं० ( ७० ) सत्यार्थप्रकाश पृ० २७२ में लिखा है कि यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हों उनको दण्ड देवें और प्राण से भी वियुक्त करदें (प्रश्न) फिर क्या उनका मांस फेंकदें? (उत्तर) चाहें फेंकदें चाहें कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है।

मनुष्य का मांस मनुष्य खाले तो संसार की कोई हानि नहीं। ठीक है, यह भोजन आर्यसमाजियों को मुबारक हो। पूछना यह है कि जो आर्यसमाजी यह कहते हैं कि स्वा० दयानन्द जी का जितना लेख है वह सब वेदानुकूल है तो यह लेख किस वेद के किस मन्त्र के आधार पर लिखा गया है इसका पता आर्यसमाजियों को छापना चाहिये।

नं० (७१) सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास में स्वामी दयानन्द जी ने जल पृथ्वी, राहु, केतु, शनिश्चर, चन्द्रमा प्रभृति ईश्वर के फर्जी नाम लिखे हैं। निघंटु, निरुक्त, समस्त कोष एवं समस्त संस्कृत के साहित्य में ऐसे बेबुनियाद ईश्वर के नाम कहीं नहीं आते स्वामी जी ने फर्जी नाम लिख कर आर्यसमाजियों को धोखा दिया है-यह स्वामी जी ने पाप कमाया है।

कई एक आर्यसमाजी यह कह दिया करते हैं कि व्युत्पत्तियां तो लिखी हैं? ऐसी फर्जी मनमानी ऊंट को मछली और मछली को हेडमास्टर बना देने वाली व्युत्पत्तियों में भी कुछ सार होता है? जैसी व्युत्पत्तियां स्वामीजी ने लिखी हैं वैसी दो चार व्युत्पत्तियां यहां पर हम लिखते हैं। 'गृह्णाति धान्यादिकं गृहम्' ईश्वर सब धान्यादि को अपने बस में किये है इस से उस ईश्वर का नाम 'घर' है। 'कायासु तिष्ठतीति कायस्थः, ईश्वर जड़ चैतन्य सभी के शरीर में व्याप्त है इस से ईश्वर का नाम 'कायस्थ' है 'दयया आनन्दयतीति दयानन्दः ईश्वर अपनी दया से सब को आनन्द देता है इस से उस परमात्मा का नाम 'दयानन्द, है। 'सत्यस्य अर्थस्य प्रकाशो भवति यस्मात्सः सत्यार्थप्रकाशः, ईश्वर वेद के द्वारा सत्य अर्थ को प्रकाशित करता है इस से उसका नाम 'सत्यार्थप्रकाश है। 'आर्याणांसमाजः समूहो यत्र स आर्यसमाजः'सर्वत्र व्यापक होने से श्रेष्ठ पुरुषों का समुदाय ईश्वर में ही रहता है इस से उसका नाम 'आर्यसमाज' है।

हमारी व्युत्पत्ति को व्युत्पत्ति के कायदे से कोई अशुद्ध नहीं कह सकता बस सिद्ध हुआ कि दयानन्द, सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज ये तीनों नाम ईश्वर के हैं अतएव संसार में न कोई दयानन्द हुआ और न कोई सत्यार्थप्रकाश नाम की किताब है एवं न ही आर्यसमाज नामक कोई सोसाइटी बनी, तीनों ही ढोंग और मिथ्या हैं।

कहो आर्यसमाजियो! व्युत्पत्ति के मजे देख लिये? किंतु तुम को क्या? तुमको दयानन्द के धोखे पहिचानने की क्या जरूरत? तुम्हारा तो इतना ही ध्येय

है कि स्वामी जी को महर्षि कहें और उनके मत को वेद कहते रहें,बाकी कर्तव्यों में दियासलाई लग जाय एवं वेद पर वज्रपात हो जाय , जाने तुम्हरी बलाय ।

यदि इस प्रकार के स्वा० दयानन्द के धोखा देने वाले उन के ग्रंथों से लेख छांटे जावें तो एक बड़ी भारी पुस्तक बन जाय। किंतु इस से कुछ काम नहीं चलेगा ,विचारशील इन्हीं लेखों से सत्यासत्य का निर्णय कर लेंगे और आर्यसमाजियों के लिये एक पुस्तक तो क्या नौ लाख पुस्तक भी लिख दी जावें तब भी ये विचार नहीं करेंगे क्योंकि हठ बांध बैठे हैं कि हम को वेद मानना ही नहीं , हम तो स्वामी जी के लेख को ही वेद मानेंगे ? ऐसे मनुष्यों के लिये लिखना पढ़ना निष्प्रयोजन नहीं तो और क्या है ?

आर्यसमाज के प्रेंसिपल, प्रोफेसर,:लीडर, प्लीडर, मिस्टर, मास्टर, उपदेशक, उपदेशिकायें, समस्त आर्यसमाजें तथाप्रतिनिधिसभायें इकट्ठी होकर विचार करें तब भी तो ऊपर के लेख जो स्वामी जी ने लिखे हैं,और हम ने यहां दिखलाये हैं वे वेदाज्ञायें सिद्ध नहीं होते। यही मानना पड़ेगा कि दयानन्द आर्यसमाजियों को धोखे में फांस वैदिक धर्म से गिरा रहे हैं ।

## वेदानुकूलता

स्वा० दयानन्द जी इतना गहरा धोखा देते हैं कि अंग्रेजी तथा हिन्दी पढ़े हुये लोगों की तो कौन कहे प्राय: संस्कृत पढ़े हुये मनुष्य भी इन के धोखे में फंस कर अपने विचार से हाथ धो बैठते हैं। यद्यपि स्वामी जी ने संसार को धोखा देने के अनेक मार्ग निकाले हैं तोभी वेदानुकूलता इन सब में प्रबल है।

आज तक आर्यसमाजियों को यह पता न चला कि वेदानुकूलता किसी चिड़िया का नाम है या कोई खूंख्वार जानवर है। यह कोई , चीज ही नहीं, आर्यसमाजियों की विचार बुद्धि को नष्ट कर देने के लिये यह एक जहरीला परदा है । ✓

समझिये,जो विधि या निषेध वेद में आया हो ,वही अन्य ग्रन्थ में आजावे क्या इस का नाम वेदानुकूलता है ? यदि ऐसा है तब तो वेदानुकूलता की आवश्यकता ही नहीं। कल्पना करो कि वेद में ईश्वर को निराकार लिखा है और मनु ने भी ईश्वर को निराकार ही लिखा तो फिर मनु के मानने की

आवश्यकता ही क्या रही ? ईश्वर निराकार है इस बात को तो वेद ही सिद्ध कर गया, ऐसी दशा में मनु का मानना अनावश्यक और वेदानुकूलता का डिम डिम पीटना निष्फल है । यदि हम यह मानलें कि जिस कार्य का वेद ने निषेध नहीं किया और अन्य ग्रन्थ ने उस कार्य के करने की आज्ञा दी है इस का नाम वेदानुकूलता है ? ऐसा मानने पर अतिव्याप्ति दोष आजावेगा । वेद में जिन का निषेध नहीं और दूसरे ग्रन्थों में विधान है वे सब कार्य वेदानुकूल कहलावेंगे । इस लक्षण से आर्यसमाजियों को रोजे रख कर निवाज पढ़नी होगी , मसीह को ईश्वर का पुत्र मान गिर्जा में जाना होगा, जैनियों के तिर्थंकरों की मूर्त्तियां पूजनी होंगीं और पुराणों को सत्य मानना तथा जिंदावस्था से अग्नि का पूजन करना होगा क्यों कि इन सब कार्यों का निषेध वेद में नहीं है फिर वेदानुकूलता कहते किस को हैं ?

इस वेदानुकूलता पर आर्यसमाजियों में भी विवाद उठता रहा है । (१) सम्वत् १९२८ में जब प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश लिखा जाता था उस समय स्वामी तथा पं० भीमसैन और पं० ज्वालादत्त तीन ही महानुभाव थे, यहां यही झगड़ा उठा जो हमने ऊपर लिखा है । पं० भीमसैन जी और पं० ज्वालादत्त जी दोनों मिलकर वेदानुकूलता को निष्प्रयोजन सिद्ध करते थे और स्वामी जी कहते थे कि यह काम की चीज है । खूब विवाद हुआ,अन्त में स्वामीजी हार गये और इन दोनों पंडितों के पक्ष का विजय हुआ । फिर स्वामीजी ने कहा कि अब लिखा रहने दो, ऐसी शास्त्रीय बारीक व्यवस्थाओं को कौन समझता है । ( २ ) सम्वत् १९३६ के कुंभ पर इसी विवाद को मुन्शी इन्द्रमणि जी ने उठाया, स्वा० जी ने कहा कि तुम फार्सी के विद्वान् हो इन संस्कृत की बातों को क्या समझो ? इसके ऊपर मुन्शी जी ने दोनों दोष स्वामी जी के आगे रख दिये,स्वामी जी को कोई जवाब नहीं आया, कुछ देर चुप रहे फिर हंसकर बोले कि यदि ग़लत है तो ग़लत ही सही, अब तो वह छप गया । ( ३ ) इसी विवाद को संयुक्त-प्रान्त आर्य प्रतिनिधिसभा के सभापति पुवायां नरेश ने पं० भीमसैन जी के आगे सम्वत् १९५१ में रक्खा । पण्डित जी ने जवाब दिया कि हमने तो यह बात तब ही कही थी जब सत्यार्थप्रकाश लिखा जाता था किन्तु स्वामी जी ने माना ही नहीं । ( ४ ) सम्वत् १९५३ में अलीगढ़ में यही विवाद स्वामी ईश्वरानन्द जी ने स्वामी पं० तुलसीराम जी के आगे रक्खा और दोनों दोष समझाये

तुलसीराम जी ने यह कहा कि बड़ों की बात बड़े ही जानें, नहीं मालूम इस निष्प्रयोजन लेख को स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में क्यों लिखा ? उस समय हम भी मौजूद थे, हमने पण्डित जी से कहा कि यदि यह निष्प्रयोजन है तो सत्यार्थप्रकाश से निकलवा दीजिये ? पण्डित जी बोले हां-यह ठीक है निकलवा दिया जावेगा। ( ५ ) हमने भी इस प्रश्न को बेहदरकलां में पं० नन्दकिशोर देव जी के आगे रक्खा, पण्डित जी ने उत्तर दिया कि लिखें स्वामी दयानन्द और बतलाऊं मैं ? मुझे क्या मालूम किस प्रयोजन से लिखा गया ? ( ६ ) जब रामाश्रय हमें मिलने के लिये अमरोधा आये तब हमने पूछा कि आप आर्यसमाज के अच्छे उपदेशकों में गिने जाते हैं, आप यह बतलावें कि वेदानुकूलता सत्यार्थप्रकाश में क्यों लिखी गई ? पंडित जी ने उत्तर दिया कि संसार को अन्धा बनाने के लिये ? ( ७ ) यही बात कौंच से लौटते हुये स्वा० दर्शनानन्द जी से हमने चौरह के स्टेशन पर पूछी ? स्वामी जी ने जवाब दिया कि सत्यार्थप्रकाश में ऐसी ऐसी पन्द्रह सौ अशुद्धियां हैं उन अशुद्धियों की मैंने फेहरिस्त बनाई, परोपकारिणी सभा को भेजी, संयुक्तप्रान्त तथा पंजाब की प्रतिनिधियों में पेश की इतने पर भी सत्यार्थप्रकाश शुद्ध नहीं किया जाता ? ला०मुन्शीराम के मारे किसी विद्वान् की बात नहीं सुनी जाती वे कहते हैं कि सत्यार्थप्रकाश अशुद्ध है तो बना रहने दो, बार बार काट छांट करने से आर्यसमाज की निन्दा होती है।

परीक्षा के लिये आज तुम किसी आर्योपदेशक के आगे रक्खो कि वेदानुकूलता तो व्यर्थ है। उपदेशक झूठ बोलेगा, चालबाजियां चलेगा, धोखा देगा, क्रोधित हो जावेगा किंतु जवाब नहीं दे सकेगा ? यदि तुम उत्तर मांगने पर ही आग्रह कर बैठोगे तो या तो वह कह देगा कि इस विषय में हम कुछ नहीं जानते या विस्तर बांध कर चल देगा ?

स्वामी जी ने रात को दिन और दिन को रात, झूठ को सच और सच को झूठ, धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म बनाने के लिये एवं संसार को धोखा देकर अपने जाल में फांसने के हेतु सत्यार्थप्रकाश, में वेदानुकूलता का जाल विछाया है।

नं० ( ७२ ) यह वेदानुकूलता दो प्रकार की है ( १ ) वेद मंत्र के अर्थ को हुज्जतबाजी से उड़ा और उसकी पुष्टि करने वाले प्रमाण को वेद विरुद्ध कह वेद के नाम से एक झूठा सिद्धान्त आर्यसमाज के आगे रखना कि जिसका वेद

में पता न हो और उस फर्ज़ी सिद्धान्त को वेद बतलाना यह तो स्वामी दया-नन्द जी की वैदिकता है और किसी प्रमाण को उठाकर उसमें से आधा छोड़ देना एवं आधे का मिथ्या अर्थ वैसा ही बना देना जैसा कि उन्होंने फर्जी वेद सिद्धान्त बनाया है यह स्वामी दयानन्द जी की सर्वोपरि वेदानुकूलता है।

इसका उदाहरण इस प्रकार है कि वेद ने'ब्राह्मणोऽस्य मुख मासीद्'इस मंत्र से यह बतलाया कि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र क्रम से विराट् के मुख बाहु-ऊरु-पाद से उत्पन्न हुये। इस वेद मंत्र का तो स्वामी जी ने मज़ाक कर डालाकि यह बात ग़लत है,ब्राह्मण मुख से पैदा होते तो गोल २ होते और जमीन पर लुढ़कते फिरते और क्षत्रिय भुजा से उत्पन्न हुये होते तो लम्बे २ चौड़ कैसे लट्ठे बनते इसी प्रकार यदि वैश्यों की उत्पत्ति ऊरु से होती तो ऊपर से मोटे, नीचे से पतले चिकने चुपड़े साफ साफ शरीर वाले बनते,शूद्र पैरों से पैदा हुये होते तो आगे से चौड़े और फटे हुये एवं पीछे से सिकुड़े हुये गांठों वाले बन जाते ऐसा दुनियां में [illegible]लाई नहीं देता इस कारण मुखादि अंगों से ब्राह्मणादि वर्णों का पैदा होना [illegible] वेदार्थ गलत है। इस मंत्र के पूरे अभिप्राय को स्पष्ट करने वाला 'लोकानान्तु विवृद्धयर्थं' जो मनु का श्लोक था उसको स्वामी जी ने वेद विरुद्ध बतलाया-इस चालाकी से वेद के असली भाव का मटियामेट कर स्वामी जी ने कहा कि वर्णव्यवस्था जन्म से नहीं-गुण, कर्म, स्वभाव से होती है। गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था किसी भी वेद-धर्म शास्त्र-दर्शन में नहीं लिखी किन्तु ईसाइयों में ऐसा होता है इस कारण ईसाई सिद्धान्त को स्वा०दयानन्द जी ने वैदिक बतलाया आर्यसमाजी भी यह बात जानते हैं कि गुण,कर्म,स्वभाव से वर्णव्यवस्था मानना वेदों को संसार से विदा करने तथा संसार को धोखा देने लिये के निरी बेईमानी है तो भी दयानन्द झूठे सिद्ध हो जावेंगे और हमारी नाक कट जावेगी इस भय से बेईमानी से कहते हैं कि वेद में गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था है। गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था होती है इसमें एक भी प्रमाण वेद-धर्मशास्त्र-दर्शन-वेदाङ्ग का स्वामी जी नहीं देसके किन्तु आर्यसमाजियों के लिये यह सिद्ध कर दिया कि ईश्वर और महर्षि ये सब बेवकूफ थे मैं ईश्वर से बहुत बड़ा विद्वान हूँ इस कारण वेदादि सच्छास्त्र में गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था नहीं तो न सही मेरे हुकम से मानो। जब शास्त्रार्थ में आर्यसमाजियों से यह कहा जाता है कि गुण-कर्म-स्वभाव की वर्णव्यवस्था में प्रमाण दो तब आर्यसमाज का दिवाला निकल जाता है और समाजी पंडित बेहोश होकर अनाप सनाप बकता है,इसकी

पुष्टि में आज तक संस्कृत साहित्य में न कोई प्रमाण मिला है न आगे को मिलेगा किन्तु भारतवर्ष को ईसाई बनाने वाले आर्यसमाजी इसको अब भी वैदिक मानते हैं ।

कुरारा में जब शास्त्रार्थ का समय आया तो एक दिन पहिले पं० प्रयागदत्त अवस्थी, पं० रामचन्द्र जी आर्यसमाजी, पं० बसन्तलाल प्रभृति समस्त पण्डित हमसे मिलने आये। हमने सबको बिठलाया बात चीत होने लगी। अवस्थीजी ने कहा शास्त्री जी ! आपने शास्त्रार्थ का चेलेंज बहुत बुरा दिया,आपके चेलेंज में यह विषय है कि "दयानन्द मत वेद विरोधी है" इस विषय पर हम कैसे शास्त्रार्थ कर सकेंगे ? आप अवतार–मूर्तिपूजा-श्राद्ध-वर्णव्यवस्था इन चार विषयों में से किसी पर शास्त्रार्थ करलें, हमने कहा अच्छा वर्णव्यवस्था पर [illegible]स्त्रार्थ हो जावेगा किन्तु शास्त्रार्थ के आरम्भ में हाथ में वेद लेकर आपको यह [illegible] होगा कि यदि हम गुण–कर्म–स्वभाव की वर्णव्यवस्था में वेद–धर्मशास्त्र-[illegible]र्शन और वेदों के छः अंगों में से एक का भी प्रमाण न दे सकेंगे तो शास्त्रार्थ [illegible] अन्त में अपने हाथ से अपना नाक काट डालेंगे एवं हम भी शास्त्रार्थ के आरम्भ में यह प्रण करेंगे कि ऊपर लिखे ग्रन्थों का कोई एक भी प्रमाण आर्यसमाज गुण–कर्म–स्वभाव की व्यवस्था का पेश करदे तो हम सभा में अपना नाक काट डालेंगे ।

इसको सुन कर अवस्थी जी ने कहा शास्त्री जी ! इसमें तो नाक ही अधिक कटा, शास्त्रार्थ तो उसी विषय का रहा। गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था में कोई प्रमाण ही नहीं फिर हम देंगे कहां से ? बस स्वामी जी की वर्णव्यवस्था ही वेद विरुद्ध सिद्ध हो जावेगी ?

आर्यसमाज के जितने भी पण्डित हैं वे सब जानते हैं कि गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था का विधान न श्रुति में है न स्मृति में, न दर्शनों में न वेदों के अंगों में, न पुराण में और न इतिहास में, ईसाई ऐसा मानते हैं, ईसाइयों का सिद्धान्त भारतवर्ष में चलाने के लिये स्वामी जी ने यह झूठ लिखा है कि गुण–कर्म-स्वभाव से वेद में वर्णव्यवस्था का विधान है तो भी पापी पेट के भरने के लिये उपदेशक यही कहते हैं कि गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था वेद ने मानी है ।

आपने देख लिया कि किस प्रकार 'ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्' के अभिप्राय

को हुज्जत से उड़ाया और इस मन्त्र के अर्थ को स्पष्ट करने वाले "लोकानांतु विवृद्धयर्थं" मनु के श्लोक को वेद विरुद्ध बतलाया एवं जिसका किसी भी संस्कृत के ग्रन्थ में पता नहीं ऐसे सिद्धान्त गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था को लट्ठ के जोर से वैदिक बना दिया। इसकी पुष्टि में—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥

मनु० १० । ६५

जो शूद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान, गुण-कर्म स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य हो जाय। वैसे ही जो ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यकुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण कर्म स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जाय। वैसे ही क्षत्रिय वा वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण ब्राह्मणी वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाता है अर्थात् चारों वर्णों में जिस २ वर्ण के सदृश जो २ पुरुष वा स्त्री हो वह २ उसी वर्ण में गिनी जावे।

जब हम पूछते हैं कि 'शूद्रो ब्राह्मणतामेति' यह श्लोक दयानन्द जी ने माना कैसे? दयानन्द के मत में तो चारों वेद ही प्रमाण हैं? तब आर्यसमाजी कहते हैं कि 'शूद्रोब्राह्मणतामेति' यह श्लोक वेदानुकूल है। वेदानुकूल मनु को स्वामी जी प्रमाण मानते हैं। बस इस कथन पर आर्यसमाजी उछलने लगते हैं कि ठीक तो उत्तर होगया। हमारी समझ में आता है कि स्वा० दयानन्द जी ने जो जाल बना कर इस श्लोक को वेदानुकूल बतलाया है उसका भी भण्डाफोड़ करदें जिससे दयानन्द के बनाये हुये जाल के टुकड़े २ हो जावें और फिर आर्यसमाजी घर में घुस कर गला फाड़ २ कर रोवें?

मनु जी ने यहां पर "शूद्रो ब्राह्मणतामेति" यह अकेला श्लोक नहीं लिखा वरन् दो श्लोक लिखे हैं। इन दोनों का अन्वय (अर्थ) इकट्ठा होता है। जहां दो श्लोकों का अर्थ इकट्ठा किया जाता है वहां पर श्लोक युग्म बोलते हैं। इस युग्म श्लोक में से स्वा० दयानन्द जी ने एक श्लोक तो चुरा लिया और एक पबलिक् के आगे रख दिया। आगे रक्खे जानेवाले 'शूद्रो ब्राह्मणतामेति' इस श्लोक के अर्थ में गुण-कर्म-स्वभाव दयानन्द ने अपनी तरफ से मिलाया, पाठक इसको देखें।

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते ।

अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥६४॥
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥६५॥

मनु० अ० १०

शूद्रा में ब्राह्मण से जो सन्तान पैदा हो वह पारशवाख्य वर्ण होता है। यदि वह कन्या हो और उसको ब्राह्मण विवाहे फिर उसके भी कन्या हो इसी प्रकार सात पीढ़ी तक कन्या होती जाय तथा उसका ब्राह्मण से सम्बन्ध होता जाय तो पारशव वर्ण में जो शूद्रत्व है उसका नाश होकर सप्तम कन्या शुद्ध ब्राह्मणी हो जायगी, इसी प्रकार 'शूद्रो ब्राह्मणतामेति' शूद्रवर्ण ब्राह्मणता को प्राप्त हो जाता है। यदि श ं में ब्राह्मण से लड़का उत्पन्न हो और उसका सम्बन्ध शूद्रों में होता जावे सप्तम पीढ़ी में ब्राह्मणत्व का नाश हो जायगा और वह ब्राह्मण-वीर्य शूद्रता कहना जायगा, ऐसे 'ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्' ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त होगा छः रेऔर शूद्रा में क्षत्रिय से उत्पन्न हुई कन्या सप्तम पीढ़ी तक यदि उसके सम्बन्ध बराबर क्षत्रिय से होता रहे तो सप्तम कन्या शुद्ध क्षत्रिय कन्या हो जावेगी। यदि शूद्रा स्त्री में क्षत्रिय से लड़का हुआ हो और उसका सम्बन्ध बराबर शूद्रों से होता जाय तो वह सप्तम पीढ़ी में शूद्र हो जावेगा, ऐसे शूद्र क्षत्रिय और क्षत्रिय शूद्र होता है। इसी प्रकार शूद्रा स्त्री में वैश्य से कन्या उत्पन्न हुई हो और उसका संबंध बराबर सातपीढ़ी तक वैश्यों में होता जावे तो सप्तम पीढ़ी में वह बणिक् कन्या होगी। वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न हुआ पुत्र सात पीढ़ी तक शूद्रों में सम्बन्ध करता जावे तो वह शूद्र हो जावेगा इस प्रकार वैश्य शूद्र और शूद्र वैश्य बनेगा।

कोई कोई धर्मशास्त्र का यह कथन है कि ब्राह्मण सात पीढ़ी में होता है और क्षत्रिय छः तथा वैश्य पांच में। इस प्रकार की व्यवस्था तब ही होगी जब स्त्री हीन वर्ण की और पुरुष उत्तम वर्ण का होगा।

जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः पञ्चमे सप्तमेऽपि वा।
व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चाधरोत्तरम् ॥६६॥

याज्ञ० वर्णजाति प्र०

मूर्द्धावसिक्तादि पुरुषों का जात्युत्कर्ष अर्थात् ठीक ठीक अपने पिता के वर्ण में आजाना पांचवीं छठी वा सातवीं पीढ़ी में ऐसे हो सकता है कि जब आगे

आगे मूर्द्धाविसिक्त के वंश में उत्पन्न होने वाली कन्याओं का विवाह शुद्ध ब्राह्मणों के साथ पांच छः वा सात पीढ़ी तक होता जावे तो आगे आगे शुद्ध ब्राह्मण उत्पन्न होने लगेंगे। विपरीत करने से ब्राह्मणत्व का नश होकर जिस वर्ण से सम्बन्ध करेंगे उसी वर्ण को प्राप्त होंगे।

कुल्लूकभट्ट प्रभृति जितने भी मनुस्मृति के संस्कृत टीकाकार हैं उन सबने यही अर्थ किया है। इन श्लोकों पर वृद्ध व्याख्यान भी है उसका भी यही अर्थ होता है। भाषा के टीकाकार भी यही अर्थ करते हैं किन्तु स्वा० दयानन्द जी प्रथम तो एक श्लोक को ही छिपा जाते हैं फिर श्लोक में जिस गुण-कर्म-स्वभाव का पता भी नहीं श्लोक के टीका में अपने मन में धंसे हुये गुण-कर्म-स्वभाव को ठूंस कर श्लोक की वेदानुकूलता सिद्ध करते हैं.

कहो आर्यसमाजियो! तुम सच बतलाओ 'ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्' इस मंत्र से ब्राह्मणादिक वर्णों की विराट् के अंगों से उत्पत्ति नहीं है? तुम यह भी बतलाओ कि 'ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्, इस वेद मंत्र के अर्थ को स्पष्ट करने वाला 'लोकानान्तु विवृद्धयर्थं' यह मनु का श्लोक वेद विरुद्ध है? तुम्हें यह धर्म से बतलाना होगा कि गुण कर्म स्वभाव से वर्णव्यवस्था का होना किसी शास्त्र से सिद्ध है या दयानन्द का निर्माण किया ताजा गपोड़ा है? तुम यह भी बतलाओ कि 'शूद्रायां' इत्यादि मनु के दो श्लोकों में से क्या एक श्लोक की चोरी स्वा० दयानन्द जी ने नहीं की? तुम को यह भी 'बतलाना होगा कि 'शूद्रो ब्राह्मणतामेति' यह श्लोक क्या वेदानुकूल है? यदि है तो वेद का वह कौन मंत्र है जिस के यह अनुकूल हो गया?

क्या तुम को यह नहीं सूझता कि स्वा० दयानन्द जी संसार को धोखा देने एवं आर्यसमाजियों की आंखों में लाल मिर्च भर देने के अर्थ क्या २ अनुचित कार्य कर रहे हैं और ऐसे अनुचित कार्य करने वाले को जो तुम वेदज्ञाता, योगी, महर्षि कहते हो क्या तुम्हारे जैसा निर्लज्ज मनुष्य संसार में कोई दूसरा होसकता है? क्या तुम को इस बुरे कर्म का फल ईश्वर न देगा? क्या तुम ईश्वर को भी धोखा दे लोगे? याद रक्खो दिन की रात और रात का दिन बनाने के लिये तुम को धोखे के जाल में फांसने के वास्ते स्वा० दयानन्द ने यह वेदानुकूलता का अड़ंगा लगाया है? क्या तुम मूर्खता के कारण दयानन्द के इस जाल में नहीं फंसे? यदि कोई लिखा पढ़ा जीवित आर्यसमाजी संसार में हो तो इसका उत्तर दे। हमें विश्वास है कि इस मूर्ख समुदाय का

एक भी मनुष्य लेखनी नहीं उठावेगा ।

(२) जो श्लोक स्वामी जी देना चाहते हैं उस को वेदानुकूल कह देते हैं और जब कोई दूसरा मनुष्य किसी प्रमाण को पेश करता है तो उसको वेद-विरुद्ध कह देते हैं यह अन्याय स्वामी जी ने वेदानुकूलता से मचाया है। आप लिखते हैं कि

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् ।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ६५

मनु० अ० ५

जब गुरू का प्राणांत हो तब मृतक शरीर जिस का नाम प्रेत है उस का दाह करने हारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक शरीर को उठाने वालों के साथ दशवें दिन शुद्ध होता है ।

वेद में पितृमेध का तो विधान है किन्तु मरे हुये को दाग देने वाला और उस के साथ जाने वाले दश दिन में शुद्ध होते हैं यह कहीं भी नहीं लिखा क्यों कि शुद्धि का विषय ही वेद में नहीं है । स्वा० दयानन्द जी ने अपने मन की जबर्दस्ती से इस श्लोक को वेदानुकूल माना,अब आप बतलावें कि यह वेदानुकूलता है या संसार की आंखों में धूल झोकना ? मनुस्मृति के इसी अध्याय में लिखा है कि

शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥८३

मनु० अ० ५

ब्राह्मण दश दिन और क्षत्रिय बारह दिन एवं वैश्य पन्द्रह दिन तथा शूद्र एक मास में शुद्ध होता है।

मनु ने 'गुरोः प्रेतस्य' इस श्लोक में बतलाया था कि जिस कुटुम्ब में मृतक का अग्नि संस्कार हुआ है वह दश दिन में शुद्ध होता है। मनु का यह कथन केवल ब्राह्मण जाति के लिये था। फिर मनु को यह सन्देह हुआ कि संसार चारों वर्णों की शुद्धि दश दिन में न मान बैठे इस कारण फिर 'शुद्ध्ये-द्विप्रो' इस श्लोक में विवरण किया कि ब्राह्मण दश, क्षत्रिय बारह, वैश्य पन्द्रह दिन और शूद्र एक महीने में शुद्ध होता है। स्वामी जी ने यहां पर 'गुरोःप्रेतस्य' इस को अपनी जबरदस्ती से वेदानुकूल और 'शुद्ध्येद्विप्रो' इस श्लोक को

वेद विरुद्ध माना । वेद विरुद्ध मानने का कारण केवल इतना है कि इस श्लोक से जाति भेद बना रहता है और स्वामी जी जाति भेद रखना नहीं चाहते इस कारण वेद विरुद्ध ठहराते हैं । अब पाठक बतलावें कि स्वा० दयानन्द जी का यह धर्म निर्णय है या स्वार्थ सिद्धि?

आर्यसमाज में ऐसा कोई मनुष्य न पैदा हुआ है, न आगे को हो सकता है जो 'गुरोःप्रेतस्य' इस श्लोक की वेदानुकूलता और 'शुद्ध्येद्विप्रो' इस का वेद विरोध सिद्ध करदे ? तो भी आर्यसमाज धर्मशास्त्र की आज्ञा छोड़ दोनों आंखें बन्द कर दयानन्द के जाल में फंस रही है । यदि ये आर्यसमाजी मनुस्मृति को पढ़ते तो इस प्रकार दयानन्द के धर्म कर्म मिटा देने वाले बनावटी जाल में न फंसते ? मेरे प्यारे आर्यसमाजी भाइयो ! तुम चार लाख मिलकर भी पहिले श्लोक की वेदानुकूलता और दूसरे श्लोक का वेद विरोधत्व सिद्ध नहीं कर सकते, फिर भी तुम जान बूझ कर दयानन्द जी के जाल में फंसते हो क्या, इस में अविद्या को छोड़ कर कोई दूसरा कारण है ? हो तो बतलाओ, नहीं तो याद रक्खो तुम को स्वामी जी की इस चालाकी पर पण्डितों के सामने सर्वदा नीचा देखना पड़ेगा ।

सत्यार्थप्रकाश में वेद से न मिलने वाले एक दो प्रमाणों को ही वेदानुकूल नहीं सिद्ध किया वरन् इतने प्रमाण वेदानुकूल समझ कर सत्यार्थप्रकाश में लिखे गये हैं कि यदि हम उन सबको यहां उद्धृत करें तो सत्यार्थप्रकाश से बड़ा एक पोथा बन जावेगा, इस भय से हम सभी प्रमाणों को तो यहां नहीं लिखेंगे किन्तु स्वा० दयानन्द जी के दिये हुये धोखे का भण्डाफोड़ करने के लिये कुछ प्रमाण अवश्य लिखेंगे जिनको देखकर धार्मिक मनुष्य के नेत्रों से रुधिर के आंसू बह उठेंगे । पाठक उन प्रमाणों को ध्यान से पढ़ें ।

नं० ( ७३ ) सत्यार्थप्रकाश पृ० ३० में लिखा है कि—

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥

मनु० ६ । ४६

नीचे दृष्टि कर ऊंचे नीचे स्थान को देख के चले, वस्त्र से छान के जल पीवे, सत्य से पवित्र करके वचन बोले, मन से विचार के आचरण करे ।

वेदानुकूलता का दावा करके यह श्लोक स्वा० दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा । अब इसकी वेदानुकूलता सिद्ध करिये । वेद में न तो कहीं

यह लिखा कि तुम देखकर चलो और न यही लिखा कि जल को कपड़े से छान कर पियो ? जिस मंत्र भाग को स्वा० दयानन्द जी वेद मानते हैं उसमें यह भी विधि नहीं आई कि सच बोलो वेद में कहीं यह भी नहीं लिखा कि मन से पवित्र करके वाणी बोलो फिर यह श्लोक दयानन्द की जबरदस्ती से वेदानुकूल कैसे हो जावेगा ? क्या दुनियां में जीता जागता कोई आर्यसमाजी ऐसा है जो इस श्लोक की वेदानुकूलता सिद्ध करे ? और यदि आर्यसमाज में सभी मूर्ख हैं तो इसकी वेदानुकूलता किस आधार पर मानी गई ? यह श्लोक वेदानुकूल नहीं है किन्तु दयानन्द जी संसार को धोखे में डालने के लिये जबर्दस्ती से इस श्लोक को वेदानुकूल लिख गये ? यह है कलियुगी ऋषि का धर्म निर्णय ?

राजा के विषय में मनु जी ने कुछ श्लोक लिखे हैं वे वेदानुकूल समझ स्वा० दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में उद्धृत किये हैं । श्लोक ये हैं ।

इन्द्राऽनिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च ।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ॥१॥
तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च ।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम् ॥२॥
सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट् ।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः ॥३॥

मनु० ७ ॥ ४ । ६ । ७ ।

वह सभेश राजा इन्द्र अर्थात् विद्युत् के समान शीघ्र ऐश्वर्यकर्ता वायु के समान सबके प्राणवत् प्रिय और हृदय की बात जानने हारा यम पक्षपातरहित न्यायाधीश के समान वर्तने वाला, सूर्य के समान न्याय धर्म विद्या का प्रकाशक अन्धकार अर्थात् अविद्या अन्याय का निरोधक, अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करने हारा, वरुण अर्थात् बांधने वाले के सदृश दुष्टों को अनेक प्रकार से बांधने वाला, चन्द्र के तुल्य श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्ददाता, धनाध्यक्ष के समान कोशों का पूर्ण करने वाला सभापति होवे ॥१॥ जो सूर्यवत् प्रतापी सबके बाहर और भीतर मनों को अपने तेज से तपाने हारा जिसको पृथिवी में करड़ी दृष्टि से देखने को कोई भी समर्थ न हो ॥२॥ और जो अपने प्रभाव से अग्नि, वायु, सूर्य, सोम, धर्म, प्रकाशक, धनवर्द्धक, दुष्टों का बन्धनकर्ता, बड़े ऐश्वर्यवाला होवे

वही सभाध्यक्ष सभेश होने के योग्य होवे ॥३॥

ये तीन श्लोक जो स्वामी ने सभेश के वर्णन में लिखे हैं, जिनका असली अभिप्राय राजा का महत्व दिखलाना था, श्लोकों के असली अभिप्राय को तोड़ मरोड़ मन माना फर्जी अर्थ बना जिनको सभेश परक लगाया है क्या ये श्लोक वेदानुकूल हैं ? कोई आर्यसमाजी इनकी वेदानुकूलता सिद्ध करने वाला भूतल पर विद्यमान है ? जब इनकी वेदानुकूलता कोई पुरुष तीन जन्म में भी सिद्ध नहीं कर सकता तब इनको जबर्दस्ती से वेदानुकूल मान लेना क्या संसार की आंख में धूल झोंकना नहीं है ? धर्म के विषय में संसार को ऐसे धोखे में फांसना यह न्याय है या धार्मिकता ? हमारी समझ में तो घोर पाप है । क्यों न हो, स्वामी जी यदि ऐसे २ घोर पाप न करते तो आर्यसमाज उनको महर्षि की पदवी कैसे दे देती ? ऐसे घोर पाप को धर्म और धोखा देने वालेको महर्षि की पदवी देना संसार में लज्जावान् पुरुष कभी भी नहीं कर सकते ।

इन तीन श्लोक को ही क्या कथा है सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास में तीन तथा द्वितीय में दो एवं तृनीय में साढ़े २६, इसी प्रकार चतुर्थ में पौने ७६, षष्ठ में एक सौ साढ़े सत्तासी, सप्तम में १, अष्टम में पौने ४, नवम में २६, दशम में सवा २८ एकादश में पौने ६ कुल मनुस्मृति के ३६० श्लोक स्वा०दयानन्द जी ने उद्धृत किये हैं । इन ३६० श्लोकों में से एक भी श्लोक ऐसा नहीं है कि जिस की वेदानुकूलता सिद्ध करने के लिये कोई माई का लाल आर्यसमाजी मैदान में आवे ? जब वेदानुकूलत्व न होने पर भी ३६० श्लोक स्वामीजी ने मनु के प्रमाण मान लिये फिर वेदानुकूलता का झगड़ा लगाना संसार को जाल में फांसना नहीं है ? स्वामी जी तो बिना ही वेदानुकूलता के ३६० श्लोक मान लें और हम यदि एक भी श्लोक मनु का पेश करदें तो आर्यसमाजी यह कह उठें कि यह श्लोक वेद विरुद्ध है अतएव क्षेपक है, हम इसको बिलकुल ही नहीं मानते, आर्यसमाज का यह जाल ही एक दिन आर्यसमाज को संसार से नेस्त नाबूद कर डालेगा इस प्रकार के जाल बिछाकर संसार की आंख में धूल झोंकने वाला मजहब दुनियां में कितने दिन ठहरेगा ?

नं ( ७४ ) सत्यार्थप्रकाश पृ० १२३ में शतपथ का देकर लिखा है कि "ब्रह्मचर्याश्रमंसमाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् । शत० कां० १४

मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थ होकर

वानप्रस्थ और वानप्रस्थ होके संन्यासी होवें अर्थात् यह अनुक्रम से आश्रम का विधान है"।

यह शतपथ क्या वेदानुकूल है? आर्यसमाज के माने हुये मन्त्रभाग वेद में एक भी प्रमाण ऐसा नहीं जिसके अनुकूल यह शतपथ हो सकता हो तो भी अपनी हठ से बलात्कार वेदानुकूल बना कर इस शतपथ को सत्यार्थप्रकाश में लिख दिया-यह दयानन्द को स्वार्थसिद्धि है। क्या कोई आर्यसमाजी उस मन्त्र को पेश कर सकता है जिसके अनुकूल यह शतपथ हो? इसको सुन कर आर्यसमाजियों की दांती बन्ध जाती है फिर केवल स्वा० दयानन्द के लिखने पर इसको कोई विचारशील मनुष्य कैसे वेदानुकूल मान लेगा? शतपथ के जितने भी प्रमाण सत्यार्थप्रकाश में लिखे गये हैं कोई भी मनुष्य उनकी वेदानुकूलता सिद्ध नहीं कर सकता। वेदानुकूल न रहने पर भी अपना मतलब बनाने के लिये आर्यसमाजियों को बनावटी जाल में फांसने के निमित्त जो दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में उद्धृत प्रमाणों को वेदानुकूल माना है-यह दयानन्द की अनधिकारचेष्टा है।

शतपथ में लिखा है कि—

"प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ। दिवंवोषसं वा मिथुन्येनया स्यामिति ताᳫं सम्बभूव ॥१॥ तद्वै देवानामाग आस। यऽइत्थᳫं स्वां दुहितरमस्माकᳫं स्वसारंकरोतीति ॥२॥ तेह देवा ऊचुः। योऽयं देवः पशूनामीष्टेऽतिसन्धं वाऽअयं चरति यऽइत्थᳫं स्वाँ दुहितरमस्माकᳫं स्वसारं करोति विध्येममिति तᳫं रुद्रोऽभ्यायत्य विव्याध तस्य सामि रेतः प्रचस्कन्द तथेन्नूनं तदास ॥३॥

प्रजापति ने अपनी दुहिता की इच्छा की। दिव रूप प्रजापति ने उषा रूप दुहिता से संगम किया। १। यह देवताओं की दृष्टि में पाप हुआ, देवता कहने लगे कि यह ब्रह्मा दिव रूप प्रजापति बनकर हमारी बहिन और अपनी पुत्री उषा से जो समागम करता है यह भारी पाप करता है। देवताओं ने इस समाचार को महादेव से कहा महादेव ने यह सुन कर ब्रह्मा को बाण से बींधा इसी बीच में ब्रह्मा के वीर्य का पतन होगया।

जब आर्यसमाजी ब्रह्मा-सरस्वती की कथा को हमारे आगे रखते हैं तब हम कह देते हैं कि जैसा श्रीमद्भागवत् में लिखा है वैसा ही शतपथ में भी है इतना कह कर शतपथ की इन तीन श्रुतियों को आर्यसमाजियों के आगे रख देते हैं, उस समय आर्यसमाजी कहते हैं कि यह शतपथ वेद विरुद्ध है'हम इस को नहीं मानते। तब हम बोल उठते हैं कि तुम मूर्ख हो,वेद जानते नहीं इस कारण शतपथ की श्रुतियों को वेद विरुद्ध बतलाते हो? इसी को ऋग्वेद कहता है कि

**पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन् ।**

ऋग्वेद अष्ट० ८ अ० १ वर्ग २७ सू० ६१ मं० ७

पिता अपनी लड़की के पीछे भागा।

इसको सुन कर आर्यसमाजियों के विस्तर बंधने लगते हैं, कहो शतपथ के जो प्रमाण मन्त्र भाग से नहीं मिलते उनको तो दयानन्द वेदानुकूल मानते हैं और शतपथ की जो श्रुतियां वेद से मिलती हैं उनको वेद विरुद्ध कह देना क्या घोर पाप नहीं है? यह वेद की हत्या है, दयानन्द जी ने वेदानुकूलता क्या मानो घुसने निकलने की कुंजी तैयार की है। इसके जरिये से जब चाहो जिस प्रमाण को वेदानुकूल कह दो, जो प्रमाण आर्यसमाज की दीवारों को खोद कर बहाता हो उसको वेद विरुद्ध कह दो, इस प्रकार की चालबाजी, धोखे का जाल बना कर आर्यसमाज अपने मजहब की सचाई सिद्ध करने चली,मानो संसार में कोई लिखा पढ़ा ही मनुष्य नहीं? याद रक्खो दयानन्द का यह पाप आर्यसमाज को ही खा जायगा।

नं० ( ७५ ) सत्यार्थप्रकाश पृ० ३६ में लिखा है कि—

**"पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंᳪ शति वर्षाणि तत्प्रातः सवनं, चतुर्विंᳪ शत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातः सवनं, तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदᳪ सर्वं वासयन्ति। छान्दोग्य प्र० ३ ख० १६"।**

इस श्रुति को वेदानुकूल समझ सत्यार्थप्रकाश में लिखा गया है किन्तु आर्यसमाजियों से जब इसकी वेदानुकूलता पूछी जाती है तब वे घुड़दौड़ मचा देते हैं, सिवाय भाग आने के और उनको कुछ नहीं सूझता। कहो दया-

नन्द कैसे महर्षि हैं जो जबरदस्ती से वेदानुकूल मान बैठते हैं ? और जब हम छान्दोग्य की—

**यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्ते ॥३॥**

छा० ख० १४

यह श्रुति पेश करके सिद्ध करते हैं कि ज्ञानी पुरुष को कर्मबन्धन नहीं होता तब आर्यसमाजी कह उठते हैं कि यह श्रुति वेद विरुद्ध है इस कारण इसको हम नहीं मानते। अच्छा जाल बनाया, जिसमें वेद का कोई प्रमाण नहीं वह सत्यार्थप्रकाश में लिखी श्रुति तो वेदानुकूल और जिसमें वेदमन्त्र प्रमाण मिलता है वह हमारी बतलाई श्रुति वेद विरुद्ध ? कौन कहता है कि 'यथा पुष्करपलाशः' यह श्रुति वेद विरुद्ध है ? इस श्रुति के भाव को कहने वाले वेदमन्त्र को भी देखलें।

**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।**
**एवंत्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥**

यजु० ४०

इसलोक में कर्मों को करते हुये सौ वर्ष जियो इस प्रकार वेद प्रतिपादक कर्म करने से मनुष्य को कर्म नहीं चिपटते।

स्वार्थ बड़ी चीज़ है, दयानन्द ने जितना कुछ लिखा वह सब लेख झूठ और ठगों की भांति जाल का सिद्ध करने वाला जाली लेख संसार को अन्धा करने के लिये लिखा, दयानन्द की इस चालाकी का भण्डाफोड़ न हो इस कारण आजकल के आर्यसमाजी धर्म-कर्म को तिलांजलि देकर वेदानुकूल को वेद विरुद्ध और वेदविरुद्ध को वेदानुकूल कह कर अपनी नीचता का परिचय देते हैं।

इसी प्रकार माण्डूक्य, कठ, कैवल्य, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, मुण्डकादि उपनिषदों के अनेक प्रमाण सत्यार्थप्रकाश में उद्धृत किये हैं क्योंकि वे दयानन्द की दृष्टि में वेदानुकूल हैं ? किन्तु हम इस बात की घोषणा करते हैं कि कोई भी आर्यवीररमणी ने ऐसा वीरपुत्र पैदा नहीं किया कि जो स्वार्थवश लिखे हुये दयानन्द के इस सुफ़ेद झूठ को सत्य सिद्ध करे। आर्यसमाजियो ! तुम संसार को धोखा देना ही सीखे हो ? संसार में तुम्हारे लिये और सब धर्म मर गये एक झूठ बोलना ही तुम्हारा धर्म रह गया ? घबराओ मत, महर्षि की बनावटी चाल-

बाजियां बहुत दिन चलीं अब उनकी चालाकियों का भारतवर्ष के प्रत्येक घर में भण्डाफोड़ होगा और तुम जो पापी पेट के लिये दयानन्द के जाल को वेदधर्म बतलाते हो, तुम कुत्ते की तरह दुदकार दिये जाओगे? अब भी संभलो नहीं तो पछताओगे।

इसी प्रकार वेदान्त, न्याय, मीमांसा, वैशेषिक, योग, सांख्य, श्रौत, गृह्यादि ग्रन्थों के सत्यार्थप्रकाश में प्रमाण उद्धृत किये हैं और उनको जबरदस्ती से संसार को अंधा बनाने के लिये वेदानुकूल माना है। ऐसी २ चालाकियों से संसार में सर्वथा मिथ्या, अवैदिक, कपोल कल्पित, वेदशास्त्र विरुद्ध आर्यसमाज मजहब का चलाना कढ़ी-भात का खाना नहीं है? गर्ज पड़ने पर दयानन्द ने उन ग्रन्थों को भी वेदानुकूल माना जिनको धर्मनिर्णय में हम भी नहीं लेते। उन ग्रन्थों के सत्यार्थप्रकाश में लिखे हुये कुछ प्रमाणों को हम यहां उद्धृत करते हैं पाठक पढ़ने का कष्ट उठावें।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

चाणक्यनीति अध्या० २ श्लो० ११

विद्वत्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

चाणक्य नीति

नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम्।

वृद्ध चाणक्य अ० १०। १३

स्वामी दयानन्द को इन की भी वेदानुकूलता वेद में मिली होगी? अपने अपने विषय में सभी ग्रन्थ प्रमाण होते हैं, शब्द सिद्धि में व्याकरण, रोग निर्णय में वैद्यक, संस्कारादि अनुष्ठान में धर्म शास्त्र, कालज्ञान और गणित ज्ञान में ज्योतिष्, ब्रह्मज्ञान में उपनिषद् स्वतः प्रमाण हैं। स्वामी दयानन्द जी ने जो इन में वेदानुकूलता का झगड़ा लगाया है यह घुनने निकलने की कुंजी है। हम जिस प्रमाण को लेना चाहें उसको वेदानुकूल कहदें और जिस का उत्तर न दे सकें उस को वेद विरुद्ध कहदें, संसार को इस धोखे में फांसने के सिवाय वेदानुकूलता में और कुछ भी सार नहीं? यह तो केवल धोखा देने का हथियार है। संसार को धोखा देकर अंधा बना ईसाई धर्म को वैदिक धर्म बतलाना यह

आर्यसमाज का धर्म है इस प्रकार की चालबाजी करने वाले आर्यसमाज की दृष्टि में देशोद्धारक,वेदज्ञाता,योगी और महर्षि बन जाते हैं। इसके ऊपर विचार शील मनुष्यों को विचार करना चाहिये ।

नं०(७६) वेदानुकूलता से एक लाभ अवश्य हुआ कि अब आर्यसमाज में सोलह संस्कार न होंगे । गर्भाधानादि सोलह संस्कार मन्वादि स्मृतियों और पारस्करादि गृह्य सूत्रों में लिखे हैं,वेदों में इन की विधि नहीं अतएव अब ये वेदानुकूल न रहे, आर्यसमाजियों को छोड़ देने होंगे। संस्कारहीन पुरुषों में शूद्र भाव आजाते हैं, आर्यसमाजियों को यह भी मंजूर, संस्कारों की खट पट तो पटा गई ?

नं० (७७) एक और सुख होगया, चोटी रखने और जनेऊ पहिनने का भी झंझट उड़ गया। वेदों में शिखा रखना, यज्ञोपवीत धारण करना कहीं लिखा नहीं केवल गृह्यसूत्र और धर्म शास्त्रों में लिखा है ,वे वेदानुकूल हैं नहीं ,छुट्टी पाई , स्वा० दयानन्द जी ने आर्यसमाजियों को मुसलमान बना कर छोड़ा ।

## मिट्टीपलीत

वेद में यज्ञोपवीत पहिनना और शिखा रखना नहीं लिखा सनातनधर्मियों की देखा देखी आर्यसमाजी भी गृह्यसूत्रों तथा धर्मशास्त्रों से चुटिया रखते और जनेऊ पहिनते हैं एवं इसमें इनका कोई कसूर भी नहीं। न तो ये इतना समझते हैं कि स्वा० दयानन्द जी केवल वेद को ही मानते.हैं और न इनको इतना ज्ञान है कि वेद में चुटिया जनेऊधारण करना नहीं लिखा,ये तो तेतालीस वर्ष में इतना ही पढ़े हैं कि स्वा० दयानन्द जी सत्य वक्ता, वेदज्ञाता, योगी महर्षि थे। इनको तो स्वा० दयानन्द जी की बड़ाई करने से काम है-धर्म जानने से क्या काम ? धर्म चाहे भाड़ में चला जाय किन्तु स्वा०दयानन्द जी की बड़ाई होती रहे । जब इन के वेद में चुटिया जनेऊ नहीं तब ये क्यों धारण करते हैं ? आज ये लोग सनातनधर्म के ग्रन्थों को लेकर शिखा सूत्र का ग्रहण करते हैं, कल को कुरान से रोजे रख कर निमाज पढ़ेंगे--यह हालत आर्यसमाजियों की है। दिल्ली के आर्यसमाजियों ने यह दावा किया कि वेद में जनेऊ पहिनना लिखा है,अब क्या था,अब तो शास्त्रार्थ ठन गया। सनातनधर्म की तरफ से वैद्यवर पं० गोविन्दराम जी शास्त्री और आर्यसमाज की तरफ से आर्यमुनि शास्त्रार्थ कर्ता नियत हुये । शास्त्रार्थ चलने पर हुज्जतबाजियां बहुत होती रहीं,आर्य-

समाज की तरफ से वेद प्रमाण पेश नहीं हुआ । पं० गोविन्दराम जी शास्त्री ने कहा कि यह शास्त्रार्थ हुज्जतबाजियों के लिये नहीं ठहरा किन्तु आर्यसमाज ने जनेऊ और चुटिया में वेद मंत्र देने की प्रतिज्ञा की थी, आज उस को क्यों टाला जाता है ? वेद मंत्र क्यों नहीं दिया जाता ? इस कथन पर आर्यमुनि ने 'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्' यह श्रुति पेश की । यद्यपि इस में केवल यज्ञोपवीत के महत्व का वर्णन है पहिनने की आज्ञा नहीं तो भी सनातनधर्मी पंडित ने इस को माना और यह कहा कि यह श्रुति शतपथ की है, शतपथ को स्वामी जी पुराण मानते हैं और उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि 'वेदानुकूल होने पर हम शतपथ को प्रमाण मानेंगे', स्वामी जी के इस लेख पर ध्यान देकर आर्यमुनि को 'यज्ञोपवीतं' इस की वेदानुकूलता सिद्ध करनी चाहिये । इस पर दो घंटे हुज्जत रही किन्तु श्रुति की वेदानुकूलता सिद्ध नहीं हुई अन्त में आर्यमुनि ने यह कहा कि कल इस की वेदानुकूलता हम सिद्ध करेंगे । उस दिन शास्त्रार्थ बन्द होगया, दूसरे दिन के लिये पांच बजे शाम का समय नियत हुआ किन्तु आर्यमुनि रात को ही दिल्ली छोड़ कर भाग गये । इस शास्त्रार्थ में आर्यमुनि से पहिले भी कई एक आर्यसमाजी पंडित भाग चुके थे । वेदानुकूलता सिद्ध करना अंगूर का खाना नहीं है, इस को आर्यसमाजियो तुम नहीं समझते, स्वा० दयानन्द जी ने तुम को खूब बनाया, तुम्हारे धर्म में शिखा रखना और सूत्र पहिनना ही नहीं रहा, अब तुम सच बतलाओ कि स्वा० दयानन्द जी ने तुम को नकली मुसलमान नहीं बनाया । यह है वेदानुकूलता का झगड़ा ?

## जालीवेदमंत्र

ब्राह्मण और अनेक संहिताओं को तो स्वामी जी ने वेद ही नहीं रक्खा, लिख दिया कि 'ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं पुराण हैं' । संहिता और शाखाओं को लिख दिया कि 'इन को हम प्रमाण नहीं मानते, ऐसा लिखने पर केवल चार किताब रह गईं इन में पूरे मंत्र नहीं इस कारण स्वा० दयानन्द जी अपने आप बनावटी जाली मंत्र बनाकर आर्यसमाजियों को यह समझा देते हैं कि देखो बेटाओ ये मंत्र हैं' यदि कोई कहने लगे कि ये मंत्र नहीं हैं तो उस की बात न मानियो, नहीं तो मेरे कपट जाल का भंडा फूट जायगा ।

नं० ( ७८ ) संध्या के आरम्भ में स्वा० दयानन्द जी ने लिखा है कि 'अथ संध्या मन्त्राः' फिर इस के पश्चात् यह मंत्र लिखा कि

**ओं वाक्-वाक्, ओं प्राणः-प्राणः, ओं चक्षुः-चक्षुः, ओं-श्रोत्रं-श्रोत्रं,ओं नाभिः,ओं हृदयं, ओं कण्ठः, ओं शिरः,-ओं बाहुभ्यां यशोबलम्, ओं करतलकरपृष्ठे ॥**

कृपा कर आर्यसमाजी बतलावें कि यह मंत्र कौन वेद का है? कई एक आर्यसमाजी कह देते हैं कि गृह्यसूत्र का होगा। होगा तो रहे, तुम से गृह्यसूत्र से क्या मतलब? यह भी कोई सिद्धांत है कि आज सनातनधर्मियों के गृह्यसूत्र को मानलें और कल को उसी गृह्यसूत्र को वेद विरुद्ध कह कर अमान्य ठहरादें। तुम्हें अपने धर्म ग्रन्थों से मतलब है या संसार भर के धर्मग्रन्थ टटोलते हो? ऐसे आदमियों का क्या विश्वास। आज सनातनधर्म के ग्रंथों को प्रमाण मानते हो,कल को ईसाइयों की धर्म पुस्तक बाइबिल को प्रमाण मान बैठोगे, यह आर्यसमाज है या चूं चूं का मुरब्बा। यह मंत्र तो गृह्यसूत्रों में भी कहीं नहीं? आर्यसमाजियों को बेवकूफ बनाने के लिये स्वा० दयानन्द जी ने लिखा है? टटोलो यह जाली मंत्र किस वेद का है?

नं (७६) फिर आगे चल कर स्वामी दयानन्द जी एक मंत्र और लिखते हैं कि—

**ओं भूः पुनातु शिरसि, ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः, ओं स्वः-पुनातु कण्ठे, ओं महः पुनातु हृदये, ओं जनः पुनातु नाभ्याम्, ओं तपः पुनातु पादयोः, ओं सत्यं पुनातु पुनः-शिरसि, ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥**

मेरे प्यारे आर्यसमाजी भाइयो! तुम बतलाओ कि यह मंत्र कौन वेद का है? स्वामी जी ने तो लिखा था कि हमारा धर्म पुस्तक वेद है उसी को हम मानते हैं अब स्वामी जी ने यह लवेद का मंत्र तुम्हारे लिये क्यों लिखा?

नं० (८०) स्वा० दयानन्द जी ने जो देवतर्पण में।

**ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्।**

**ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम्।**

**ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम्।**

ब्रह्मादि देवगणास्तृप्यन्ताम् ॥

सत्यार्थप्रकाश पृ० ६७

ये चार मंत्र लिखे हैं ये किस वेद के हैं ? क्या कोई आर्यसमाजी इनके बतलाने की कृपा करेगा ? कृपा तो तब करे जब ये वेद में हों, ये तो बिलकुल ताजे बने हैं। ताजे बनों को कोई वेद में कैसे दिखला देगा ? ईश्वर ने वेद बनाया किन्तु ये चार मंत्र बनाने भूल गया अतएव ये दयानन्द जी ने बना दिये, अब बतलाओ ईश्वर बड़ा या दयानन्द ?

नं० ( ८१ ) सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ६७ में ऋषितर्पण लिखते हुये जो चार मंत्र।

ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्।

मरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम्।

मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम्।

मरीच्याद्यृषिगणास्तृप्यन्ताम् ॥

लिखे हैं, ये किस वेद के हैं ? सच तो यह है कि "मुखं किमस्यासीत्" इस मंत्र के भाष्य में जो स्वा० दयानन्द जी ने ईश्वर को मूर्ख लिखा था अब स्वामी जी नये नये मंत्र बनाकर यह सिद्ध कर रहे हैं कि ईश्वर मूर्ख है और मैं विद्वान हूँ।

नं० ( ८२ ) सत्यार्थप्रकाश पृ० ६८ में पितृ तर्पण लिखते हुये स्वामी जी कुछ मंत्र लिखते हैं वे मंत्र ये हैं।

ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्।

अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्।

बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्।

सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्।

हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम्।

आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम्।

सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम्।

यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि।

पित्रे स्वधा नमः पितरं तर्पयामि।

पितामहाय स्वधा नमः पितामहं तर्पयामि ।
प्रपितामहाय स्वधा नमः प्रपितामहं तर्पयामि ।
मात्रे स्वधा नमो मातरं तर्पयामि ।
पितामह्यै स्वधा नमः पितामहीं तर्पयामि ।
प्रपितामह्यै स्वधा नमः प्रपितामहीं तर्पयामि ।
स्वपत्न्यै स्वधा नमः स्वपत्नीं तर्पयामि ।
सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धिनस्तर्पयामि ।
सगोत्रेभ्यः स्वधा नमः सगोत्रांस्तर्पयामि ॥

आर्यसमाजियों को पता लगाना चाहिये कि ये किस वेद के मंत्र हैं। जब कोई पता लगावे तो हमें भी लिख दे कि ये अमुक वेद में लिखे हैं। पता क्या लगावे खाक जब वेद में हैं ही नहीं ?

एक दिन आर्यसमाज काशी में प्रश्नोत्तर के तौर पर यह प्रसंग छिड़ा। आर्यसमाज की तरफ से स्वा० दर्शनानन्द और सनातनधर्म की तरफ से हम थे। हमने कहा कि वेद में पिण्डपितृयज्ञ का विधान है उसी पिण्डपितृयज्ञ को स्मृति और गृह्य सूत्रों ने श्राद्ध के नाम से याद किया है। यजुर्वेद अध्याय १६ और अथर्व वेद काण्ड १८ के कई सौ मंत्र श्राद्ध को कह रहे हैं फिर आर्यसमाज श्राद्ध का खण्डन कैसे करता है ?

इसको सुनकर स्वर्गवासी स्वा० दर्शनानन्द जी ने कहा कि पंडित जी ने सत्यार्थप्रकाश नहीं पढ़ा, यदि सत्यार्थप्रकाश पढ़ा होता तो ऐसा न समझते। सत्यार्थप्रकाश में स्पष्टरूप से लिखा है कि श्राद्ध-तर्पण जीवित पितरों का होता है और आर्यसमाज बराबर मानती है। हां मृतपितरों का श्राद्ध तर्पण जो सनातनधर्म मानता है अवैदिक होने के कारण आर्यसमाज उसका खण्डन करती है हमने कहा कि क्या आर्यसमाज सत्यार्थप्रकाश में जीवित पितरों के तर्पण के वेद मंत्र दिखला सकती है ? स्वामी जी ने कहा जी हां, लीजिये सत्यार्थप्रकाश स्वामी जी ने पन्ना खोलकर सत्यार्थप्रकाश हमारे पास भेज दिया। हमने इन मंत्रों को पढ़ा, पढ़कर स्वामी जी से कहा कि ये मंत्र वेद के नहीं हैं बनावटी हैं, यदि वेद के हों तो स्वामी जी पता बतलावें। इस पर स्वामी जी बहुत हं[illegible] और हंसकर बोले कि तुम हमसे भी बढ़ गये, हम पुराणों में बनावट [illegible] हैं और तुम वेद में बनावट बतलाते हो, ये मन्त्र अथर्व वेद काण्ड १८ के [illegible]

इसको सुन कर हमने कहा कि स्वामी जी ! ज्ञात होता है आपने कभी अथर्ववेद काण्ड १८ का पाठ नहीं किया। हमारा दृढ़ विश्वास है कि अथर्ववेद काण्ड १८ में ये मन्त्र नहीं हैं। हमने बीसियों बार १८ वें काण्ड का पाठ किया, वहां पर ये मन्त्र होते तो क्या हमको न मिलते ? इन मन्त्रों को १८ वें काण्ड में आप दिखला ही नहीं सकते।

यह सुन कर स्वामी जी ने मूल अथर्ववेद उठाया और आठ सात मिनट तक १८ वें काण्ड के पन्ने उथले किन्तु ये मन्त्र वहां नहीं मिले, मिलें तो तब जब १८ वें काण्ड में हों।

स्वामी जी कुछ सुस्त पड़ गये और बोले कि अथर्ववेद के १८ वें काण्डमे तो नहीं हैं। फिर सोचे और सोच कर बोले कि ऋग्वेद के छठे अष्टक में हैं। हमने कहा कि आपने ऋग्वेद का षष्ठ अष्टक भी नहीं पढ़ा, उसमें इस प्रकार के मन्त्र ही नहीं आते ? स्वामी जी ने ऋग्वेद का षष्ठ अष्टक देखा, जब उसमें ये मंत्र न निकले तब बोले कि मैं भूल गया, सामवेद में हैं। हमने कहा सामवेद में भी नहीं, यदि हैं तो दिखलाइये ? २२ मिनट तक स्वामी जी ने सामवेद टटोला किंतु ये मन्त्र न मिले तब बोले किसी वेद में हैं जरूर, मैंने आंख से देखे हैं किंतु पता याद नहीं रहा।

हमने कहा स्वामी जी ! ये मन्त्र चारों वेदों में कहीं भी नहीं हैं, ये तो जाली मन्त्र हैं, और आज तो क्या आप जन्म भर में भी हमको वेदों में ये मन्त्र नहीं दिखला सकते ? स्वामी जी चुप हो गये, जनता ने ताली बजा दी, समस्त मनुष्य यह समझ गये कि वेद में जीवित पितरों का श्राद्ध तर्पण नहीं है आर्य-समाज बनावटी मन्त्र बनाकर जीवित पितरों का श्राद्ध तर्पण सिद्ध करती है। अवसर पड़ने पर भी जब आर्यसमाज इन नकली मन्त्रों को वेद में न दिखला सकी तो अब क्या दिखलावेगी। जब वेद में हैं ही नहीं तब कहां से दिखला देगी।

नं० (८३) सत्यार्थप्रकाश पृ० ६६ में लिखा है कि—

ओं अग्नये स्वाहा। सोमायस्वाहा।

अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा। विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा।

धन्वन्तरये स्वाहा। कुह्वै स्वाहा। अनुमत्यै स्वाहा।

प्रजापतये स्वाहा । सहद्यावा पृथिवीभ्यां स्वाहा ।
स्विष्टकृते स्वाहा ।

ये मन्त्र वेद के नहीं हैं, नहीं मालूम आर्यसमाज संसार को धोखा देने के लिये वेद वेद क्यों चिल्लाता है । कहता तो यही है कि हम वेद से भिन्न एक अक्षर नहीं मानते किन्तु यहां पर यह गृह्य क्यों माना ? कई एक सज्जन जान बचाने के लिये यह कह देंगे कि इतना गृह्य वेदानुकूल है । झूठी बात है, न वेद में वैश्वदेव का विधान और न उसके मन्त्र, फिर जबर्दस्ती से कोई वेदानुकूल कैसे बना देगा ?

नं० (८४) सत्यार्थप्रकाश पृ० १०० में लिखा है कि--

ओं सानुगायेन्द्राय नमः । सानुगाय यमाय नमः ।
सानुगाय वरुणाय नमः । सानुगाय सोमाय नमः ।
मरुद्भ्यो नमः । अद्भ्यो नमः वनस्पतिभ्यो नमः ।
श्रियै नमः भद्रकाल्यै नमः । ब्रह्मपतये नमः ।
वास्तुपतये नमः विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ।
दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः । नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ।
सर्वात्मभूतये नमः ।

क्या कोई आर्यसमाजी इन मन्त्रों को वेद में दिखला सकता है गृह्यसूत्र और धर्मशास्त्र के कुछ मन्त्रों को लेकर उनकी काट छांट कर स्वामी जी ने ये ताजे गर्मागर्म मन्त्र आर्यसमाजियों के आगे रक्खे हैं । स्वामी जी की जब कोई युक्ति काम नहीं करती तब वे तुरंत ताजे मन्त्र बना कर वेद के नाम से आर्यसमाजियों के आगे रख देते हैं । ये लोग पढ़ते लिखते हैं नहीं समझ लेते हैं कि स्वामी जी झूठ थोड़े ही लिखेंगे, जाल थोड़े ही बनावेंगे । मन्त्र वेद के हैं तब तो लिखे हैं । बस इतने पर ही ये लोग वैदिक बनने का झूठा दावा कर बैठते हैं ।

## हठ

स्वा० दयानन्द जी जब किसी तरह से भी पार नहीं पाते, जब उनका पक्ष सर्वथा ही गिर जाता है तब कह बैठते हैं कि तुम्हारा कहना ठीक नहीं यह असम्भव है, इसको हम कभी नहीं मानेंगे !

नं० (८५) स्वा० दयानन्द जी के साथ मुन्शी इन्द्रमणि जी का "नमस्ते" पर शास्त्रार्थ हुआ, इस शास्त्रार्थ के मध्यस्थ वेदव्याख्याता पं० भीमसेन जी हुये। पंडित जी ने दोनों के कथन को सुन कर फैसला दिया कि परस्पर में नमस्ते करना स्वामी जी ने वेद और धर्मशास्त्र तथा इतिहास पुराण से सिद्ध नहीं कर पाया इस कारण इस शास्त्रार्थ में स्वामी दयानन्द जी की हार हुई। स्वामी जी ने ही पण्डित भीमसैन जी को मध्यस्थ बनाया था इतने पर भी उनका फैसला नहीं माना, कह दिया कि तुम्हारे इस असम्भव फैसले को हम नहीं मानते।

नं० (८६) स्वा० दयानन्द जी और राजा शिवप्रसाद जी सितारे हिन्द में "ब्राह्मणग्रन्थ वेद हैं" इस विषय पर शास्त्रार्थ चला। राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द कहते थे कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद हैं और स्वामी जी कहते थे कि नहीं नहीं ब्राह्मणग्रन्थ पुराण हैं। इस शास्त्रार्थ के सभापति थी बो साहब बहादुर प्रेंसिपल क्वींस कालेज काशी हुये,इन्होंने अपने फैसले में लिखा कि ब्राह्मणग्रंथ वेद हैं,स्वामी जी नें कह दिया कि हम इस फैसले को ही नहीं मानते।

नं० (८७) डुमरावं जिला आरा में राजा के सामने राजपंडित परमहंस जी और दयानन्द जी में मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। राजा के सामने यह कह दिया कि राजपंडित बहुत विद्वान् है, वेद ज्ञाता है, इसके बराबर भारतवर्ष में कोई पंडित नहीं। मूर्तिपूजा में इसके वैदिक प्रमाण इतने प्रबल हैं कि जिनसे आज मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मूर्तिपूजा वेद में लिखी है,यह कह कर स्वामी जी डुमरावं से चले आये। एक महीना बाद पं० तारादत्त जी बनारस वालों से कह दिया कि हमने डुमरावं में अपनी हार स्वीकार ही नहीं की।

नं० (८८) हाथरस में हरजसराय भट्याने वालों के साथ में स्वामी जी का शास्त्रार्थ दश मिनट हुआ,विषय यह था कि स्वामी जी संसार का उपादान कारण प्रकृति को मानते थे और हरजसराय जी ईश्वर को। दश मिनट के अन्दर ही स्वामी जी ने कह दिया कि पंडित जी आप का पक्ष बड़ा प्रबल है,इस पर मैं अपनी हार स्वीकार करता हूं। यह कह कर स्वामी जी अलीगढ़ चले गये,अलीगढ़ से पंडित जी को एक चिट्ठी लिखी कि मैंने हार स्वीकार नहीं की है,कभी अवसर मिलेगा तो फिर शास्त्रार्थ करूंगा।

नं० (८९) स्वामी जी ने प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में मृतकों का श्राद्ध

अपने आप लिखा । सम्वत् १९३४ में कलकत्ते में आशुतोष चटर्जी से कह दिया कि यह लेख मेरा नहीं,मेरे पास रहने वाले किसी पंडित ने लिख दिया ।

नं० (६०) महाराज जयपुर को शैव बनाया और यह बतलाया कि शैव वैदिक है और वैष्णव मत ढोंग । राजा कहने में आगये,वैष्णव से शैव होगये स्वामी जी जयपूर से चले आये । कुछ दिन बाद फिर जयपूर गये राजा से कहा कि शैव मत भी वैदिक नहीं । महाराज श्री १०५ रामसिंह जी जयपुराधीश ने कहा आप ही हम से कह गये थे कि शैव मत वैदिक है ? स्वामी जी ने उत्तर में कहा मैंने यह तो नहीं कहा हां यह कहा था कि वैष्णव मत की अपेक्षा शैव मत अच्छा है । भाव यह है कि जब स्वामी जी का पक्ष गिरता था, तब वे किसी की भी बात न मान हठ बांध बैठते थे । गुस्सा होना,झूठबोलना, चालाकी करना, धोखा देना,हठबांधना इन प्रमाणों से स्वा० दयानन्द जी अपने चलाये ईसाई मत की नकल आर्यसमाज को वैदिक सिद्ध किया करते थे और इन्हीं अवलम्बनों से आज आर्यसमाजी आर्यसमाज को सत्य सिद्ध करने को तैयार हो गये हैं ।

## चेला-चीनी

स्वामी जी ने जो चालबाजियां रक्खी हैं उचित था कि उन सबको उड़ा आर्यसमाज को पवित्र वैदिकधर्मी बना दिया जाता किन्तु ऐसा नहीं किया गया वरन् नई २ चालबाजियां और तैयार की गईं जिन का आश्रय लेने पर फिर आर्यसमाज का और भी गौरव नष्ट हो जावे,उन चालबाजियों में से पाठकों के अवलोकनार्थ कुछ चालबाजियां हम नीचे देते हैं ।

नं० (६१) स्वामी जी ने गुण,कर्म,स्वभाव से वर्ण व्यवस्था लिखी है । है आर्यसमाजियों ने उसको तो उठा कर ताक में रख दिया, आर्यसमाज के मेम्बर बढ़ाने के लिये बिना पढ़े धोबी, तेली, कुम्हार, नट-बेड़िया, चमार, भंगियों को जनेऊ पहिना ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य बना दिया । अब आर्यसमाज की कृपा से भंगी भी बाल्मीक वंशीय ब्राह्मण बन गये । संसार को तो गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था बतलाई जाती है और आप न गुण देखें, न कर्म और न स्वभाव चाहे जिस को ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य बनादें-यह चेलों की पहिली चाल—बाजी है ।

नं० (६२) आज कल किसी २ आर्यसमाजी को स्त्रियों का यज्ञोपवीत

पहिनाने का भूत चढ़ बैठा है। वेद और मनु तथा स्वा० दयानन्द जी के लेख से स्त्रियों का यज्ञोपवीत पहिनना सिद्ध नहीं होता,इस के लिये आर्यसमाजियों ने हारीत,यमस्मृति और निर्णयसिन्धु को स्वतःप्रमाण मान लिया,इन तीनों ही ग्रंथों के लिये स्वामी जी ने जाल ग्रन्थ और त्याज्य ग्रन्थ लिखा था,अब आर्य-समाजी इन्हीं से स्त्रियों को जनेऊ पहिनाते हैं एवं जब हम इन ग्रंथों को प्रमाण में दें तब कह देते हैं कि हम इन को कब प्रमाण मानते हैं ? स्वामी जी ने तो इन को पहिले ही त्याज्य और जाल लिख दिया है-यह आर्यसमाजियों की दूसरी चालाकी है ।

नं० (६३) शास्त्रार्थ और बात चीत में आजकल के आर्यसमाजी वेद को तो दूर फेंक देते हैं और पुराणों को जिन का कि ये रात दिन खण्डन करते हैं उन को स्वतः प्रमाण मान उनसे अपने पक्ष की पुष्टि करने लगते हैं। जिन पुराणों को स्वा० दयानन्द जी ने विषसंपृक्तान्नवत् त्याज्य बतलाया है उसी को आर्यसमाजी प्रमाण मानते हैं-यह इन की तीसरी चालाकी है ।

नं० (६४) आर्यसमाजियों ने अब एक और चालाकी चलनी आरंभ की है। वेद, धर्मशास्त्र आदि जितने भी ग्रन्थ हैं उन सब को तो दूर फेंक देते हैं और इतिहास से धर्म निर्णय करने लगते हैं कि अमुक स्त्री का विधवा विवाह हुआ था,इस कारण विधवा विवाह-करना धर्म है। यह निर्णय सर्वथा धर्माधर्म में घपला मचा देने वाला है। द्वापर में मुल्लू धोबी की अम्मा ने अढ़ाई सौ पति किये तो अब प्रत्येक स्त्री का अढ़ाई सौ पति करना धर्म होगया। यादवों ने शराब पी,नशे में कट कर मर गये तो प्रत्येक मनुष्य का धर्म हो गया कि शराब पीकर कट कर मर जाय । रावण ने श्रीमती जनकनन्दनी को हर लिया;अब मनुष्यों का धर्म हुआ कि दूसरे की औरतों को चुराया करो,इस नियम से तो धर्म अधर्म सब धर्म होजायंगे,फिर इतिहास से धर्म निर्णय कैसे ? एक दूसरी खराबी यह आवेगी कि वेन व्यभिचारी था और उस का लड़का पृथु एक स्त्री व्रत रखने वाला,उग्रसेन गौ,ब्राह्मण,वेदों का भक्त था और उसका लड़का कंस तीनों से ही घोर शत्रुता रखता था,फिर इतिहास से धर्म निर्णय कैसे होगा ? इतिहास सब लोगों के चरित्र देताहुआ लिखता है कि रामवत्प्रवर्तितव्यं नतु रावणवत्, राम की तरह आचरण करो, रावण कैसा आचरण करने वाले मत बनो,फिर किसी एक मनुष्य के चरित्र को लेकर धर्म की डिगरी देना यह

आर्यसमाजियों का संसार की आंख में धूल झोंकना है।

नं० ( ६५ ) शास्त्रार्थ में कहने लगते हैं कि देखो अमुक अंग्रेज फलां पुस्तक में लिखता है कि आर्य लोग उत्तर हिमालय में रहते थे वे वहां से भारतवर्ष में आये, कुछ आर्य अमेरिका और कुछ योरुप को गये। उत्तरीय हिमालय में आर्यों में वर्णव्यवस्था और जाति भेद नहीं था, आर्यों ने भारतवर्ष में आकर वेद बनाये- इस कारण हम कह सकते हैं कि लुटेरे ब्राह्मणों ने वेद बनाये और वर्णव्यवस्था चलाई। जब ये शुरू से नहीं हैं तो मानने के लायक नहीं ? इन्होंने जाति भेद और वेद का कानून चलाया, हम इन दोनों से भारतवर्ष का अधःपतन देख रहे हैं इस कारण दोनों को छुड़वाते हैं।

नं० ( ६६ ) आर्यसमाजी यह भी कह देते हैं कि ब्राह्मण लोग आर्यसमाज से द्वेष रखते हैं क्योंकि आर्यसमाज ब्राह्मणों के जाल को तोड़ता है इससे ब्राह्मण चिढ़ जाते हैं, तुम भी चिढ़कर ही शास्त्रार्थ करने आये हो अतएव हम ब्राह्मणों से शास्त्रार्थ ही नहीं करते ? दूसरी कोई जाति आवे तो हम शास्त्रार्थ को तैयार हैं।

नं० ( ६७ ) आज कल आर्यसमाजियों ने एक और चालाकी चलनी आरम्भ की है। सनातनधर्म का ये लोग खूब खण्डन करते हैं, यदि कोई मनुष्य आर्यसमाज का खण्डन करे तो कह देते हैं कि इससे क्या मतलब ? इस खण्डन मण्डन ने ही हिन्दू जाति को गारत कर दिया। हम क्या आर्यसमाजी हैं जो तुम आर्यसमाज का खण्डन करते हो ? हम तो कट्टर सनातनधर्मी हैं तो क्या आंख मींच कर हम सनातनधर्म मानते रहें ?

नं० ( ६८ ) एक और नई चाल निकाली है, शास्त्रार्थ के प्लेटफार्म पर यह कहने लगते हैं कि तुम्हें धर्म की पड़ी है, यहां हिन्दु जाति ही खतम हो रही है देखो इसी वर्ष में हिन्दुस्तान में एक लाख ईसाई बढ़ गये और २० हजार हिन्दू मुसलमान हो गये, हिन्दुओं की दश हजार औरतों को मुसलमान भगा ले गये, ऐसा ही रहा तो दश बीस वर्ष में हिन्दू जाति खतम हो जावेगी फिर तुम धर्म को सहत लगाकर चाटना।

नं० ( ६९ ) एक और नई चालाकी सुनिये, जब सनातनधर्मी दयानन्द के किसी लेख को प्रमाण में रख दें तो आर्यसमाजी चिढ़ जांय और कहने लगें कि हम दयानन्द के लेख को मानने वाले नहीं, हम तो वैदिक हैं। यदि इसके

ऊपर कोई सनातनधर्मी कह दे कि तुम लिख कर दो ? तो हजार हुज्जतें करेंगे-लिख कर न देंगे । फिर जब वेद का प्रमाण देंगे तो अर्थ वही बेढंगा, ऊट पटांग सर्वथा मिथ्या पेश करेंगे जो स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है । कहीं उस समय सनातनधर्मी यह कह दे कि यह तो दयानन्द का अर्थ है ? तो कह उठेंगे कि स्वामी जी कैसा वेदज्ञाता दूसरा कोई दुनियां में हुआ है ? कच्चे पक्के को इसी चालबाजी से शास्त्रार्थ में गिरा देंगे ।

नं० ( १०० ) जब कोई सनातनधर्मी पण्डित ऊंचे दर्जे पर पहुँच इनसे शास्त्रार्थ करने लगता है और जब ये बार बार शास्त्रार्थ हारते हैं, जब इनकी चारों तरफ से थू थू होने लगती है तब इनकी विद्या तो काम देती नहीं गिरोह बांध कर गुण्डापन पर उतारू हो जाते हैं । अपने व्याख्यानों में ऐसे पंडित को देश और जाति का शत्रु सिद्ध करने पर उतर आते हैं । जाल रचकर जाली चिट्ठियां बनाते हैं और फिर संसार में उसको बदनाम करते हैं जैसा कि प० गोपीनाथ और कविरत्न पं० अखिलानन्द एवं हमारे साथ किया । जबर्दस्ती से कविरत्न जी और हमको हसन निजामी का नौकर बनाया किन्तु जाल रचने वाले गुण्डों के मुंह पर वह स्याही लगी कि घर में धंस धंस कर रोये ।

आजकल के आर्यसमाजी ऐसी २ अनेक चालबाजियां चलते हैं किंतु आर्य-समाजी दल वज्र मूर्ख है इस कारण इनकी उठाई हुई चालबाजियों से इन्हीं का पतन हो रहा है किन्तु इतने पर भी चालबाजियों को छोड़ते नहीं ? कारण इसका यह है कि जब श्रुति-स्मृति इनका साथ नहीं देती तो फिर ये चालबाजियों को छोड़ दें तो किसके होकर रहें ? जब वेद और धर्मशास्त्र दयानन्द के मत का घोर शत्रु है तब तो इनको चालबाजियों का अवलम्बन लेना ही पड़ेगा ।

## मेल

आज हम परस्पर में समस्त धर्मों का मेल करेंगे । संसार में बौद्ध, जैन, सिक्ख सनातन धर्मी, ब्रह्मसमाजी, देवसमाजी, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पार्सी प्रभृति अनेक मजहब मौजूद हैं आज हम यह निर्णय नहीं करेंगे कि उनके धर्म अकाट्य और मान्य हैं या नहीं ? जिसका धर्म जैसा हो वह उसके लिये मुबारक है । आज निर्णय यह करना है कि जितनी चालबाजियां और बनावटी जाल तथा घुसने निकलने की कुंजियां आर्यसमाज में पाई जाती हैं क्या इतनी किसी अन्य

मजहब में विद्यमान हैं ? संसार के एक एक मनुष्य से पूछिये तो यही कह देगा कि और मजहब मजहब हैं किन्तु आर्यसमाज चालबाजियों का भण्डार है। जितनी चालबाजियां हमने दिखलाई हैं इनको आज तक मनुष्य समुदाय समझ नहीं पाया इस कारण मनुष्यों का कुछ भाग आर्यसमाजी बन गया है। जिस दिन इन चालबाजियों को संसार समझ लेगा भूल कर भी आर्यसमाज में कदम नहीं रक्खेगा।

हम प्रेम भाव आगे रख नम्रतापूर्वक समस्त आर्यसमाजियों से यह प्रार्थना करते हैं कि आप लोग एक पंडितों की सभा बनावें और उसमें समस्त चालबाजियां एवं धोखे पेश किये जावें। पण्डितों की सम्मति से आर्यसमाज को सच्ची वैदिक धर्म को मानने वाली धर्म-प्राण सोसाइटी बना दिया जावे जिससे आर्यसमाजियों की यश पताका कीर्ति फहराकर समस्त आर्यसमाजी अपवर्ग के भागी बनें और संस्कृत के ज्ञाताओं को आर्यसमाज में प्रीति हो।

